॥ श्रीहरिः ॥

639

श्रीनारायणीयम्

(सरल भावार्थसहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

दशक-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या

दशक-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या

एकादशस्कन्धपरिच्छेद (पृष्ठ ३०८—३३४)

द्वादशस्कन्धपरिच्छेद (पृष्ठ ३३५—३५२)

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीनारायणीयम्

प्रथमस्कन्धपरिच्छेदः

प्रथमदशकम्

भगवन्महिमाका वर्णन

सान्द्रानन्दावबोधात्मकमनुपमितं कालदेशावधिभ्यां
निर्मुक्तं नित्यमुक्तं निगमशतसहस्रेण निर्भास्यमानम्।
अस्पष्टं दृष्टमात्रे पुनरुरुपुरुषार्थात्मकं ब्रह्मतत्त्वं
तत्तावद्भाति साक्षाद् गुरुपवनपुरे हन्त भाग्यं जनानाम्॥ १॥

घनीभूत आनन्द और ज्ञान जिसका स्वरूप है जो उपमारहित है, काल और देशकी अवधिसे निर्मुक्त है, लाख-लाख वेद-वाक्योंद्वारा अस्पष्टरूपसे निर्भास्यमान है तथा दर्शन करनेमात्रसे जो साधकोंके लिये महान् पुरुषार्थ (मोक्ष)-रूप हो जाता है—ऐसा जो ब्रह्म-तत्त्व है, वह गुरुपवनपुर (गुरुवयूर)-में साक्षात् रूपसे प्रकाशित हो रहा है। यह जनसमुदायके लिये कितने सौभाग्यकी बात है!॥ १॥

एवं दुर्लभ्यवस्तुन्यपि सुलभतया हस्तलब्धे यदन्यत्
तन्वा वाचा धिया वा भजति बत जनः क्षुद्रतैव स्फुटेयम्।
एते तावद् वयं तु स्थिरतरमनसा विश्वपीडापहत्यै
निश्शेषात्मानमेनं गुरुपवनपुराधीशमेवाश्रयामः॥ २॥

ऐसी दुर्लभ वस्तु भी सुलभ होकर जब हाथमें आ गयी हो, तब भी मनुष्य शरीर, वाणी और बुद्धिद्वारा जो अन्य किसीकी सेवा करता है, यह स्पष्टरूपसे उसकी क्षुद्रता ही है। किंतु हमलोग तो समस्त पीड़ाओंके नाशके लिये अत्यन्त निश्चल मनसे सर्वस्वरूप इन गुरुपवनपुराधीशका ही आश्रय लेते हैं॥ २॥

सत्त्वं यत्तत्पराभ्यामपरिकलनतो निर्मलं तेन तावद्
भूतैर्भूतेन्द्रियैस्ते वपुरिति बहुशः श्रूयते व्यासवाक्यम्।
तत्स्वच्छत्वाद्यदच्छादितपरसुखचिद्गर्भनिर्भासरूपं
तस्मिन् धन्या रमन्ते श्रुतिमतिमधुरे सुग्रहे विग्रहे ते॥ ३॥

रजोगुण और तमोगुणके मिश्रणसे रहित होनेके कारण जो शुद्ध सत्त्व है, उसीके उपादानद्वारा सात्त्विक भूतों तथा इन्द्रियोंसहित आपका स्वेच्छामय लीलाशरीर निर्मित हुआ है—ऐसे व्यासजीके वाक्य बारंबार पुराणोंमें सुने जाते हैं। आपका वह वपु निर्मल है अतएव निरावृत परमानन्द चिन्मय ब्रह्म उसके भीतर प्रविष्ट हो नितरां भासित होता है। श्रवण-मननादि-कालमें अति मधुर लगनेवाला अर्थात् सकलेन्द्रियाह्लादक जो आपका सुग्राह्य श्रीविग्रह है, उसमें जो भक्तिसम्पन्न जन रमते—प्रेमलक्षणा भक्ति करते हैं, वे धन्य हैं॥ ३॥

निष्कम्पे नित्यपूर्णे निरवधिपरमानन्दपीयूषरूपे
निर्लीनानेकमुक्तावलिसुभगतमे निर्मलब्रह्मसिन्धौ।
कल्लोलोल्लासतुल्यं खलु विमलतरं सत्त्वमाहुस्तदात्मा
कस्मान्नो निष्कलस्त्वं सकल इति वचस्त्वत्कलास्वेव भूमन्॥ ४॥

भूमन्! निस्सीम, परमानन्द-सुधास्वरूप, निष्कम्प (प्रशान्त) तथा नित्यपूर्ण आप निर्मल ब्रह्म-सिन्धुमें, जो अपने भीतर लीन, अनेक मुक्तावलियों (मुक्तात्माओंके समूह अथवा मुक्तामालाओं)-के कारण अत्यन्त सुभगतम (परम सौभाग्यसम्पन्न) है, उठती हुई उत्ताल तरङ्गोंके समान परम निर्मल सत्त्वका उद्रेक बताया गया है, वह निर्मल सत्त्व ही जिनका श्रीविग्रह है, वे ही आप निष्कल (निरवयव अथवा अखण्ड) क्यों नहीं हैं। आपके विषयमें जो सकल (कलायुक्त)—ऐसा कथन है वह आपकी कलाओं (अंशावतारों)- में ही संगत होता है॥ ४॥

निर्व्यापारोऽपि निष्कारणमज भजसे यत्क्रियामीक्षणाख्यां
तेनैवोदेति लीना प्रकृतिरसतिकल्पापि कल्पादिकाले।
तस्याः संशुद्धमंशं कमपि तमतिरोधायकं सत्त्वरूपं
स त्वं धृत्वा दधासि स्वमहिमविभवाकुण्ठवैकुण्ठरूपम्॥ ५॥

अज! आप व्यापाररहित होते हुए भी जो निष्प्रयोजन मायाप्रेरणात्मिका ईक्षण नामवाली क्रिया अङ्गीकार करते हैं, उसी कारणसे द्विपरार्धावसानके समय आपमें लयको प्राप्त हुई सत्-असत्-रूपसे अनिर्वचनीय किंवा असत्कल्पा भी माया ब्रह्मप्रलयकी समाप्तिमें पुनः प्रकट होती है। उस मायाका जो कोई तिरोधानरहित शुद्ध सत्त्वमय अंश है, उसीको धारण करके आप अपनी महिमारूप वैभवसे कुण्ठित न होनेवाला वैकुण्ठरूप धारण करते हैं॥ ५॥

तत्ते प्रत्यग्रधाराधरललितकलायावलीकेलिकारं
लावण्यस्यैकसारं सुकृतिजनदृशां पूर्णपुण्यावतारम्।
लक्ष्मीनिश्शङ्कलीलानिलयनममृतस्यन्दसंदोहमन्त-
स्सिञ्चत्संचिन्तकानां वपुरनुकलये मारुतागारनाथ॥ ६॥

मारुतागारनाथ! नूतन (सजल) जलधर तथा केरावके पुष्पसमूहके सदृश जिसका अत्यन्त मनोहर श्यामल वर्ण है, जो लावण्यका एकमात्र सार, सुकृती जनोंके नेत्रोंके लिये समस्त पुण्योंका अवतार, लक्ष्मीकी निःशङ्क लीलास्थली, अमृत-निर्झरका समूह तथा ध्यानरत उपासकोंके हृदयको आनन्दरससे सींचनेवाला है, आपके उस शुद्ध सत्त्वमय श्रीविग्रहका मैं ध्यान करता हूँ॥ ६॥

कष्टा ते सृष्टिचेष्टा बहुतरभवखेदावहा जीवभाजा-
मित्येवं पूर्वमालोचितमजित मया नैवमद्याभिजाने।
नो चेज्जीवाः कथं वा मधुरतरमिदं त्वद्वपुश्चिद्रसार्द्रं
नेत्रैः श्रोत्रैश्च पीत्वा परमरससुधाम्भोधिपूरे रमेरन्॥ ७॥

अजित! आपकी सृष्टिसम्बन्धिनी चेष्टा कष्टदायिनी है; क्योंकि यह लिङ्गशरीरधारी जीवोंको अधिकतर जनन-मरणरूप दुःख देनेवाली है—मुझ मूढ़बुद्धिने पहले ऐसा ही समझ रखा था; परंतु ऐसी बात नहीं है, इसका अनुभव मुझे अब हुआ है। अन्यथा यदि आप जीवोंकी तथा तद्भोग्य प्रपञ्चकी रचना नहीं करते तो जीव किस प्रकार आपके इस परममाधुर्ययुक्त लीलाविग्रहको, जो चिदानन्दामृतद्रवसे बाहर-भीतर व्याप्त है, नेत्रोंसे उसके दर्शनद्वारा और कानोंसे उसके कथा-श्रवणद्वारा

पानकर हृदयमें धारण करके परमानन्दामृत-सागरमें रमण करते॥ ७॥

नम्राणां संनिधत्ते सततमपि पुरस्तैरनभ्यर्थितान-
प्यर्थान् कामानजस्त्रं वितरति परमानन्दसान्द्रां गतिं च।
इत्थं निश्शेषलभ्यो निरवधिकफलः पारिजातो हरे त्वं
क्षुद्रं तं शक्रवाटीद्रुममभिलषति व्यर्थमर्थिव्रजोऽयम्॥ ८॥

हरे! आप प्रणत अर्थात् वन्दन-भक्तिके द्वारा भजन करनेवाले भक्तोंके समक्ष निरन्तर रहते हैं—सदा उनके निकटवर्ती बने रहते हैं तथा उन भक्तोंके न माँगनेपर भी उन्हें अनुकूल अर्थों एवं कामोंका वितरण करते रहते हैं। साथ ही उन सबको परमानन्दघनरूपा गति (सालोक्य-सामीप्य आदि मुक्ति) भी प्रदान करते हैं। इस प्रकार आप सम्पूर्ण जीवसमूहोंद्वारा प्राप्त करने योग्य तथा निस्सीम फलके दाता विलक्षण कल्पवृक्ष हैं। आपके होते हुए भी यह याचकसमूह व्यर्थ ही इन्द्रके उद्यान—नन्दनवनमें होनेवाले उस क्षुद्र वृक्ष (पारिजात)-की अभिलाषा करता है॥ ८॥

कारुण्यात् काममन्यं ददति खलु परे स्वात्मदस्त्वं विशेषा-
दैश्वर्यादीशतेऽन्ये जगति परजने स्वात्मनोऽपीश्वरस्त्वम्।
त्वय्युच्चैरारमन्ति प्रतिपदमधुरे चेतनाः स्फीतभाग्या-
स्त्वं चात्माराम एवेत्यतुलगुणगणाधार शौरे नमस्ते॥ ९॥

दूसरे ब्रह्मा आदि देवता करुणावश मोक्षके अतिरिक्त अन्य वर देते हैं; परंतु आप विशेष करुणापरवश होकर अपने स्वरूपभूत मोक्षको भी दे देते हैं। इसी प्रकार अन्य ब्रह्मादि देव ऐश्वर्यके कारण जगत्में अपनेसे अतिरिक्त अन्य चराचर जीवोंपर निग्रह-अनुग्रह करनेमें समर्थ हैं; परंतु आप तो आत्मस्वरूप ब्रह्माके भी ईश्वर हैं। उत्तम भाग्यशाली जीव पद-पदपर मधुरतासे परिपूर्ण आप ब्रह्ममें अतिशय आनन्दका उपभोग करते हैं; परंतु आप तो स्वयं अपने आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं। इसलिये लोकोत्तर गुणसमूहोंके आश्रयभूत श्रीकृष्ण! आपको नमस्कार है॥ ९॥

ऐश्वर्यं शंकरादीश्वरविनियमनं विश्वतेजोहराणां
तेजस्संहारि वीर्यं विमलमपि यशो निःस्पृहैश्चोपगीतम्।

अङ्गासङ्गा सदा श्रीरखिलविदसि न क्वापि ते सङ्गवार्ता
तद्वातागारवासिन् मुरहर भगवच्छब्दमुख्याश्रयोऽसि॥ १०॥

गुरुपवनपुरमें निवास करनेवाले मुर-संहारक! आपका ऐश्वर्य शंकर आदि ईश्वरोंके भी अधिकारका नियामक है। आपका पराक्रम सबके पराक्रमको हरण करनेवाले शंकर आदिके भी प्रभावका संहारक है। आपका यश भी निर्मल तथा स्पृहारहित मुक्त पुरुषोंद्वारा उपवर्णित है। लक्ष्मी सदा आपके अङ्गमें निवास करती हैं। आप सर्वज्ञ हैं। किसी भी विषयमें आपकी आसक्तिकी बात नहीं सुनी जाती। इसलिये 'भगवत्' शब्दके मुख्य आश्रय आप ही हैं॥ १०॥

॥ इति भगवन्महिमानुवर्णनं प्रथमदशकं समाप्तम्॥

द्वितीयदशकम्

भगवद्रूप तथा भगवद्भक्तिका वर्णन

सूर्यस्पर्धिकिरीटमूर्ध्वतिलकप्रोद्भासिफालान्तरं
कारुण्याकुलनेत्रमार्द्रहसितोल्लासं सुनासापुटम्।
गण्डोद्यन्मकराभकुण्डलयुगं कण्ठोज्ज्वलत्कौस्तुभं
त्वद्रूपं वनमाल्यहारपटलश्रीवत्सदीप्रं भजे॥ १॥

जिसका किरीट अपनी प्रभासे सूर्यकी भी स्पर्धा कर रहा है, जिसका भालप्रदेश ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलकसे उद्भासित हो रहा है, जिसके नेत्र करुणासिन्धुसे परिपूर्ण हैं, प्रेमार्द्र होनेके कारण जो मन्द मुसकानसे युक्त है, जिसकी नासिका परम मनोहर है, जिसके गण्डस्थलमें दो लटकते हुए मकराकृति कुण्डल प्रतिबिम्बित हैं, कण्ठप्रदेश कौस्तुभमणिकी प्रभासे जगमगा रहा है तथा जो वनमाला, हारसमूह और श्रीवत्ससे उद्दीप्त हो रहा है, आपके उस रूपका मैं ध्यान करता हूँ॥ १॥

केयूराङ्गदकङ्कणोत्तममहारत्नाङ्गुलीयाङ्कित-
श्रीमद्बाहुचतुष्कसङ्गतगदाशङ्खारिपङ्केरुहाम् ।

कांचित् काञ्चनकाञ्चिलाञ्छितलसत्पीताम्बरालम्बिनी-
मालम्बे विमलाम्बुजद्युतिपदां मूर्तिं तवार्तिच्छिदम्॥ २॥

जिसकी शोभायमान चारों भुजाएँ केयूर, अङ्गद, कङ्कण, बहुमूल्य हार तथा रत्ननिर्मित अँगूठियोंसे अलंकृत और गदा, शङ्ख, चक्र एवं कमल धारण किये हुए हैं, जो सुवर्णकी करधनीके चिह्नसे सुशोभित चमकीला पीताम्बर धारण करनेवाली है, जिसके चरणोंकी द्युति निर्मल कमलके सदृश है तथा जो भक्तोंकी पीड़ाका छेदन करनेवाली है, आपकी किसी ऐसी अनिर्वचनीय मूर्तिका मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ २॥

यत् त्रैलोक्यमहीयसोऽपि महितं सम्मोहनं मोहनात्
कान्तं कान्तिनिधानतोऽपि मधुरं माधुर्यधुर्यादपि।
सौन्दर्योत्तरतोऽपि सुन्दरतरं त्वद्रूपमाश्चर्यतो-
ऽप्याश्चर्यं भुवने न कस्य कुतुकं पुष्णाति विष्णो विभो॥ ३॥

सर्वव्यापक विष्णो! आपका रूप त्रिलोकीकी महत्तम वस्तुसे भी महनीय, मोहकसे भी अत्यन्त मोहक, शोभाकी निधिसे भी बढ़कर परम शोभायमान, अति माधुर्यसम्पन्न वस्तुसे भी अतिशय मधुर, लोकोत्तर सौन्दर्यशालीसे भी सुन्दरतर और अद्भुत आश्चर्ययुक्त वस्तुसे भी बढ़कर आश्चर्यजनक है, वह भुवनमें किसकी उत्कण्ठाको नहीं बढ़ाता है? अर्थात् वह सबके लिये अत्यन्त उत्सुकता या कौतूहलका जनक है॥ ३॥

तत्तादृङ्मधुरात्मकं तव वपुः सम्प्राप्य सम्पन्मयी
सा देवी परमोत्सुका चिरतरं नास्ते स्वभक्तेष्वपि।
तेनास्या बत कष्टमच्युत विभो त्वद्रूपमानोज्ञक-
प्रेमस्थैर्यमयादचापलबलाच्चापल्यवार्तोदभूत् ॥ ४॥

अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले विभो! आपके ऐसे अनुपम एवं माधुर्ययुक्त श्रीविग्रहको पाकर वह महालक्ष्मीदेवी परमोत्सुक होनेके कारण अपने भक्तोंके समीप भी चिरकालतक नहीं स्थित होती हैं— चञ्चल ही बनी रहती हैं। आपके रूपकी रमणीयताके कारण आपके प्रति जो लक्ष्मीजीका सुस्थिर प्रेम है वही उनकी अचपलता है, उसीके बलसे

वे अन्यत्र स्थिर नहीं हो पातीं, जिसके कारण इस लक्ष्मीके लिये 'यह चपला है' ऐसी दुष्कीर्ति उद्भूत हुई है। यह कितने कष्टकी बात है!॥ ४॥

लक्ष्मीस्तावकरामणीयकहृतैवेयं परेष्वस्थिरे-
त्यस्मिन्नन्यदपि प्रमाणमधुना वक्ष्यामि लक्ष्मीपते।
ये त्वद्ध्यानगुणानुकीर्तनरसासक्ता हि भक्ता जना-
स्तेष्वेषा वसति स्थिरैव दयितप्रस्तावदत्तादरा॥ ५॥

लक्ष्मीपते! आपके लोकोत्तर सौन्दर्यपर लुट जानेके कारण ही यह लक्ष्मी दूसरोंके यहाँ स्थिर नहीं रह पाती हैं। इस विषयमें मैं दूसरा प्रमाण भी बतलाता हूँ। (वह यह है कि) जो आपके ध्यान तथा गुणानुकीर्तनके आनन्दमें आसक्त रहनेवाले भक्तजन हैं, उनके यहाँ यह लक्ष्मी आप प्रेमास्पदके प्रस्तावको आदर देती हुई स्थिररूपसे ही निवास करती हैं॥ ५॥

एवंभूतमनोज्ञतानवसुधानिष्यन्दसंदोहनं
त्वद्रूपं परचिद्रसायनमयं चेतोहरं शृण्वताम्।
सद्यः प्रेरयते मतिं मदयते रोमाञ्चयत्यङ्गकं
व्यासिञ्चत्यपि शीतबाष्पविसरैरानन्दमूर्च्छोद्भवैः॥ ६॥

इस प्रकार जो मनोज्ञतारूप अभिनव अमृतद्रवकी वर्षा करनेवाला आपका रूप है, वह परम चिदानन्दमय रसका निलय है, आपकी चर्चा सुननेवालोंके चित्तको हर लेनेवाला है, तत्काल ही बुद्धिको प्रेरणा देकर उन्मत्त बना देता है—उसे आनन्दपरवश कर देता है, शरीरको पुलकित करके उसे आनन्दकी वृद्धिसे उद्भूत हुए शीतल अश्रुप्रवाहोंके द्वारा भलीभाँति सींच भी देता है॥ ६॥

एवंभूततया हि भक्त्यभिहितो योगः स योगद्वयात्
कर्मज्ञानमयाद् भृशोत्तरतरो योगीश्वरैर्गीयते।
सौन्दर्यैकरसात्मके त्वयि खलु प्रेमप्रकर्षात्मिका
भक्तिर्निःश्रममेव विश्वपुरुषैर्लभ्या रमावल्लभ॥ ७॥

रमावल्लभ! इस प्रकार भक्तिद्वारा अभिहित जो योग है वह कर्ममय तथा ज्ञानमय—इन दोनों योगोंसे अत्यन्त उत्कृष्ट है, ऐसा

व्यास-नारदादि योगीश्वरोंने पुराणोंमें वर्णन किया है। अतः एकमात्र सौन्दर्य-रसस्वरूप आपमें अतिशय प्रेमस्वरूपा भक्ति अनायास ही सभी पुरुषोंद्वारा प्राप्त की जा सकती है॥ ७॥

निष्कामं नियतस्वधर्मचरणं यत्कर्मयोगाभिधं
तद्दूरेत्यफलं यदौपनिषदज्ञानोपलभ्यं पुनः।
तत्त्वव्यक्ततया सुदुर्गमतरं चित्तस्य तस्माद् विभो
त्वत्प्रेमात्मकभक्तिरेव सततं स्वादीयसी श्रेयसी॥ ८॥

निष्काम कर्मयोग नामक जो शास्त्रविहित स्वधर्मका अनुष्ठान है, वह दूरवर्ती कालान्तरमें फल प्रदान करनेवाला है तथा जो उपनिषद्-सम्बन्धी ज्ञानद्वारा प्रापणीय मोक्षरूप फल है, वह अव्यक्त होनेके कारण चित्तके लिये किसी प्रकार भी प्राप्त होने योग्य नहीं है। इसलिये विभो! आपकी प्रेमलक्षणा भक्ति ही सदा अतिशय आस्वादनीय तथा श्रेष्ठ है॥ ८॥

अत्यायासकराणि कर्मपटलान्याचर्य निर्यन्मला
बोधे भक्तिपथेऽथवाप्युचिततामायान्ति किं तावता।
क्लिष्ट्वा तर्कपथे परं तव वपुर्ब्रह्माख्यमन्ये पुन-
श्चित्तार्द्रत्वमृते विचिन्त्य बहुभिः सिद्ध्यन्ति जन्मान्तरैः॥ ९ ॥

अत्यन्त परिश्रमसाध्य कर्मसमूहोंका अनुष्ठान करनेसे जिनके राग-द्वेषादि मल नष्ट हो गये हैं ऐसे कुछ लोग ज्ञानमार्ग अथवा भक्तिमार्गमें अधिकार प्राप्त कर पाते हैं तथा अन्य कुछ लोग रागरहित हुए बिना वेदान्तमार्गमें परम कष्ट सहन करके आपके ब्रह्मस्वरूपकी चिन्तना करते हैं। तत्पश्चात् अनेकों जन्मोंके बाद उन्हें फलकी सिद्धि होती है; परंतु हम भक्तिमार्गियोंके लिये इससे क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछ भी नहीं॥ ९॥

त्वद्भक्तिस्तु कथारसामृतझरीनिर्मज्जनेन स्वयं
सिद्ध्यन्ती विमलप्रबोधपदवीमक्लेशतस्तन्वती।
सद्यःसिद्धिकरी जयत्ययि विभो सैवास्तु मे त्वत्पद-
प्रेमप्रौढिरसार्द्रता द्रुततरं वातालयाधीश्वर॥ १०॥

अयि विभो! जो आपके कथारसरूपी अमृतद्रवमें निरन्तर मज्जन

ध्रुवपर अनुग्रह

करनेसे स्वयं सिद्ध होनेवाली, अनायास ही निर्मल ब्रह्मज्ञानके मार्गका विस्तार करनेवाली तथा तुरंत ही सिद्धि प्रदान करनेवाली है, आपकी वह भक्ति (कर्ममय तथा ज्ञानमय—इन दोनों योगोंसे) उत्कृष्ट हो रही है। अतः वातालयाधीश्वर! मेरे लिये आपके चरणकमलोंमें अनपायिनी प्रीतिरूपी रससे आर्द्र हुई वह भक्ति ही शीघ्र सिद्ध हो॥ १०॥

॥ इति भगवद्रूपादिवर्णनं द्वितीयदशकं समाप्तम्॥

तृतीयदशकम्

भक्तस्वरूप-वर्णन तथा भक्ति-प्रार्थना

पठन्तो नामानि प्रमदभरसिन्धौ निपतिताः
स्मरन्तो रूपं ते वरद कथयन्तो गुणकथाः।
चरन्तो ये भक्तास्त्वयि खलु रमन्ते परममू-
नहं धन्यान् मन्ये समधिगतसर्वाभिलषितान्॥ १॥

वरद! जो भक्त आपके नामोंका उच्चस्वरसे कीर्तन, स्वरूपका स्मरण तथा गुणानुवादका परस्पर कथन करते हुए आनन्दातिशय-सागरमें सदा निमग्न रहते हैं और विरक्त होकर विचरण करते हुए आपमें ही रमण करते हैं, केवल उन्हीं भक्तोंको मैं परम भाग्यशाली मानता हूँ; क्योंकि समस्त ईप्सित पदार्थ उन्हें हस्तगत हो गये हैं॥ १॥

गदक्लिष्टं कष्टं तव चरणसेवारसभरे-
ऽप्यनासक्तं चित्तं भवति बत विष्णो कुरु दयाम्।
भवत्पादाम्भोजस्मरणरसिको नामनिवहा-
नहं गायं गायं कुहचन विवत्स्यामि विजने॥ २॥

खेद है कि व्याधि आदिसे संतप्त हुआ यह चित्त आपके चरणकमलोंकी सेवाके रस-सिन्धुमें भी आसक्त नहीं हो रहा है। अतः विष्णो! आप ही मुझपर दया कीजिये। अब मैं आपके पादपद्मोंके

स्मरणका रसिक होकर आपके नामसमूहोंका बारंबार कीर्तन करता हुआ किसी निर्जन स्थानमें निवास करूँगा॥ २॥

कृपा ते जाता चेत्किमिव न हि लभ्यं तनुभृतां
मदीयक्लेशौघप्रशमनदशा नाम कियती।
न के के लोकेऽस्मिन्ननिशमयि शोकाभिरहिता
भवद्भक्ता मुक्ताः सुखगतिमसक्ता विदधते॥ ३॥

अयि विष्णो! यदि आपकी कृपा हो गयी तो देहधारियोंके लिये क्या अलभ्य रह जाता है? अर्थात् उन्हें सब कुछ सुलभ हो जाता है। ऐसी दशामें मेरे कष्टसमूहकी समूलोन्मूलनरूपा अवस्थाकी क्या बिसात है? इस लोकमें आपके कौन-कौन ऐसे भक्त हैं जो निरन्तर शोकसे रहित एवं जीवन्मुक्त हो अनासक्त भावसे रहते हुए सुखकी उपलब्धि नहीं करते हैं? (अर्थात् वे सभी सुखमें निमग्न हैं)॥ ३॥

मुनिप्रौढा रूढा जगति खलु गूढात्मगतयो
भवत्पादाम्भोजस्मरणविरुजो नारदमुखाः।
चरन्तीश स्वैरं सततपरिनिर्भातपरचित्-
सदानन्दाद्वैतप्रसरपरिमग्नाः किमपरम्॥ ४॥

ईश! आपके चरणकमलोंके स्मरणसे जो सारी आधि-व्याधि, पीड़ाके नष्ट हो जानेसे रोगरहित हो गये हैं, जिनकी अपनी गति गूढ़ (अव्यक्त) है तथा जो संसारमें प्रसिद्ध हैं, ऐसे नारद आदि मुनिश्रेष्ठ सतत प्रकाशमान परम सच्चिदानन्दमय अद्वैत रसके प्रवाहमें निमग्न हो जगत्में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरते रहते हैं। इससे बढ़कर और क्या चाहिये?॥ ४॥

भवद्भक्तिः स्फीता भवतु मम सैव प्रशमये-
दशेषक्लेशौघं न खलु हृदि संदेहकणिका।
न चेद् व्यासस्योक्तिस्तव च वचनं नैगमवचो
भवेन्मिथ्या रथ्यापुरुषवचनप्रायमखिलम्॥ ५॥

आपमें मेरी भक्ति बढ़ती रहे; वही मेरे सम्पूर्ण कष्टसमूहोंका विनाश कर सकती है। इस विषयमें लेशमात्र संदेहके लिये भी मेरे हृदयमें

स्थान नहीं है। यदि ऐसी बात नहीं हुई तो व्यासजीका कथन, आपका वचन और वेद-वाक्य—ये सब-के-सब सड़कोंपर बकनेवाले पुरुषोंके वचनोंके समान मिथ्या हो जायँगे॥ ५॥

भवद्भक्तिस्तावत्प्रमुखमधुरा त्वद्गुणरसात्
किमप्यारूढा चेदखिलपरितापप्रशमनी।
पुनश्चान्ते स्वान्ते विमलपरिबोधोदयमिल-
न्महानन्दाद्वैतं दिशति किमतः प्रार्थ्यमपरम्॥ ६॥

आपकी भक्ति तो प्रारम्भसे ही परम मधुर—सुखरूपा है। वही यदि आपके गुणानुवाद-श्रवण-रससे कुछ और ऊँची भूमिकाको प्राप्त हुई तब तो सम्पूर्ण परितापोंका समूल विनाश कर देती है। फिर अन्तमें वह भक्तके हृदयमें निर्मल ज्ञानोदयसे संयुक्त अद्वितीय ब्रह्मानन्द प्रदान करती है। इससे बढ़कर और क्या वस्तु है, जिसके लिये किसीके सामने हाथ फैलाया जाय?॥ ६॥

विधूय क्लेशान् मे कुरु चरणयुग्मं धृतरसं
भवत्क्षेत्रप्राप्तौ करमपि च ते पूजनविधौ।
भवन्मूर्त्यालोके नयनमथ ते पादतुलसी-
परिघ्राणे घ्राणं श्रवणमपि ते चारुचरिते॥ ७॥

भगवन्! मेरे बाह्याभ्यन्तर समस्त क्लेशोंका विनाश करके आप ऐसा कर दें कि मेरे युगल चरण आपके क्षेत्र-तीर्थादिकी यात्रा करनेमें, दोनों हाथ आपकी पूजन-क्रियामें, नेत्र आपकी मूर्तिके दर्शनमें, घ्राणेन्द्रिय आपके पादपद्मोंपर समर्पित हुई तुलसीकी गन्धके ग्रहणमें और कान आपके मनोहर चरितके श्रवणमें आनन्द लेने लगें॥ ७॥

प्रभूताधिव्याधिप्रसभचलिते मामकहृदि
त्वदीयं तद्रूपं परमसुखचिद्रूपमुदियात्।
उदञ्चद्रोमाञ्चो गलितबहुहर्षाश्रुनिवहो
यथा विस्मर्यासं दुरुपशमपीडापरिभवान्॥ ८॥

प्रभो! परमानन्द एवं चिद्ज्ञानस्वरूप आपका वह रूप विपुल आधि-व्याधियोंद्वारा बलपूर्वक चलायमान किये गये मेरे हृदयमें इस

प्रकार उदय हो जाय, जिससे पुलकाङ्कितशरीर तथा अधिक मात्रामें हर्षजनित अश्रुजल बहाता हुआ मैं दुर्दमनीय पीड़ाओंद्वारा उत्पन्न किये गये उपद्रवोंको भलीभाँति भूल जाऊँ॥ ८॥

मरुद्गेहाधीश त्वयि खलु पराञ्चोऽपि सुखिनो
भवत्स्नेही सोऽहं सुबहु परितप्ये च किमिदम्।
अकीर्तिस्ते मा भूद् वरद गदभारं प्रशमयन्
भवद्भक्तोत्तंसं झटिति कुरु मां कंसदमन॥ ९॥

श्रीगुरुवायुपुरनाथ! आपसे विमुख हुए नास्तिक भी जगत्में सुखी देखे जाते हैं; परंतु मैं आपका स्नेही हूँ, फिर भी अधिक परितापका अनुभव कर रहा हूँ। यह क्या बात है? वरदायक! कंसविनाशक! आपकी यह वैषम्यजनित दुष्कीर्ति न हो, इसके पहले ही आप मेरे रोग-भारको भलीभाँति शान्त करते हुए शीघ्र ही मुझे अपने भक्तोंमें शिरोमणि बना दीजिये॥ ९॥

किमुक्तैर्भूयोभिस्तव हि करुणा यावदुदिया-
दहं तावद् देव प्रहितविविधार्थप्रलपितः।
पुरः क्लृप्ते पादे वरद तव नेष्यामि दिवसान्
यथाशक्ति व्यक्तं नतिनुतिनिषेवा विरचयन्॥ १०॥

देव! आपकी करुणाके अभावमें अधिक प्रलाप करनेसे क्या लाभ? अर्थात् कुछ नहीं। अतः वरद! जबतक आपकी करुणाका प्रादुर्भाव होगा तबतक मैं अनेक प्रकारके आर्तप्रलापका परित्याग करके पहले निश्चय किये हुए आपके श्रीचरणमें यथाशक्ति स्पष्टरूपसे नमस्कार, स्तुति और सेवा-पूजा करते हुए अपने दिन बिताऊँगा॥ १०॥

॥ इति भक्तस्वरूपादिवर्णनं तृतीयदशकं समाप्तम्॥

द्वितीयस्कन्धपरिच्छेदः

चतुर्थदशकम्

अष्टाङ्गयोग तथा योगसिद्धिका वर्णन

कल्यतां मम कुरुष्व तावतीं कल्यते भवदुपासनं यया।
स्पष्टमष्टविधयोगचर्यया पुष्टयाशु तव तुष्टिमाप्नुयाम्॥ १॥

प्रभो! मुझे उतनी नीरोगता प्रदान कर दीजिये जितनीसे मैं आपकी उपासनाका अनुष्ठान कर सकूँ, क्योंकि यह निश्चित है कि यदि मैं नीरोग हो जाऊँ तो सम्पूर्णरूपसे यम-नियमादि अष्टाङ्गयोगके अनुष्ठानद्वारा शीघ्र ही आपकी प्रसन्नता प्राप्त कर लूँगा॥ १॥

ब्रह्मचर्यदृढतादिभिर्यमैराप्लवादिनियमैश्च पाविताः।
कुर्महे दृढममी सुखासनं पङ्कजाद्यमपि वा भवत्पराः॥ २॥

ब्रह्मचर्यकी दृढ़ता आदि यमों तथा स्नान आदि नियमोंके द्वारा पवित्र होकर आपके परायण हुए हम पद्मासन आदि सुखासनोंको भी दृढ़ कर रहे हैं॥ २॥

तारमन्तरनुचिन्त्य संततं प्राणवायुमभियम्य निर्मलाः।
इन्द्रियाणि विषयादथापहृत्यास्महे भवदुपासनोन्मुखाः॥ ३॥

तदनन्तर अंदर प्रणवका निरन्तर अनुचिन्तन करके तथा प्राणवायुका (पूरक-रेचक-कुम्भकद्वारा) संयमन करके निर्मल हुए हम इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटाकर आपकी उपासनामें तत्पर हो जायँगे॥ ३॥

अस्फुटे वपुषि ते प्रयत्नतो धारयेम धिषणां मुहुर्मुहुः।
तेन भक्तिरसमन्तरार्द्रतामुद्वहेम भवदङ्घ्रिचिन्तकाः॥ ४॥

आपके अस्फुट श्रीविग्रहमें प्रयत्नपूर्वक बारंबार बुद्धिको लगायेंगे। उससे भक्तिरूपी रस और हृदयकी स्नेहार्द्रताको प्राप्त कर लेंगे। तत्पश्चात् हम आपके चरणोंकी चिन्तना करनेवाले हो जायँगे॥ ४॥

विस्फुटावयवभेदसुन्दरं त्वद्वपुः सुचिरशीलनावशात्।
अश्रमं मनसि चिन्तयामहे ध्यानयोगनिरतास्त्वदाश्रयाः॥ ५॥

जिसके पादादिकेशान्त अवयवभेद स्पष्टरूपसे प्रतीत हो रहे हैं ऐसे सौन्दर्यशाली आपके श्रीविग्रहका चिरकालतक धारणा-ध्यानके अभ्याससे अनायास ही मनमें ध्यान होने लगता है। इस प्रकार हम ध्यानयोगके परायण होकर आपके भक्त हो जायँगे॥ ५॥

ध्यायतां सकलमूर्तिमीदृशीमुन्मिषन्मधुरताहृतात्मनाम्।
सान्द्रमोदरसरूपमान्तरं ब्रह्मरूपमयि तेऽवभासते॥ ६॥

अयि भगवन्! आपकी ऐसी कलामयी मूर्तिका ध्यान करनेवालों तथा अभिव्यक्त हुई मधुरतासे अपहृत हुए मनवालोंके हृदयमें सान्द्रानन्दैकरसस्वरूप आपका स्वरूपभूत ब्रह्म अवभासित होता है॥ ६॥

तत्समास्वदनरूपिणीं स्थितिं त्वत्समाधिमयि विश्वनायक।
आश्रिताः पुनरतः परिच्युतावारभेमहि च धारणादिकम्॥ ७॥

अयि विश्वनायक! उस ब्रह्मका समास्वादन—सम्यगनुभव ही जिसका स्वरूप है ऐसी स्थिति आपकी समाधि है। उस समाधिके आश्रित हुए हम उस स्थानसे च्युत होनेपर पुनः धारणा आदिका आरम्भ करेंगे॥ ७॥

इत्थमभ्यसननिर्भरोल्लसत्त्वत्परात्मसुखकल्पितोत्सवाः।
मुक्तभक्तकुलमौलितां गताः संचरेम शुकनारदादिवत्॥ ८॥

प्रभो! उपर्युक्त प्रकारसे धारणा-ध्यान-समाधिके अभ्यासद्वारा प्रचुररूपसे आविर्भूत हुए आपके स्वरूपपरब्रह्मानुभवजनित आनन्दसे निर्वृत्त उत्सववाले तथा जीवन्मुक्तों एवं भक्तसमूहोंके शिरोमणि होकर हम शुकदेव-नारद आदिकी भाँति विचरण करेंगे॥ ८॥

त्वत्समाधिविजये तु यः पुनर्मङ्क्षु मोक्षरसिकः क्रमेण वा।
योगवश्यमनिलं षडाश्रयैरुन्नयत्यज सुषुम्णया शनैः॥ ९॥

अज! आपमें समाधिके दृढ़ हो जानेपर, चाहे कोई सद्योमुक्तिका अभिलाषी हो अथवा क्रममुक्तिका, ये दोनों ही प्रकारके साधक प्राणायामके द्वारा वशीभूत हुए प्राणवायुको षट्‌चक्रोंके सहारे सुषुम्णा नाड़ीद्वारा धीरे-धीरे ऊपरको ले जाते हैं॥ ९॥

लिङ्गदेहमपि संत्यजन्नथो लीयते त्वयि परे निराग्रहः।
ऊर्ध्वलोककुतुकी तु मूर्द्धतः सार्द्धमेव करणैर्निरीयते॥ १०॥

तत्पश्चात् जो सद्योमुक्त्याग्रही साधक होता है, वह (प्राणवायुको भ्रूमध्य—आज्ञाचक्रमें स्थापितकर) लिङ्गशरीरका भी परित्याग कर देता है और पुनः ब्रह्मस्वरूप आपमें लीन हो जाता है। परंतु जो ऊर्ध्वलोकका अभिलाषी होता है, वह ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करके इन्द्रियोंके साथ ही ऊपरको चला जाता है॥ १०॥

अग्निवासरवलर्क्षपक्षगैरुत्तरायणजुषा च दैवतैः।
प्रापितो रविपदं भवत्परो मोदवान् ध्रुवपदान्तमीयते॥ ११॥

तदनन्तर अग्नि, वासर एवं शुक्लपक्षके अभिमानी तथा उत्तरायणके अभिमानी देवता उस जीवको ज्योतिश्चक्रतक पहुँचा देते हैं। वहाँ वह आपके परायण होकर आनन्दपूर्वक ध्रुवपदको प्राप्त कर लेता है। (इसका क्रम यों है—पहले अग्निदेवता अग्निलोकके मार्गसे जीवको वासराभिमानी देवताके हाथमें पहुँचाते हैं, वह उत्तरायणके षण्मासाभिमानी देवताको, वह संवत्सराभिमानी देवताको, वह देवलोकमार्गसे ले जाकर वायुदेवताको, वह वायुलोकके मार्गसे सूर्यदेवताको, वह आदित्यलोकके मार्गसे ले जाकर चन्द्रदेवताको, वह चन्द्रलोकके मार्गसे विद्युल्लोकको पहुँचाता है, तत्पश्चात् जीव ध्रुवलोकके उस पार पहुँच जाता है।)॥ ११॥

आस्थितोऽथ महरालये यदा शेषवक्त्रदहनोष्मणार्द्यते।
ईयते भवदुपाश्रयस्तदा वेधसः पदमतः पुरैव वा॥ १२॥

तदनन्तर महर्लोकमें सुखपूर्वक वास करता हुआ जीव जब शेषके मुखसे निकली हुई अग्निकी ऊष्मासे संतप्त होने लगता है, तब वह आपके शरणागत होकर ब्रह्मपद अर्थात् सत्यलोकको प्राप्त हो जाता है अथवा ऊष्मसंतापसे पूर्व ही वह स्वेच्छानुसार वहाँ जा सकता है॥ १२॥

तत्र वा तव पदेऽथवा वसन् प्राकृतप्रलय एति मुक्तताम्।
स्वेच्छया खलु पुरा विमुच्यते संविभिद्य जगदण्डमोजसा॥ १३॥

इस प्रकार सत्यलोकको प्राप्त हुआ जीव ब्रह्मलोकमें अथवा आपके

निवासस्थान विष्णुलोकमें निवास करता हुआ प्राकृतप्रलयके समय मुक्तिको प्राप्त हो जाता है। अथवा स्वेच्छानुसार अपने-अपने योगबलसे ब्रह्माण्ड-कटाहका भेदन करके उसके द्वारा महाप्रलयके पूर्व ही मुक्त हो जाता है॥ १३॥

तस्य च क्षितिपयोमहोऽनिलद्योमहत्प्रकृतिसप्तकावृतीः।
तत्तदात्मकतया विशन् सुखी याति ते पदमनावृतं विभो॥ १४॥

विभो! उस ब्रह्माण्डके पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पञ्चतत्त्व तथा महत्तत्त्व और प्रकृति—ये सात आवरण हैं। इन आवरणोंमें उन-उन आवरणोंके अनुरूप स्वरूप-ग्रहणद्वारा उनमें प्रवेश करके निरतिशय सुखका अनुभव करता हुआ जीव आपके अनावृत पद—ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है॥ १४॥

अर्चिरादिगतिमीदृशीं व्रजन् विच्युतिं न भजते जगत्पते।
सच्चिदात्मक भवद्गुणोदयानुच्चरन्तमनिलेश पाहि माम्॥ १५॥

जगत्पते! इस प्रकारकी अर्चिरादि गतिको प्राप्त हुए जीवका पुनरावर्तन नहीं होता। अतः सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीगुरुवायुपुरनाथ! मैं भी आपके उत्कृष्ट गुणोंका कीर्तन कर रहा हूँ, मेरी रक्षा कीजिये॥ १५॥

॥ इति अष्टाङ्गयोगादिवर्णनं चतुर्थदशकं समाप्तम्॥

पञ्चमदशकम्

विराट् पुरुषकी उत्पत्तिका वर्णन

व्यक्ताव्यक्तमिदं न किंचिदभवत्प्राक्प्राकृतप्रक्षये
मायायां गुणसाम्यरुद्धविकृतौ त्वय्यागतायां लयम्।
नो मृत्युश्च तदामृतं च समभून्नाह्नो न रात्रेः स्थिति-
स्तत्रैकस्त्वमशिष्यथाः किल परानन्दप्रकाशात्मना॥ १॥

भगवन्! पहले प्राकृतप्रलयके समय स्थूल-सूक्ष्मस्वरूप यह शरीरादि कुछ भी नहीं था। त्रिगुणोंकी साम्यावस्थासे कार्यके अवरुद्ध हो जानेपर माया भी आपमें ही लीन हो गयी थी, जिससे न मृत्यु था न मोक्ष।

यहाँतक कि दिन-रातकी स्थिति भी नहीं रह गयी थी। उस समय सच्चिदानन्दस्वरूपसे केवल आप ही शेष थे॥ १॥

कालः कर्म गुणाश्च जीवनिवहा विश्वं च कार्यं विभो
चिल्लीलारतिमेयुषि त्वयि तदा निर्लीनतामाययुः।
तेषां नैव वदन्त्यसत्त्वमयि भो शक्त्यात्मना तिष्ठतां
नो चेत् किं गगनप्रसूनसदृशां भूयो भवेत्सम्भवः॥ २॥

विभो! जब आपकी स्वस्वरूपानुसंधानस्वरूपा लीलामें रति उत्पन्न होती है, उस समय काल, कर्म, गुण, जीवसमूह, अखिल विश्व—मायाके ये सब कार्य चित्स्वरूप आपमें अदृश्य हो जाते हैं। उस समय भी श्रुतियाँ कारणरूपसे आपमें स्थित हुए इन काल-कर्मादिको सत्ताहीन नहीं बतलातीं। अन्यथा यदि इन्हें सत्ताहीन मान लिया जाय तो आकाश-कुसुमके समान क्या इनका पुनः प्रलयके अन्तमें उत्पन्न होना सम्भव हो सकेगा अर्थात् नहीं॥ २॥

एवं च द्विपरार्द्धकालविगतावीक्षां सिसृक्षात्मिकां
बिभ्राणे त्वयि चुक्षुभे त्रिभुवनीभावाय माया स्वयम्।
मायातः खलु कालशक्तिरखिलादृष्टं स्वभावोऽपि च
प्रादुर्भूय गुणान् विकास्य विदधुः तस्याः सहायक्रियाम्॥ ३॥

इस प्रकार द्विपरार्धकालके समाप्त होनेपर जब आपमें सृष्टि-निर्माणकी इच्छा उत्पन्न होती है, उस समय आपकी दृष्टिको प्राप्तकर माया स्वयं त्रैलोक्यरूपसे विवर्तन करनेके लिये क्षुब्ध हो उठती है। तब उस मायासे ईश्वरकी कालशक्ति, जीवोंका सुकृत-दुष्कृतरूप अखिल अदृष्ट और स्वभाव भी प्रकट होकर तीनों गुणोंका विकास करके उस मायाकी सहायता करने लगते हैं॥ ३॥

मायासंनिहितोऽप्रविष्टवपुषा साक्षीति गीतो भवान्
भेदैस्तां प्रतिबिम्बितो विविशिवान् जीवोऽपि नैवापरः।
कालातिप्रतिबोधिताथ भवता संचोदिता च स्वयं
माया सा खलु बुद्धितत्त्वमसृजद्योऽसौ महानुच्यते॥ ४॥

आप मायोपाधिक तथा अनुपहित स्वरूपद्वारा उपलक्षित हैं, ऐसे

आपको वेदान्तने सबका साक्षी बतलाया है। जीव भी आपके अतिरिक्त अन्य नहीं है। आप ही भेदोंका आश्रय लेकर प्रतिबिम्बरूपसे उस मायामें प्रविष्ट हुए हैं। तदनन्तर काल-कर्म-स्वभावद्वारा संक्षुब्ध हुई तथा आपद्वारा प्रेरित स्वयं उस मायाने ही ऐसे बुद्धितत्त्वकी रचना की है, जिसे महत्तत्त्व कहा जाता है॥ ४॥

तत्रासौ त्रिगुणात्मकोऽपि च महान् सत्त्वप्रधानः स्वयं
जीवेऽस्मिन् खलु निर्विकल्पमहमित्युद्बोधनिष्पादकः।
चक्रेऽस्मिन् सविकल्पबोधकमहंतत्त्वं महान् खल्वसौ
सम्पुष्टं त्रिगुणैस्तमोऽतिबहुलं विष्णो भवत्प्रेरणात्॥ ५॥

इस प्रकार मायाके कार्योंमें यह महत्तत्त्व स्वयं त्रिगुणात्मक होनेपर भी सत्त्वप्रधान है। यही इस जीवमें 'मैं निर्विकल्प—मनुष्यत्वादि विशेषणोंसे रहित हूँ' इस प्रकारके ज्ञानका निष्पादन करनेवाला है। विष्णो! आपकी प्रेरणासे उसी महत्तत्त्वने ऐसे अहंतत्त्वका निर्माण किया है जो इस जीवमें 'मैं सविकल्प हूँ' ऐसे ज्ञानका उत्पादक, त्रिगुणोंद्वारा परिपोषित तथा अतिशय तमःप्रधान है॥ ५॥

सोऽहं च त्रिगुणक्रमात् त्रिविधतामासाद्य वैकारिको
भूयस्तैजसतामसाविति भवन्नाद्येन सत्त्वात्मना।
देवानिन्द्रियमानिनोऽकृत दिशावातार्कपाश्यश्विनो
वह्नीन्द्राच्युतमित्रकान् विधुविधिश्रीरुद्रशारीरकान्॥ ६॥

यों महत्तत्त्वसे प्रादुर्भूत हुए उस अहंतत्त्वने उत्पन्न होकर पुनः सत्त्व-रज-तम यों त्रिगुणक्रमसे क्रमशः वैकारिक, तैजस, तामस स्वरूप धारण करके सत्त्वात्मक वैकारिक अहंतत्त्वके द्वारा दिक्, वायु, सूर्य, वरुण और अश्विनीकुमार (जो क्रमशः श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण—इन ज्ञानेन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवता हैं) तथा अग्नि, इन्द्र, भगवान् विष्णु, मित्र और प्रजापति (जो क्रमशः वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—इन कर्मेन्द्रियोंके अधिष्ठाता हैं) एवं चन्द्र, ब्रह्मा, श्रीरुद्र और क्षेत्रज्ञ (जो मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त—इस अन्तःकरण-चतुष्टयके देवता हैं) आदि इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवताओंको उत्पन्न किया॥ ६॥

भूमन्मानसबुद्ध्यहंकृतिमिलच्चित्ताख्यवृत्त्यान्वितं
तच्चान्तःकरणं विभो तव बलात् सत्त्वांश एवासृजत्।
जातस्तैजसतो दशेन्द्रियगणस्तत्तामसांशात्पुन-
स्तन्मात्रं नभसो मरुत्पुरपते शब्दोऽजनि त्वद्बलात्॥ ७॥

भूमन्! आपके ही बलसे सात्त्विक अहंतत्त्वने ही मन, बुद्धि और अहंकारसे संयुक्त चित्त नामक वृत्तिसे समन्वित अन्तःकरणकी रचना की। विभो! रजोगुण-प्रधान तैजस अहंकारसे पञ्चज्ञानेन्द्रिय तथा पञ्च-कर्मेन्द्रिय—यों दस इन्द्रियोंका समुदाय उत्पन्न हुआ। मरुत्पुरपते! पुनः आपकी प्रेरणासे उसके तामस अंशसे आकाशका तन्मात्रस्वरूप शब्द प्रकट हुआ॥ ७॥

शब्दाद् व्योम ततस्ससर्जिथ विभो स्पर्शं ततो मारुतं
तस्माद् रूपमतो महोऽथ च रसं तोयं च गन्धं महीम्।
एवं माधव पूर्वपूर्वकलनादाद्याद्यधर्मान्वितं
भूतग्राममिमं त्वमेव भगवन् प्राकाशयस्तामसात्॥ ८॥

विभो! उस शब्दसे आकाश, आकाशसे वायु-गुण स्पर्श, स्पर्शसे वायु, वायुसे तेजोगुण रूप, रूपसे तेज, तेजसे जलका गुण रस, रससे जल, जलसे पृथ्वी-गुण गन्ध और गन्धसे पृथ्वीकी रचना आपने ही की है। षडैश्वर्यसम्पन्न माधव! यों पूर्व-पूर्वके सम्मेलनसे उत्तरोत्तर आदि-आदिके धर्मोंसे समन्वित इस भूतसमूहको आपने ही तामस अहंकारसे प्रकट किया है॥ ८॥

एते भूतगणास्तथेन्द्रियगणा देवाश्च जाताः पृथङ्-
नो शेकुर्भुवनाण्डनिर्मितिविधौ दैवैरमीभिस्तदा।
त्वं नानाविधसूक्तिभिर्नुतगुणस्तत्त्वान्यमून्याविशं-
श्चेष्टाशक्तिमुदीर्य तानि घटयन् हैरण्यमण्डं व्यधाः॥ ९ ॥

जब ये भूतगण, इन्द्रियसमुदाय तथा उनके अधिष्ठातृ-देवता उत्पन्न होकर पृथक्-पृथक् ब्रह्माण्डके निर्माण-कार्यमें समर्थ नहीं हुए, तब उन देवोंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति की। यों स्तुति किये जानेपर आपने उन तत्त्वोंमें प्रविष्ट होकर उनकी क्रियाशक्तिका

उत्पादन किया और फिर उन्हें परस्पर संयुक्त करके इस हिरण्मय ब्रह्माण्डकी रचना की॥ ९॥

अण्डं तत्खलु पूर्वसृष्टसलिलेऽतिष्ठत्सहस्रं समा
निर्भिन्दन्नकृथाश्चतुर्दशजगद्रूपं विराडाह्वयम्।
साहस्रैः करपादमूर्धनिवहैर्निश्शेषजीवात्मको
निर्भातोऽसि मरुत्पुराधिप स मां त्रायस्व सर्वामयात्॥ १०॥

वह अचेतन अण्ड जब सहस्रों वर्षोंतक पूर्वरचित आवरण-जलमें पड़ा रहा, तब आपने अपने अंशसे उसमें प्रविष्ट होकर विभिन्न रूपोंमें उसे विभक्त करते हुए चौदह भुवनरूप विराट्संज्ञक शरीरका निर्माण किया। तत्पश्चात् आप हजारों हाथ-पैर-मस्तक आदि अवयवसमूहोंसे संयुक्त हो अखिल चराचर जीवस्वरूपमें प्रकाशित हो रहे हैं। मरुत्पुराधिप! वही आप सम्पूर्ण रोगोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति विराट्पुरुषोत्पत्तिवर्णनं पञ्चमदशकं समाप्तम्॥

षष्ठदशकम्

विराट् शरीरके जगत्स्वरूपत्वका वर्णन

एवं चतुर्दशजगन्मयतां गतस्य
पातालमीश तव पादतलं वदन्ति।
पादोर्ध्वदेशमपि देव रसातलं ते
गुल्फद्वयं खलु महातलमद्भुतात्मन्॥ १॥

अद्भुत स्वरूपवाले देवाधिदेव ईश्वर! उपर्युक्त प्रकारसे चौदह भुवनोंके रूपमें प्रकट हुए आपके पादतलको पाताल, पादके ऊर्ध्वभागको रसातल और दोनों टखनोंको महातल कहा गया है॥ १॥

जङ्घे तलातलमथो सुतलं च जानू
किं चोरुभागयुगलं वितलातले द्वे।
क्षोणीतलं जघनमम्बरमङ्ग नाभि-
र्वक्षश्च शक्रनिलयस्तव चक्रपाणे॥ २॥

भगवन् चक्रपाणे! आपकी दोनों पिंडलियाँ तलातल, दोनों घुटने सुतल, दोनों जाँघोंका अधोभाग वितल और ऊर्ध्वभाग अतल, जघनभाग पृथ्वीतल, नाभि आकाश और वक्षःस्थल इन्द्रका निवासभूत स्वर्ग है॥ २॥

ग्रीवा महस्तव मुखं च जनस्तपस्तु
फालं शिरस्तव समस्तमयस्य सत्यम्।
एवं जगन्मयतनो जगदाश्रितैर-
प्यन्यैर्निबद्धवपुषे भगवन् नमस्ते॥ ३॥

विश्वमूर्ते! आप विश्वात्माका कण्ठदेश महर्लोक, मुख जनलोक, ललाट तपोलोक और सिर सत्यलोक है। भगवन्! इस प्रकार जगत्के आश्रित तथा अन्यान्य वक्ष्यमाण अवयवोंद्वारा सम्पादित शरीरवाले आपको नमस्कार है॥ ३॥

त्वद्ब्रह्मरन्ध्रपदमीश्वर विश्वकंद-
च्छन्दांसि केशव घनास्तव केशपाशाः।
उल्लासि चिल्लियुगलं द्रुहिणस्य गेहं
पक्ष्माणि रात्रिदिवसौ सविता च नेत्रे॥ ४॥

जगत्के कारणभूत ईश्वर! वेद आपका ब्रह्मरन्ध्रपद है। केशव! मेघ आपके केशसमूह, शोभाशाली भ्रूयुगल ब्रह्माका गृह, ऊपर-नीचेकी पलकें क्रमशः रात्रि और दिन तथा दोनों नेत्र सूर्य हैं॥ ४॥

निश्शेषविश्वरचना च कटाक्षमोक्षः
कर्णौ दिशोऽश्वियुगलं तव नासिके द्वे।
लोभत्रपे च भगवन्नधरोत्तरोष्ठौ
तारागणाश्च दशनाश्शमनश्च दंष्ट्रा॥ ५॥

भगवन्! अखिल विश्वकी रचना आपका दृष्टिपात है। दिशाएँ आपके दोनों कान, दोनों अश्विनीकुमार दोनों नासिकाएँ, लोभ अधरोष्ठ, लज्जा उत्तरोष्ठ, तारागण दाँत और यमराज दाढ़ हैं॥ ५॥

माया विलासहसितं श्वसितं समीरो
जिह्वा जलं वचनमीश शकुन्तपङ्क्तिः।

सिद्धादयस्स्वरगणा　मुखरन्ध्रमग्नि-
र्देवा भुजाः स्तनयुगं तव धर्मदेवः ॥ ६ ॥

ईश! आपकी लीलापूर्ण हँसी माया, श्वास वायुदेवता, जिह्वा जल, वचन पक्षिसमूह, षड्ज आदि स्वरसमुदाय सिद्धगण, मुखछिद्र अग्नि, भुजाएँ देवगण तथा स्तनयुगल धर्मदेव हैं॥ ६ ॥

पृष्ठं त्वधर्म इह देव मनस्सुधांशु-
रव्यक्तमेव　हृदयाम्बुजमम्बुजाक्ष।
कुक्षिस्समुद्रनिवहा वसनं तु संध्ये
शेफः प्रजापतिरसौ वृषणौ च मित्रः ॥ ७ ॥

कमलनयन देव! इस रूपमें अधर्म आपकी पीठ, चन्द्रमा मन, अव्यक्त हृदय-कमल, समुद्रसमूह कुक्षि, प्रातः-सायंकी दोनों संध्याएँ वस्त्र, ये प्रजापति ब्रह्मा लिङ्ग तथा मित्रदेवता अण्ड-कोश हैं॥ ७ ॥

श्रोणीस्थलं मृगगणाः पदयोर्नखास्ते
हस्त्युष्ट्रसैन्धवमुखा गमनं तु कालः।
विप्रादिवर्णभवनं　वदनाब्जबाहु-
चारूरुयुग्मचरणं करुणाम्बुधे ते ॥ ८ ॥

करुणासागर! आपका कटिभाग मृगसमूह है, आपके चरणोंके नख हाथी, ऊँट और घोड़े आदि हैं, आपकी गति काल है तथा आपके मुखकमल, भुजाएँ, सुन्दर ऊरुयुगल तथा दोनों चरण विप्रादि वर्णोंके उत्पत्तिस्थान हैं। (अर्थात् विप्रोंका उत्पत्तिस्थान आपका मुख, क्षत्रियोंका भुजाएँ, वैश्योंका ऊरुयुग्म और शूद्रोंका चरण है)॥ ८ ॥

संसारचक्रमयि चक्रधर क्रियास्ते
वीर्यं महासुरगणोऽस्थिकुलानि शैलाः।
नाड्यस्सरित्समुदयस्तरवश्च　रोम
जीयादिदं　वपुरनिर्वचनीयमीश ॥ ९ ॥

चक्रधर! यह संसारचक्र आपकी क्रियाएँ हैं, महान् असुरोंका समुदाय आपका वीर्य है, पर्वत आपके अस्थिसमूह हैं, नदियोंका

समुदाय नाड़ियाँ हैं और वृक्ष रोएँ हैं। ईश! आपके ऐसे अनिर्वचनीय शरीरकी जय हो॥ ९॥

ईदृग्जगन्मयवपुस्तव कर्मभाजां
कर्मावसानसमये स्मरणीयमाहुः।
तस्यान्तरात्मवपुषे विमलात्मने ते
वातालयाधिप नमोऽस्तु निरुन्धि रोगान्॥ १०॥

गुरुवायुपुरनाथ! आपका ऐसा विराट् रूप साधनभक्तिके अधिकारी साधकोंके षोडशोपचारपूर्वक पूजनरूप कर्मकी समाप्तिके समय स्मरण (ध्यान) करने योग्य कहा जाता है। आप इस विराट्के अन्तर्यामीरूप तथा शुद्ध सत्त्वमय स्वरूपवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप मेरे रोगोंका नाश कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति विराट्पुरुषस्य जगदात्मत्ववर्णनं षष्ठदशकं समाप्तम्॥

सप्तमदशकम्

हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति, तपश्चरण, वैकुण्ठस्वरूप, भगवत्स्वरूप-साक्षात्कार तथा भगवदनुग्रहका वर्णन

एवं देव चतुर्दशात्मकजगद्रूपेण जातः पुन-
स्तस्योर्ध्वं खलु सत्यलोकनिलये जातोऽसि धाता स्वयम्।
यं शंसन्ति हिरण्यगर्भमखिलत्रैलोक्यजीवात्मकं
योऽभूत् स्फीतरजोविकारविकसन्नानासिसृक्षारसः॥ १॥

देव! इस प्रकार आप पहले चौदह भुवनोंके रूपमें प्रकट हुए। तदनन्तर उस जगत्के ऊपर सत्यलोकमें स्वयं ही विधातारूपसे आविर्भूत हुए, जिन्हें शास्त्रज्ञलोग सम्पूर्ण त्रिलोकीके जीवस्वरूप हिरण्यगर्भ नामसे अभिहित करते हैं तथा जो प्रवृद्ध रजोगुणके विकारसे बढ़ी हुई नाना भूतोंकी सिसृक्षा (सृष्टि-रचनाकी इच्छा)-में रस लेने लगे॥ १॥

सोऽयं विश्वविसर्गदत्तहृदयः सम्पश्यमानः स्वयं
बोधं खल्वनवाप्य विश्वविषयं चिन्ताकुलस्तस्थिवान्।

तावत्त्वं जगताम्पते तप तपेत्येवं हि वैहायसीं
वाणीमेनमशिश्रवः श्रुतिसुखां कुर्वंस्तपःप्रेरणाम्॥ २॥

जगदीश्वर! वही ब्रह्मा जब चराचर जीवोंकी विविध सृष्टि-रचनामें दत्तचित्त होकर तद्विषयक ज्ञानकी खोज करने लगे, परंतु उन्हें विश्व-सृष्टिविषयक ज्ञानका आभास नहीं प्राप्त हुआ, तब वे चिन्ताकुल होकर चुपचाप बैठ गये। उस समय आपने इन्हें तपस्याके लिये प्रेरित करते हुए 'तप तप' यों श्रोत्रको आनन्द देनेवाली आकाशवाणी सुनायी॥ २॥

कोऽसौ मामवदत्पुमानिति जलापूर्णे जगन्मण्डले
दिक्षूद्वीक्ष्य किमप्यनीक्षितवता वाक्यार्थमुत्पश्यता।
दिव्यं वर्षसहस्रमात्ततपसा तेन त्वमाराधित-
स्तस्मै दर्शितवानसि स्वनिलयं वैकुण्ठमेकाद्भुतम्॥ ३॥

उसे सुनकर ब्रह्मा यों विचार करने लगे कि 'इस समय सारा जगन्मण्डल जलसे आप्लावित है। ऐसी दशामें जिसने मुझसे ऐसी वाणी कही है, वह पुरुष कौन है?' यों विचारकर वे सिर उठाकर चारों दिशाओंमें देखने लगे, परंतु उन्हें जलके अतिरिक्त और कुछ दिखायी न दिया। तब वाक्यार्थपर विचार करके उन्होंने एक सहस्र दिव्य वर्षतक तपस्या की। इस प्रकार ब्रह्माद्वारा आराधित होनेपर आपने अपने निवासस्थान वैकुण्ठका, जो सर्वप्रधान एवं अद्भुत है, उन्हें दर्शन कराया॥ ३॥

माया यत्र कदापि नो विकुरुते भाते जगद्भ्यो बहि-
श्शोकक्रोधविमोहसाध्वसमुखा भावास्तु दूरंगताः।
सान्द्रानन्दझरी च यत्र परमज्योतिःप्रकाशात्मके
तत्ते धाम विभावितं विजयते वैकुण्ठरूपं विभो॥ ४॥

वह वैकुण्ठलोक चौदहों भुवनोंसे बाहर सुशोभित तथा परमज्योति-प्रकाशस्वरूप है, वहाँ माया कभी भी किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं कर पाती। इसी कारण शोक, क्रोध, मोह तथा मरण-भय आदि भाव वहाँसे दूर हो गये हैं एवं घनीभूत आनन्दका प्रवाह वहाँ सदा बहता रहता है। विभो! ब्रह्माको दिखाया गया आपका वह वैकुण्ठ नामक धाम सर्वोत्कृष्टरूपसे वर्तमान है॥ ४॥

यस्मिन् नाम चतुर्भुजा हरिमणिश्यामावदातत्विषो
नानाभूषणरत्नदीपितदिशो राजद्विमानालयाः।
भक्तिप्राप्ततथाविधोन्नतपदा दीव्यन्ति दिव्या जना-
स्तत्ते धाम निरस्तसर्वशमलं वैकुण्ठरूपं जयेत्॥ ५॥

जिन्होंने भक्तिद्वारा वैसा उन्नत पद प्राप्त किया है, जिनके चार भुजाएँ हैं, इन्द्रनीलमणिके सदृश जिनके शरीरकी निर्मल श्यामल कान्ति है, जिनके अनेकविध आभूषणोंमें जड़े हुए रत्नोंकी प्रभासे दिशाएँ उद्भासित होती रहती हैं, शोभायमान विमान जिनके गृह हैं, ऐसे दिव्य जन जिस लोकमें प्रकाशित हो रहे हैं, समस्त पापोंसे रहित आपके उस वैकुण्ठरूप धामकी जय हो॥ ५॥

नानादिव्यवधूजनैरभिवृता विद्युल्लतातुल्यया
विश्वोन्मादनहृद्यगात्रलतया विद्योतिताशान्तरा।
त्वत्पादाम्बुजसौरभैककुतकाल्लक्ष्मीः स्वयं लक्ष्यते
यस्मिन् विस्मयनीयदिव्यविभवं तत्ते पदं देहि मे॥ ६॥

अनेकविध दिव्याङ्गनाएँ जिन्हें घेरे रहती हैं, जो अपनी विद्युल्लतासदृश एवं विश्वको उन्मत्त कर देनेवाली कमनीय गात्रलतासे दिगन्तरालको प्रदीप्त करनेवाली हैं, ऐसी लक्ष्मी स्वयं जिस वैकुण्ठलोकमें एकमात्र आपके चरणकमलोंकी सुगन्धकी लालसा मनमें लिये निवास करती देखी जाती हैं तथा जो आश्चर्यजनक दिव्य वैभवसे सम्पन्न हैं, अपना वही परमपद मुझे भी प्राप्त कराइये॥ ६॥

तत्रैवं प्रतिदर्शिते निजपदे रत्नासनाध्यासितं
भास्वत्कोटिलसत्किरीटकटकाद्याकल्पदीप्राकृति।
श्रीवत्साङ्कितमात्तकौस्तुभमणिच्छायारुणं कारणं
विश्वेषां तव रूपमैक्षत विधिस्तत्ते विभो भातु मे॥ ७॥

विभो! इस प्रकार आपने जिसका दर्शन कराया, आपके उस निज परमधाम (वैकुण्ठ)-में ब्रह्माजीने उस समय आपका वह दिव्य रूप देखा, जो रत्ननिर्मित सिंहासनपर आसीन था, करोड़ों चमकीले एवं शोभासम्पन्न किरीट-कङ्कण आदि आभूषणोंसे जिसका अङ्ग-

अङ्ग उद्दीप्त हो रहा था, जो श्रीवत्सके चिह्नसे* सुशोभित था, धारण किये हुए कौस्तुभमणिकी कान्तिसे जिसकी आभा अरुण दीख रही थी तथा जो सबका कारण है। भगवन्! आपका वही रूप मेरे समक्ष भी प्रकाशित हो॥ ७॥

कालाम्भोदकलायकोमलरुचां चक्रेण चक्रं दिशा-
मावृण्वानमुदारमन्दहसितस्यन्दप्रसन्नाननम्।
राजत्कम्बुगदारिपङ्कजधरश्रीमद्भुजामण्डलं
स्रष्टुस्तुष्टिकरं वपुस्तव विभो मद्रोगमुद्वासयेत्॥ ८॥

वह काले मेघकी नीलिमा तथा मटरके फूलोंकी-सी कोमल कमनीय श्याम कान्तिके मण्डलसे सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको व्याप्त कर रहा था। उदार मन्द हास्यकी झड़ीसे मुखारविन्दपर प्रसन्नता खेल रही थी तथा सुन्दर शङ्ख, गदा, चक्र और कमल धारण करनेसे भुजाएँ अत्यन्त शोभासम्पन्न दिखायी देती थीं। प्रभो! आपका वह श्रीविग्रह, जिसने ब्रह्माजीको निहाल कर दिया था, मेरे रोगका विनाश करे॥ ८॥

दृष्ट्वा सम्भृतसम्भ्रमः कमलभूस्त्वत्पादपाथोरुहे
हर्षावेशवशंवदो निपतितः प्रीत्या कृतार्थीभवन्।
जानास्येव मनीषितं मम विभो ज्ञानं तदापादय
द्वैताद्वैतभवत्स्वरूपपरमित्याचष्ट तं त्वां भजे॥ ९॥

तदनन्तर कमलयोनि ब्रह्मा आपके उस रूपको देखकर किंकर्तव्यविमूढ हो गये। पुनः हर्षावेशके अधीन हो वे आपके पादपद्मोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े। फिर प्रसन्नतापूर्वक कृतार्थताका अनुभव करते हुए बोले—'विभो! आप मेरे मनोरथको तो जानते ही हैं, आपके द्वैताद्वैतस्वरूपका बोध करानेवाला जो ज्ञान है, वह मुझे प्रदान कीजिये।' भगवन्! इस प्रकार ब्रह्माजीके सम्मुख प्रकट हुए आपका मैं भजन कर रहा हूँ॥ ९॥

आताम्रे चरणे विनम्रमथ तं हस्तेन हस्ते स्पृशन्
बोधस्ते भविता न सर्गविधिभिर्बन्धोऽपि संजायते।

---

* वक्षःस्थलपर स्थित श्वेतबालोंका एक आवर्त।

इत्याभाष्य गिरं प्रतोष्य नितरां तच्चित्तरूढः स्वयं
सृष्टौ तं समुदैरयस्स भगवन्नुल्लासयोल्लाघताम्॥ १०॥

भगवन्! आपके अरुणाभ चरणोंमें दण्डवत् पड़े हुए ब्रह्माको उठाकर उनके हाथको हाथमें लेकर आपने उनसे कहा—'तुम्हारा ईप्सित ज्ञान तुम्हें प्राप्त हो जायगा और सृष्टि करनेसे तुम्हें कर्मजनित बन्धन भी नहीं प्राप्त होगा।' यों कहकर आपने उन्हें भलीभाँति संतुष्ट किया और स्वयं अन्तरात्मारूपसे उनके हृदयमें प्रविष्ट होकर उन्हें सृष्टि-रचनाके लिये सम्यक् प्रकारसे प्रेरणा प्रदान की। वही आप मेरे लिये आरोग्यका सम्पादन कीजिये॥ १०॥

॥ इति हिरण्यगर्भोत्पत्तिवर्णनं सप्तमदशकं समाप्तम्॥

तृतीयस्कन्धपरिच्छेदः

अष्टमदशकम्

प्रलयानन्तर जगत्की सृष्टिका वर्णन

एवं तावत् प्राकृतप्रक्षयान्ते
ब्राह्मे कल्पे ह्यादिमे लब्धजन्मा।
ब्रह्मा भूयस्त्वत्त एवाप्य वेदान्
सृष्टिं चक्रे पूर्वकल्पोपमानाम्॥ १॥

भगवन्! यों प्राकृत प्रलयके अन्तमें आदिम ब्राह्म-कल्पमें पुनः जन्म ग्रहण करके ब्रह्माजीने आपसे ही ऋगादि वेदोंका ज्ञान प्राप्त किया और पुनः पूर्वकल्पके अनुसार सृष्टिकी रचना की॥ १॥

सोऽयं चतुर्युगसहस्रमितान्यहानि
तावन्मिताश्च रजनीर्बहुशो निनाय।
निद्रात्यसौ त्वयि निलीय समं स्वसृष्टै-
र्नैमित्तिकप्रलयमाहुरतोऽस्य रात्रिम्॥ २॥

उन ब्रह्माका एक दिन एक सहस्र चतुर्युगीके परिमाणवाला होता है तथा उनकी रात्रिका भी परिमाण उतना ही है। इस प्रकार उन्होंने बहुत-से दिन और रातें व्यतीत कीं; तदनन्तर वे स्व-रचित समस्त चराचर जगत्के साथ अपने-आपको नारायणमें विलीन करके जब निद्राके वशीभूत हो जाते हैं, तब ब्रह्माजीकी उस रात्रिको नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है॥ २॥

अस्मादृशां पुनरहर्मुखकृत्यतुल्यां
सृष्टिं करोत्यनुदिनं स भवत्प्रसादात्।
प्राग्ब्राह्मकल्पजनुषां च परायुषां तु
सुप्तप्रबोधनसमास्ति तदापि सृष्टिः॥ ३॥

जैसे हमलोग प्रतिदिन प्रातःकालिक कृत्योंका अनुष्ठान करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा आपकी कृपासे प्रत्येक दिनके प्रारम्भमें सृष्टि करते

रहते हैं; जिनका जन्म ब्राह्म कल्पके पूर्व हुआ है तथा जिनकी आयु दो परार्धके परिमाणकी (अर्थात् ३१,१०,४०,००,००,००,००० मानव वर्षोंकी) है ऐसे ब्रह्माओंके लिये यह सृष्टि सोनेके बाद जागरणके समान होती है॥ ३॥

पञ्चाशदब्दमधुना स्ववयोऽर्धरूप-
मेकं परार्धमतिवृत्य हि वर्ततेऽसौ।
तत्रान्त्यरात्रिजनितान् कथयामि भूमन्
पश्चाद्दिनावतरणे च भवद्विलासान्॥ ४॥

भूमन्! वही ब्रह्मा इस समय अपनी आयुके अर्धभागरूप पचास वर्षको, जो एक परार्ध कहलाता है, व्यतीत कर चुके हैं। अब मैं उस प्रथम परार्धकी अन्तिम रात्रि तथा द्वितीय परार्धके दिवसारम्भमें घटित होनेवाली आपकी सृष्टि-प्रलयसम्बन्धिनी लीलाओंका वर्णन करता हूँ॥ ४॥

दिनावसानेऽथ सरोजयोनिः सुषुप्तिकामस्त्वयि संनिलिल्ये।
जगन्ति च त्वज्जठरं समीयुस्तदेदमेकार्णवमास विश्वम्॥ ५॥

तदनन्तर दिनकी समाप्तिके समय जब कमलयोनि ब्रह्माको शयन करनेकी इच्छा हुई, तब वे आप नारायणमें विलीन हो गये। फिर तो उनके साथ ही सारे लोक आपके उदरमें समा गये। उस समय यह विश्व एकार्णव (केवल जल) मात्र शेष रह गया॥ ५॥

तवैव वेषे फणिराजिशेषे जलैकशेषे भुवने स्म शेषे।
आनन्दसान्द्रानुभवस्वरूपः स्वयोगनिद्रापरिमुद्रितात्मा॥ ६॥

इस प्रकार सम्पूर्ण भुवनके एकार्णवमें विलीन हो जानेपर आनन्दघनानुभवस्वरूप आप अपने ही अङ्गभूत नागराज शेषपर शयन करने लगे। उस समय आपने अपने स्वरूपको योगनिद्राके आवरणद्वारा सब ओरसे आवृत कर लिया था॥ ६॥

कालाख्यशक्तिं प्रलयावसाने प्रबोधयेत्यादिशता किलादौ।
त्वया प्रसुप्तं परिसुप्तशक्तिव्रजेन तत्राखिलजीवधाम्ना॥ ७॥

उस समय प्रलयके आरम्भमें जिनमें शक्तियोंका समूह विलीन हो गया है तथा जो अखिल जीवोंके विश्रामस्थान हैं, ऐसे आप कालनाम्नी

शक्तिको 'प्रलयके अवसान होनेपर मुझे जगा देना', यों आदेश देकर (उस कालशक्तिके साथ ही) सो गये॥ ७॥

चतुर्युगाणां च सहस्रमेवं त्वयि प्रसुप्ते पुनरद्वितीये।
कालाख्यशक्तिः प्रथमप्रबुद्धा प्राबोधयत्त्वां किल विश्वनाथ॥ ८ ॥

विश्वनाथ! इस प्रकार आप अद्वितीय परमेश्वरके एक सहस्र चतुर्युगीके समयतक शयन करते रहनेपर कालशक्तिकी निद्रा पहले भङ्ग हुई। तब, कहते हैं, उसने आपको जगाया॥ ८॥

विबुध्य च त्वं जलगर्भशायिन्
विलोक्य लोकानखिलान् प्रलीनान्।
तेष्वेव सूक्ष्मात्मतया निजान्तः-
स्थितेषु विश्वेषु ददाथ दृष्टिम्॥ ९ ॥

एकार्णवके मध्यमें शयन करनेवाले भगवन्! जागनेपर जब आपने समस्त लोकोंको अपनेमें ही विलीन देखा, तब सूक्ष्मरूपसे अपने अंदर ही स्थित इन लोकोंकी ओर दृष्टिपात किया॥ ९ ॥

ततस्त्वदीयादयि नाभिरन्ध्रादुदञ्चितं किंचन दिव्यपद्मम्।
निलीननिश्शेषपदार्थमालासंक्षेपरूपं मुकुलायमानम्॥ १०॥

अयि भगवन्! तत्पश्चात् आपके नाभि-छिद्रसे एक दिव्य कमल उद्भूत हुआ, जो अभी मुकुलित-अवस्थामें ही था। वह आपमें विलीन समस्त पदार्थसमूहोंका मानो संक्षेपरूप (बीजभूत) था॥ १०॥

तदेतदम्भोरुहकुड्मलं ते कलेवरात्तोयपथे प्ररूढम्।
बहिर्निरीतं परितः स्फुरद्भिः स्वधामभिर्ध्वान्तमलं न्यकृन्तत्॥ ११॥

वह कमलका कुड्मल उस जलावृत प्रदेशमें आपके शरीरसे अङ्कुरित होकर जलके बाहर निकला। तत्पश्चात् उसने चतुर्दिक् चमकते हुए अपने तेजःपुञ्जसे अन्धकारका पूर्णतः विनाश कर दिया॥ ११ ॥

सम्फुल्लपत्रे नितरां विचित्रे तस्मिन् भवद्वीर्यधृते सरोजे।
स पद्मजन्मा विधिराविरासीत् स्वयम्प्रबुद्धाखिलवेदराशिः॥ १२॥

आपके योगबलसे धारित वह कमल अत्यन्त विचित्र था, उसके दल भलीभाँति विकसित हो रहे थे; उसी कमलपर पूर्वोक्त पद्मजन्मा

ब्रह्माका आविर्भाव हुआ, जिन्हें सम्पूर्ण वेद-समूहका ज्ञान (आपकी कृपासे) स्वयं हो गया था॥ १२॥

अस्मिन् परात्मन् ननु पाद्मकल्पे त्वमित्थमुत्थापितपद्मयोनिः।
अनन्तभूमा मम रोगराशिं निरुन्धि वातालयवास विष्णो॥ १३॥

परमात्मन्! इस प्रकार इस पाद्मकल्पमें आपने पद्मयोनि ब्रह्माको आविर्भूत किया था। विष्णो! आपकी महिमा अनन्त है। गुरुवायुपुरके वासी भगवन्! मेरे रोगसमूहका नाश कीजिये॥ १३॥

॥ इति प्रलयजगत्सृष्ट्योर्वर्णनमष्टमदशकं समाप्तम्॥

नवमदशकम्

जगत्की सृष्टिका वर्णन

स्थितः स कमलोद्भवस्तव हि नाभिपङ्केरुहे
कुतस्स्विदिदमम्बुधावुदितमित्यनालोकयन्।
तदीक्षणकुतूहलात् प्रतिदिशं विवृत्तानन-
श्चतुर्वदनतामगाद्विकसदष्टदृष्ट्यम्बुजाम् ॥ १॥

तदनन्तर वे कमलयोनि ब्रह्मा आपके नाभिकमलकी कर्णिकापर स्थित होकर यह सोचने लगे कि 'इस एकार्णवमें यह कमल कहाँ प्रकट हो गया?' परंतु उन्हें इसका तत्त्व ज्ञात नहीं हुआ। तब उस कमलके उत्पत्तिस्थानको देखनेके कुतूहलसे चारों दिशाओंमें उनके मुख प्रकट हो गये। इस प्रकार वे चार मुखोंसे युक्त हो गये, जिनमें आठ नेत्रकमल विकसित हो रहे थे॥ १॥

महार्णवविघूर्णितं कमलमेव तत्केवलं
विलोक्य तदुपाश्रयं तव तनुं तु नालोकयन्।
क एष कमलोदरे महति निस्सहायो ह्यहं
कुतस्स्विदिदमम्बुजं समजनीति चिन्तामगात्॥ २॥

उन्हें उस महार्णवमें केवल वह कमल ही कम्पित होता हुआ दीख रहा था, परंतु उसका अधिष्ठानभूत आपका शरीर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। तब वे यों चिन्ता करने लगे कि 'इस महान् कमलके उदरमें यह अकेला मैं कौन हूँ और यह कमल कहाँसे प्रकट हो गया?' ॥ २ ॥

अमुष्य हि सरोरुहः किमपि कारणं सम्भवे-
दिति स्म कृतनिश्चयः स खलु नालरन्ध्राध्वना।
स्वयोगबलविद्यया समवरूढवान् प्रौढधी-
स्त्वदीयमतिमोहनं न तु कलेवरं दृष्टवान्॥ ३॥

उनकी बुद्धि प्रौढ़ (ऊहापोहमें निपुण) थी ही, अतः वे 'इस मेरे निवासभूत कमलका कोई कारण अवश्य होगा' यों निश्चय करके योगबलसहित आत्मज्ञानके सहारे उस कमल-नालके छिद्रमार्गसे नीचे उतरे। फिर भी आपका परम मनोहर श्रीविग्रह उनके दृष्टिपथमें नहीं आया॥ ३॥

ततः सकलनालिकाविवरमार्गगो मार्गयन्
प्रयस्य शतवत्सरं किमपि नैव संदृष्टवान्।
निवृत्त्य कमलोदरे सुखनिषण्ण एकाग्रधीः
समाधिबलमादधे भवदनुग्रहैकाग्रही॥ ४॥

तदनन्तर वे उस कमलके सम्पूर्ण नालछिद्रमें क्रमशः विचरण करते हुए अन्वेषण करने लगे। इस तरह एक सौ दिव्य वर्षोंतक प्रयास करनेपर भी उन्हें कोई वस्तु दिखायी न पड़ी। तब वे लौटकर उस कमल-कर्णिकापर सुखपूर्वक आसीन हो गये। फिर तो उन्होंने बुद्धिको एकाग्र करके एकमात्र आपके अनुग्रहका ही आग्रही होकर समाधिबलका आश्रय लिया॥ ४॥

शतेन परिवत्सरैर्दृढसमाधिबन्धोल्लसत्-
प्रबोधविशदीकृतः स खलु पद्मिनीसम्भवः।
अदृष्टचरमद्भुतं तव हि रूपमन्तर्दृशा
व्यचष्ट परितुष्टधीर्भुजगभोगभागाश्रयम्॥ ५॥

यों सैकड़ों दिव्य वर्षोंतक सुदृढ़ समाधिबन्धसे जब उनका ज्ञान उल्लसित एवं निर्मल हो गया, तब उन पद्मजन्माको अन्तर्दृष्टिद्वारा आपका वह अद्भुत रूप दिखायी दिया, जिसका दर्शन पहले कभी नहीं हुआ था और जिसने शेषनागके शरीरभागको अपना आश्रयस्थान बना रखा था। उसे देखकर ब्रह्मा परम संतुष्ट हो गये॥ ५॥

किरीटमकुटोल्लसत्कटकहारकेयूरयुङ्-
मणिस्फुरितमेखलं सुपरिवीतपीताम्बरम्।
कलायकुसुमप्रभं गलतलोल्लसत्कौस्तुभं
वपुस्तदयि भावये कमलजन्मने दर्शितम्॥ ६॥

मस्तकपर धारण किये हुए किरीट-मुकुटसे उस रूपकी अद्भुत शोभा हो रही थी; वह कङ्कण, मुक्ताहार तथा बाजूबंदसे सुशोभित था, उसका कटिप्रदेश नाना प्रकारकी मणियोंद्वारा निर्मित करधनीसे चमक रहा था, पीताम्बर उसका सुन्दर परिधान था, कण्ठप्रदेश कौस्तुभमणिसे उद्भासित हो रहा था, उससे कलाय-पुष्पके समान श्यामल प्रभा छिटक रही थी। अयि भगवन्! ऐसे जिस श्रीविग्रहका आपने कमलयोनि ब्रह्माको दर्शन कराया था, आपके उसी रूपका मैं ध्यान करता हूँ॥ ६॥

श्रुतिप्रकरदर्शितप्रचुरवैभव श्रीपते
हरे जय जय प्रभो पदमुपैषि दिष्ट्या दृशोः।
कुरुष्व धियमाशु मे भुवननिर्मितौ कर्मठा-
मिति द्रुहिणवर्णितस्वगुणबृंहिमा पाहि माम्॥ ७॥

लक्ष्मीपते! 'उपनिषद्-वाक्यसमूह आपके महान् ऐश्वर्यका प्रतिपादन करते रहते हैं। हरे! आपकी जय हो, जय हो। प्रभो! सौभाग्यसे ही आप मेरे दृष्टिगोचर हुए हैं। अब शीघ्र ही मेरी बुद्धिको लोक-निर्माणकार्यमें समर्थ बना दीजिये।' यों ब्रह्माद्वारा जिनके गुणोंकी महिमाका वर्णन किया गया है, ऐसे आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ७॥

लभस्व भुवनत्रयीरचनदक्षतामक्षतां
गृहाण मदनुग्रहं कुरु तपश्च भूयो विधे।

भवत्वखिलसाधनी मयि च भक्तिरत्युत्कटे-
त्युदीर्य गिरमादधा मुदितचेतसं वेधसम्॥ ८ ॥

(तदनन्तर) 'ब्रह्मन्! त्रिलोकीकी रचनामें कभी क्षीण न होनेवाली दक्षता प्राप्त करो, मेरा अनुग्रह लो और पुनः तप करो। साथ ही, तुम्हें मेरे प्रति सब कुछ सिद्ध करनेवाली तीव्रतम भक्ति प्राप्त हो'—ऐसी बात कहकर आपने ब्रह्माके चित्तको हर्षविभोर कर दिया॥ ८॥

शतं कृततपास्ततः स खलु दिव्यसंवत्सरा-
नवाप्य च तपोबलं मतिबलं च पूर्वाधिकम्।
उदीक्ष्य किल कम्पितं पयसि पङ्कजं वायुना
भवद्बलविजृम्भितः पवनपाथसी पीतवान्॥ ९ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्माने एक सौ दिव्य वर्षोंतक तपस्या की, जिससे उन्हें पहलेसे अधिक तपोबल तथा बुद्धिबलकी प्राप्ति हुई। तब उस एकार्णवके जलमें अपने अधिष्ठानभूत कमलको उत्कट वायुद्वारा कम्पित होते देखकर उन्होंने उस वायु तथा जलको पी लिया; क्योंकि उस समय आपका बल पाकर उनकी शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी॥ ९॥

तवैव कृपया पुनः सरसिजेन तेनैव स
प्रकल्प्य भुवनत्रयीं प्रववृते प्रजानिर्मितौ।
तथाविधकृपाभरो गुरुमरुत्पुराधीश्वर
त्वमाशु परिपाहि मां गुरुदयोक्षितैरीक्षितैः॥ १०॥

पुनः वे आपकी कृपासे ही उसी कमलके द्वारा भूः-भुवः-स्वः-स्वरूप त्रिलोकीकी कल्पना करके प्रजाके निर्माणकार्यमें प्रवृत्त हो गये। गुरुवायुपुराधीश्वर! आप वैसी कृपासे परिपूर्ण हैं, अतः अपने महती दयासे आर्द्र हुए दृष्टिपातोंद्वारा शीघ्र ही मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति जगत्सृष्टिप्रकारवर्णनं नवमदशकं समाप्तम्॥

दशमदशकम्

सृष्टि-भेद-वर्णन

वैकुण्ठ वर्धितबलोऽथ भवत्प्रसादा-
दम्भोजयोनिरसृजत् किल जीवदेहान्।
स्थास्नूनि भूरुहमयाणि तथा तिरश्चां
जातीर्मनुष्यनिवहानपि देवभेदान्॥ १ ॥

वैकुण्ठ! तदनन्तर आपकी कृपासे जिनका बल बढ़ा हुआ था, वे पद्मजन्मा ब्रह्मा जीव-शरीरोंकी रचना करने लगे। उन्होंने वृक्ष आदि स्थावरों, तिर्यग्योनिवालोंकी विभिन्न जातियों, मनुष्य-समुदायों तथा अनेकविध देवोंकी रचना की॥ १ ॥

मिथ्याग्रहास्मिमतिरागविकोपभीति-
रज्ञानवृत्तिमिति पञ्चविधां स सृष्ट्वा।
उद्दामतामसपदार्थविधानदून-
स्तेने त्वदीयचरणस्मरणं विशुद्ध्यै॥ २ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने मिथ्याग्रह (आत्मासे भिन्न प्रपञ्चके अस्तित्वकी प्रतीति), अस्मिमति (अस्मिता—शरीरादिमें अहंताभिमान), राग (आसक्ति), विकोप (धनादिके अपहरण करनेवालेपर क्रोध) तथा भीति (उपभोग्य पदार्थोंके व्यय-नाश-जनित भय)—यों पाँच प्रकारकी अज्ञानवृत्तिका निर्माण किया; तदनन्तर प्रभूत तामस पदार्थोंकी रचनासे उनका मन खिन्न हो गया। तब वे आत्मशुद्धिके लिये आपके चरणोंका ध्यान करने लगे॥ २॥

तावत्ससर्ज मनसा सनकं सनन्दं
भूयः सनातनमुनिं च सनत्कुमारम्।
ते सृष्टिकर्मणि तु तेन नियुज्यमाना-
स्त्वत्पादभक्तिरसिका जगृहुर्न वाणीम्॥ ३ ॥

(आपके चरण-स्मरणसे जब उनका मन शुद्ध हो गया) तब उन्होंने पुनः सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमारको अपने मनसे

उत्पन्न किया। तत्पश्चात् जब ब्रह्माने उन्हें सृष्टि-कार्यमें नियुक्त होनेके लिये प्रेरित किया, तब उन सबने उनके उस आदेशरूप वचनको अङ्गीकार नहीं किया; क्योंकि वे तो आपके पादपद्मोंकी भक्तिके ही रसिक थे॥ ३॥

तावत्प्रकोपमुदितं प्रतिरुन्धतोऽस्य
भ्रूमध्यतोऽजनि मृडो भवदेकदेशः।
नामानि मे कुरु पदानि च हा विरिञ्चे-
त्यादौ रुरोद किल तेन स रुद्रनामा॥ ४॥

इस प्रकार जब ब्रह्मा (आज्ञा-भङ्ग होनेसे) उत्पन्न हुए अपने प्रबल कोपका निग्रह कर रहे थे, उसी समय उनके भ्रूमध्यसे मृड देवताने जन्म लिया, जो आपके ही एक अंश हैं। कहते हैं—जन्म लेते ही वे 'हा विरिञ्च! मेरा नामकरण तथा स्थान-निर्धारण करो' यों कहकर रोने लगे, इसी कारण उनका नाम 'रुद्र' हुआ॥ ४॥

एकादशाह्वयतया च विभिन्नरूपं
रुद्रं विधाय दयिता वनिताश्च दत्त्वा।
तावन्त्यदत्त च पदानि भवत्प्रणुन्नः
प्राह प्रजाविरचनाय च सादरं तम्॥ ५॥

तब आपसे प्रेरित होकर ब्रह्माने विभिन्नरूपधारी एकादशनामवाले[१] रुद्रोंका विधान किया और फिर उन्हें एकादश[२] प्यारी पत्नियाँ देकर उतने ही (एकादश[३]) स्थान भी प्रदान किये। तत्पश्चात् उनको आदरपूर्वक प्रजाकी रचनाके लिये नियुक्त किया॥ ५॥

१- मन्युर्मनुर्महिनसो महाञ्छिव ऋतध्वजः।
उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः॥
(श्रीमद्भागवत ३। १२। १२)

२- धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका। इरावती सुधा दीक्षा········ ॥
(श्रीमद्भागवत ३। १२। १३)

३- हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही। सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव············ ॥
(श्रीमद्भागवत ३। १२। ११)

रुद्राभिसृष्टभयदाकृतिरुद्रसंघ-
सम्पूर्यमाणभुवनत्रयभीतचेताः ।
मा मा प्रजाः सृज तपश्चर मङ्गलाये-
त्याचष्ट तं कमलभूर्भवदीरितात्मा ॥ ६ ॥

उस समय रुद्रद्वारा उत्पन्न किये गये भयावनी आकृतिवाले रुद्रसमूहोंसे त्रिलोकी व्याप्त होने लगी, जिससे ब्रह्माका मन भयभीत हो गया। तब आपकी प्रेरणासे ब्रह्माने रुद्रसे यों कहा—'बस, बस, तुम ऐसी प्रजाकी सृष्टि मत करो; बल्कि लोकहितके लिये तपस्यामें लग जाओ'॥ ६ ॥

तस्याथ सर्गरसिकस्य मरीचिरत्रि-
स्तत्राङ्गिराः क्रतुमुनिः पुलहः पुलस्त्यः ।
अङ्गादजायत भृगुश्च वसिष्ठदक्षौ
श्रीनारदश्च भगवन् भवदङ्घ्रिदासः ॥ ७ ॥

भगवन्! तदनन्तर सृष्टि-रचनाके प्रेमी उन ब्रह्माके विभिन्न अङ्गोंसे मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, क्रतुमुनि, पुलह, पुलस्त्य, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और आपके चरणोंके दास श्रीनारद उत्पन्न हुए॥ ७॥

धर्मादिकानभिसृजन्नथ कर्दमं च
वाणीं विधाय विधिरङ्गजसंकुलोऽभूत् ।
त्वद्बोधितैः सनकदक्षमुखैस्तनूजै-
रुद्बोधितश्च विरराम तमो विमुञ्चन् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्माने धर्म आदिकी तथा प्रजापति कर्दमकी सृष्टि की। फिर सरस्वतीकी रचना करके वे कामके वशीभूत हो गये। तब आपके द्वारा प्रेरित सनकादि एवं दक्षादि अपने पुत्रोंके समझानेसे वे अज्ञानका परित्याग करके उस कामसे निवृत्त हो गये॥ ८॥

वेदान् पुराणनिवहानपि सर्वविद्याः
कुर्वन् निजाननगणाच्चतुराननोऽसौ ।
पुत्रेषु तेषु विनिधाय स सर्गवृद्धि-
मप्राप्नुवंस्तव पदाम्बुजमाश्रितोऽभूत् ॥ ९ ॥

उन चतुर्मुख ब्रह्माने अपने चारों मुखोंसे वेदों, पुराणसमूहों तथा समस्त विद्याओंको प्रकटकर अपने मरीचि आदि पुत्रोंमें स्थापित कर दिया। फिर भी जब उन्हें प्रजाकी वृद्धि होती नहीं दीख पड़ी, तब उन्होंने आपके चरणकमलोंका आश्रय लिया॥ ९॥

जानन्नुपायमथ देहमजो विभज्य
स्त्रीपुंसभावमभजन्मनुतद्वधूभ्याम्।
ताभ्यां च मानुषकुलानि विवर्धयंस्त्वं
गोविन्द मारुतपुरेश निरुन्धि रोगान्॥ १०॥

तदनन्तर प्रजावृद्धिके उपायको जानकर ब्रह्मा अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करके एक भागसे मनु तथा दूसरेसे उनकी पत्नी शतरूपाके रूपमें स्त्री-पुरुषभावको प्राप्त हो गये। गुरुवायुपुराधीश गोविन्द! यों उन मनु-शतरूपाद्वारा मनुष्य-कुलकी वृद्धि करते हुए आप मेरे रोगोंका नाश कीजिये॥ १०॥

॥ इति सृष्टिभेदवर्णनं दशमदशकं समाप्तम्॥

एकादशदशकम्

सनकादिका वैकुण्ठमें प्रवेश, जय-विजयको शाप तथा हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षकी उत्पत्ति

क्रमेण सर्गे परिवर्धमाने कदापि दिव्याः सनकादयस्ते।
भवद्विलोकाय विकुण्ठलोकं प्रपेदिरे मारुतमन्दिरेश॥ १॥

मारुतमन्दिरेश! यों क्रमशः सृष्टिकी वृद्धि होनेपर वे दिव्य सनकादि किसी समय आपका दर्शन करनेके लिये विकुण्ठलोकमें पहुँचे॥ १॥

मनोज्ञनैःश्रेयसकाननाद्यैरनेकवापीमणिमन्दिरैश्च।
अनौपमं तं भवतो निकेतं मुनीश्वराः प्रापुरतीतकक्ष्याः॥ २॥

आपका निवासभूत वह विकुण्ठलोक परम मनोहर कैवल्यरूप काननों तथा अनेकों बावलियों एवं रत्ननिर्मित भवनोंसे युक्त होनेके

कारण अनुपम था, उसकी कक्षाओंको पार करते हुए वे मुनीश्वर आपकी सातवीं कक्षाके द्वारपर जा पहुँचे॥ २॥

भवद्दिदृक्षून् भवनं विविक्षून् द्वाःस्थौ जयस्तान् विजयोऽप्यरुन्धाम्।
तेषां च चित्ते पदमाप कोपः सर्वं भवत्प्रेरणयैव भूमन्॥ ३॥

उनके मनमें आपके दर्शनकी उत्कट अभिलाषा थी, अतः वे आपके भवनमें प्रवेश करना चाहते थे। उसी समय जय-विजय नामक द्वारपालोंने उन्हें रोक दिया। तब उनके हृदयमें क्रोध उत्पन्न हो गया। भूमन्! यह सब आपकी प्रेरणासे ही घटित हुआ॥ ३॥

वैकुण्ठलोकानुचितप्रचेष्टौ कष्टौ युवां दैत्यगतिं भजेतम्।
इति प्रशप्तौ भवदाश्रयौ तौ हरिस्मृतिर्नोऽस्त्विति नेमतुस्तान्॥ ४॥

तदनन्तर वे द्वारपालोंको शाप देते हुए बोले—'तुमलोगोंकी चेष्टा वैकुण्ठलोकके लिये अनुचित है तथा तुम्हारा स्वभाव बड़ा क्रूर है, अतः तुम दोनों आसुरी योनिको प्राप्त हो जाओ।' इस प्रकार शापित हुए आपके दोनों किंकर जय-विजय 'हमें भगवत्स्मृति होती रहे' यों प्रार्थना करते हुए उन मुनियोंके चरणोंपर गिर पड़े॥ ४॥

तदेतदाज्ञाय भवानवाप्तः सहैव लक्ष्म्या बहिरम्बुजाक्ष।
खगेश्वरांसार्पितचारुबाहुरानन्दयंस्तानभिराममूर्त्या ॥ ५॥

कमलनयन! उस अवसरपर जब आपको उपर्युक्त घटना ज्ञात हुई तब आप तुरंत ही लक्ष्मीके साथ भवनसे बाहर निकले और अपनी मनोहर मूर्तिका दर्शन देकर उन मुनियोंको आनन्दित किया। उस समय आपने अपनी सुन्दर भुजाको गरुड़के कंधेपर स्थापित कर रखा था॥ ५॥

प्रसाद्य गीर्भिः स्तुवतो मुनीन्द्राननन्यनाथावथ पार्षदौ तौ।
संरम्भयोगेन भवैस्त्रिभिर्मामुपेतमित्यात्तकृपं न्यगादीः॥ ६॥

तदनन्तर आप स्तुति करनेवाले उन मुनीश्वरोंको मधुर वाणीद्वारा प्रसन्न करके अपने अनन्यशरण उन दोनों पार्षदोंसे कृपा-परवश हो यों बोले—'तुम दोनों तीन जन्मोंमें क्रोधजनित एकाग्रताद्वारा पुनः मेरे समीप आ जाओगे'॥ ६॥

त्वदीयभृत्यावथ कश्यपात्तौ सुरारिवीरावुदितौ दितौ द्वौ।
संध्यासमुत्पादनकष्टचेष्टौ यमौ च लोकस्य यमाविवान्यौ॥ ७॥

तदनन्तर वे ही आपके दोनों पार्षद जय-विजय कश्यपद्वारा दितिके गर्भसे दो असुरवीर (हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष) होकर उत्पन्न हुए। वे दोनों जुड़वाँ पैदा हुए थे तथा संध्या-कालमें गर्भाधान होनेके कारण वे इतने क्रूरकर्मा थे मानो लोकके लिये दो अन्य यमराज ही हों॥ ७॥

हिरण्यपूर्वः कशिपुः किलैकः परो हिरण्याक्ष इति प्रतीतः।
उभौ भवन्नाथमशेषलोकं रुषा न्यरुन्धां निजवासनान्धौ॥ ८॥

कहते हैं—उनमेंसे एक (ज्येष्ठ) हिरण्यकशिपु तथा दूसरा (अनुज) हिरण्याक्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने आसुर स्वभावके कारण वे दोनों परमार्थज्ञानसे भ्रष्ट हो गये थे, अतः वे सम्पूर्ण लोकको, जिसके रक्षक आप ही हैं, क्रोधवश पीड़ित करने लगे॥ ८॥

तयोर्हिरण्याक्षमहासुरेन्द्रो रणाय धावन्ननवाप्तवैरी।
भवत्प्रियां क्ष्मां सलिले निमज्ज्य चचार गर्वाद्विनदन् गदावान्॥ ९॥

उन दोनोंमें महान् असुरश्रेष्ठ हिरण्याक्ष त्रिलोकीमें युद्धके लिये घूमता फिरा; परंतु जब उसे अपने अनुकूल शत्रु नहीं प्राप्त हुआ, तब वह आपकी प्रिया पृथ्वीको प्रलयार्णवमें निमज्जित करके गदा लेकर गर्वसे दहाड़ता हुआ घूमने लगा॥ ९॥

ततो जलेशात् सदृशं भवन्तं निशम्य बभ्राम गवेषयंस्त्वाम्।
भक्तैकदृश्यः स कृपानिधिस्त्वं निरुन्धि रोगान् मरुदालयेश॥ १०॥

तदनन्तर वरुणके मुखसे आपको अपने सदृश बली सुनकर वह आपको खोजता हुआ भ्रमण करने लगा। परंतु कृपानिधि आप तो अपने भक्तोंद्वारा ही देखे जा सकते हैं। अतः वायुपुराधीश्वर! आप मेरे रोगोंका विनाश कीजिये॥ १०॥

॥ इति हिरण्यकशिपूत्पत्तिवर्णनमेकादशदशकं समाप्तम्॥

द्वादशदशकम्

वराहावतार और भूमिके उद्धारका वर्णन

स्वायम्भुवो मनुरथो जनसर्गशीलो
दृष्ट्वा महीमसमये सलिले निमग्नाम्।
स्त्रष्टारमाप शरणं भवदङ्घ्रिसेवा-
तुष्टाशयं मुनिजनैः सह सत्यलोके॥ १॥

तदनन्तर प्रजोत्पादनमें तत्पर स्वायम्भुव मनु असमयमें ही पृथ्वीको प्रलयार्णवमें निमग्न देखकर मुनिजनोंके साथ सत्यलोकमें स्थित ब्रह्माकी शरणमें गये। उस समय आपके चरणकमलकी उपासनासे ब्रह्माका मन संतुष्ट था॥ १॥

कष्टं प्रजाः सृजति मय्यवनिर्निमग्ना
स्थानं सरोजभव कल्पय तत्प्रजानाम्।
इत्येवमेष कथितो मनुना स्वयम्भू-
रम्भोरुहाक्ष तव पादयुगं व्यचिन्तीत्॥ २॥

(मनु बोले—) कमलोद्भव! बड़े कष्टकी बात है, मेरे प्रजाकी सृष्टि प्रारम्भ करते ही पृथ्वी प्रलय-जलमें निमग्न हो गयी, अतः अब आप जीवोंके लिये स्थानकी कल्पना कीजिये। कमलनयन! मनुद्वारा यों कहे जानेपर वे स्वयम्भू ब्रह्मा आपके चरणयुगलका ध्यान करने लगे॥ २॥

हा हा विभो जलमहं न्यपिबं पुरस्ता-
दद्यापि मज्जति मही किमहं करोमि।
इत्थं त्वदङ्घ्रियुगलं शरणं यतोऽस्य
नासापुटात् समभवश्शिशुकोलरूपी॥ ३॥

(ब्रह्मा फिर बोले—) 'विभो! महान् आश्चर्य एवं दुःख है, सृष्टिके आदिमें मैंने सारा जल पी लिया था; परंतु यदि आज भी पृथ्वी डूब रही है तो मैं क्या करूँ?' यों कहते हुए आपके चरण-युगलके शरणागत ब्रह्माके नासापुटसे वराहके शिशुरूपमें आप प्रकट हो गये॥ ३॥

अङ्गुष्ठमात्रवपुरुत्पतितः पुरस्ताद्
भूयोऽथ कुम्भिसदृशः समजृम्भथास्त्वम्।
अभ्रे तथाविधमुदीक्ष्य भवन्तमुच्चै-
र्विस्मेरतां विधिरगात् सह सूनुभिः स्वैः॥ ४॥

पहले आप अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला शरीर ग्रहणकर उत्पन्न हुए, तत्पश्चात् पुनः बढ़कर हाथीके समान हो गये। इस प्रकार बढ़कर ऊँचे मेघमार्गमें पहुँचे हुए आपको देखकर अपने (मरीचि आदि) पुत्रोंसहित ब्रह्मा विस्मय-विभोर हो गये॥ ४॥

कोऽसावचिन्त्यमहिमा किटिरुत्थितो मे
नासापुटात् किमु भवेदजितस्य माया।
इत्थं विचिन्तयति धातरि शैलमात्रः
सद्यो भवन् किल जगर्जिथ घोरघोरम्॥ ५॥

उस समय 'यह अचिन्त्य प्रभावशाली सूकर, जो मेरे नासापुटसे उत्पन्न हुआ है, कौन है? यह अजेय भगवान् विष्णुकी माया तो नहीं है?' कहते हैं, ब्रह्माके यों विचार-विमर्श करते ही आपका शरीर तुरंत पर्वतसदृश हो गया तथा आपने अत्यन्त भयंकर गर्जना की॥ ५॥

तं ते निनादमुपकर्ण्य जनस्तपःस्थाः
सत्यस्थिताश्च मुनयो नुनुवुर्भवन्तम्।
तत्स्तोत्रहर्षुलमनाः परिणद्य भूय-
स्तोयाशयं विपुलमूर्तिरवातरस्त्वम्॥ ६॥

आपके उस गर्जन शब्दको सुनकर जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोकनिवासी मुनिगण आपकी स्तुति करने लगे। उस स्तवनसे आपका चित्त प्रसन्न हो गया। फिर तो आप पूर्वापेक्षा विशाल शरीर धारण करके गरजते हुए उस प्रलयाब्धिके जलमें उतर पड़े॥ ६॥

ऊर्ध्वप्रसारिपरिधूम्रविधूतरोमा
प्रोत्क्षिप्तवालधिरवाङ्मुखघोरघोणः।
तूर्णप्रदीर्णजलदः परिघूर्णदक्ष्णा
स्तोतॄन् मुनीन् शिशिरयन्नवतेरिथ त्वम्॥ ७॥

उस समय आपके शरीरके कृष्ण-लोहित रंगके रोएँ ऊपर उठकर कुछ-कुछ हिल रहे थे, भयंकर नासिका (थूथुन) अधोमुख हो गयी थी और पूँछ ऊपरको उठ रही थी। जिससे अनायास ही बादलोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। तब आप अपने परिघूर्णमान नेत्रोंद्वारा उन स्तवन करनेवाले मुनियोंको शीतलता (आनन्द) प्रदान करते हुए उस जलमें विहार करने लगे॥ ७॥

अन्तर्जलं तदनु सङ्कुलनक्रचक्रं
भ्राम्यत्तिमिङ्गिलकुलं कलुषोर्मिमालम्।
आविश्य भीषणरवेण रसातलस्था-
नाकम्पयन् वसुमतीमगवेषयस्त्वम्॥ ८॥

तदनन्तर जो ग्राह-समूहसे व्याप्त था, जिसमें तिमिङ्गिल नामक महामत्स्योंका समुदाय इधर-उधर भ्रमण कर रहा था तथा (जलके क्षुब्ध होनेके कारण) जिसकी तरङ्गमालाएँ मटमैली हो गयी थीं, उस जलके भीतर घुसकर आप अपने भयंकर निनादसे रसातलमें स्थित जीवोंको सर्वथा कम्पित करते हुए पृथ्वीकी खोज करने लगे॥ ८॥

दृष्ट्वाथ दैत्यहतकेन रसातलान्ते
संवेशितां झटिति कूटकिटिर्विभो त्वम्।
आपातुकानविगणय्य सुरारिखेटान्
दंष्ट्राङ्कुरेण वसुधामदधाः सलीलम्॥ ९ ॥

विभो! तत्पश्चात् असुराधम हिरण्याक्षद्वारा रसातलमें रखी हुई पृथ्वीको देखकर मायावराहवपुधारी आपने आक्रमण करनेवाले नीच राक्षसोंकी अवहेलना करके शीघ्र ही उस वसुधाको अपनी दाढ़ोंके अग्रभागपर लीलापूर्वक धारण कर लिया॥ ९॥

अभ्युद्धरन्नथ धरां दशनाग्रलग्न-
मुस्ताङ्कुराङ्कित इवाधिकपीवरात्मा।
उद्धूतघोरसलिलाज्जलधेरुदञ्चन्
क्रीडावराहवपुरीश्वर पाहि रोगात्॥ १०॥

यों वसुधाका उद्धार करके अत्यन्त क्षुब्ध भयंकर जलवाले उस

प्रलय-समुद्रसे बाहर निकलते समय आपकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसी गढ़ैयोंमें मोथाकी जड़ खोदते समय दाढ़ोंके अग्रभागके मुस्ताङ्कुरसे चिह्नित होनेके कारण अन्य साधारण सूकरकी होती है। उस समय आपका शरीर अधिक स्थूल हो गया था। क्रीडार्थ सूकरका शरीर धारण करनेवाले ईश्वर! आप इस रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति वराहावतारवर्णनं द्वादशदशकं समाप्तम् ॥

त्रयोदशदशकम्

हिरण्याक्षका युद्ध, उसका वध तथा यज्ञवराहकी स्तुति

हिरण्याक्षं तावद्वरद भवदन्वेषणपरं
चरन्तं सांवर्ते पयसि निजजङ्घापरिमिते।
भवद्भक्तो गत्वा कपटपटुधीर्नारदमुनिः
शनैरूचे नन्दन् दनुजमपि निन्दंस्तव बलम्॥ १॥

वरद! भूमिका उद्धार करते समय जब हिरण्याक्ष अपनी जंघाके बराबर जलवाले प्रलय-पयोधिमें आपके अन्वेषणमें तत्पर होकर विचर रहा था, तब कपट करनेमें निपुण बुद्धिवाले आपके भक्त नारदमुनि उसके निकट जाकर आपके भी बलकी निन्दा करके उस दानवकी प्रशंसा करते हुए नम्रतापूर्वक बोले— ॥ १॥

स मायावी विष्णुर्हरति भवदीयां वसुमतीं
प्रभो कष्टं कष्टं किमिदमिति तेनाभिगदितः।
नदन् क्वासौ क्वासाविति स मुनिना दर्शितपथो
भवन्तं सम्प्रापद्धरणिधरमुद्यन्तमुदकात्॥ २॥

'सामर्थ्यशाली दानवराज! वह मायावी (वराहरूपधारी) विष्णु आपकी (ब्रह्माके पाससे अपहरण करके लायी हुई) वसुधाको चुराये लिये जा रहा है। कष्ट है! कष्ट है! यह क्या बात है?' इस प्रकार नारदद्वारा प्रोत्साहित किये जानेपर उसने सिंहगर्जना करके 'वह कहाँ है? वह कहाँ है?' यों पूछा। तब मुनि नारदने जिसे आपका मार्ग

बतलाया था वह हिरण्याक्ष धरणीको धारण करके जलसे निकलते हुए आपके पास जा पहुँचा॥ २॥

अहो आरण्योऽयं मृग इति हसन्तं बहुतरै-
र्दुरुक्तैर्विध्यन्तं दितिसुतमवज्ञाय भगवन्।
महीं दृष्ट्वा दंष्ट्राशिरसि चकितां स्वेन महसा
पयोधावाधाय प्रसभमुदयुङ्क्था मृधविधौ॥ ३॥

भगवन्! आपको देखते ही जब वह 'अहो! यह तो एक जंगली सूकर है' यों हँसता हुआ बहुत-सी कटूक्तियोंद्वारा आपको कष्ट पहुँचाने लगा तब आपने भी उस दिति-पुत्रकी अवज्ञा करके अपने दंष्ट्राग्रभागपर स्थित भूमिको भयचकित देखकर उसे अपनी अप्रमेय महिमासे प्रलय-पयोधिके जलपर स्थापित कर दिया और स्वयं बलपूर्वक युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये॥ ३॥

गदापाणौ दैत्ये त्वमपि हि गृहीतोन्नतगदो
नियुद्धेन क्रीडन् घटघटरवोद्घुष्टवियता।
रणालोकौत्सुक्यान्मिलति सुरसङ्घे द्रुतममुं
निरुन्ध्याः सन्ध्यातः प्रथममिति धात्रा जगदिषे॥ ४॥

उस दैत्यके हाथमें गदा सुशोभित थी, अतः आपने भी अपनी गदा लेकर उसे ऊँचा उठाया और युद्ध-क्रीडा प्रारम्भ हो गयी। उस समय गदाके घात-प्रतिघातसे उत्पन्न 'घट-घट' शब्दसे आकाश गूँज रहा था। आपकी रण-लीला देखनेकी उत्सुकतासे सुर-समाज भी वहाँ आ पहुँचा। तब ब्रह्माने 'संध्या-काल उपस्थित होनेके पूर्व ही इस असुरको शीघ्र काबूमें कर लीजिये।' यों आपको सूचित किया॥ ४॥

गदोन्मर्दे तस्मिंस्तव खलु गदायां दितिभुवो
गदाघाताद् भूमौ झटिति पतितायामहह भोः।
मृदुस्मेरास्यस्त्वं दनुजकुलनिर्मूलनचणं
महाचक्रं स्मृत्वा करभुवि दधानो रुरुचिषे॥ ५॥

भगवन्! आश्चर्य है! उस गदायुद्धमें जब दैत्यकी गदाके प्रहारसे आपकी गदा एकाएक पृथ्वीपर गिर पड़ी, तब भी आप खिन्न नहीं हुए

बल्कि आपका मुख मृदु मन्द मुसकानसे खिल उठा। तत्पश्चात् आपने अपने उस महान् सुदर्शन-चक्रका स्मरण किया जो दनुज-कुलका विनाश करनेमें प्रसिद्ध है। स्मरण करते ही वह उपस्थित हो गया। उसे करतलमें धारण करनेसे आपकी विचित्र शोभा हुई॥ ५॥

ततः शूलं कालप्रतिमरुषि दैत्ये विसृजति
त्वयि च्छिन्दत्येतत्करकलितचक्रप्रहरणात्।
समारुष्टो मुष्ट्या स खलु वितुदंस्त्वां समतनोद्
गलन्माये मायास्त्वयि किल जगन्मोहनकरीः॥ ६॥

तब उस दैत्यका कोप कालाग्निके समान भड़क उठा और उसने आपपर त्रिशूलसे प्रहार करना चाहा; परंतु आपने अपने करकमलमें सुशोभित चक्रके आघातसे उस त्रिशूलको काट दिया। फिर तो वह दैत्य पहलेसे भी अधिक कुपित हो उठा और उसने आपपर मुक्केकी चोट की। तत्पश्चात् मायाएँ जिसके निकट पहुँचते ही नष्ट हो जाती हैं ऐसे मायाविरहित आपके ऊपर वह ऐसी आसुरी मायाओंका प्रयोग करने लगा जो जगत्को मोहमें डालनेवाली थीं॥ ६॥

भवच्चक्रज्योतिष्कणलवनिपातेन विधुते
ततो मायाचक्रे विततघनरोषान्धमनसम्।
गरिष्ठाभिर्मुष्टिप्रहृतिभिरभिघ्नन्तमसुरं
स्वपादाङ्गुष्ठेन श्रवणपदमूले निरवधीः॥ ७॥

तत्पश्चात् जब आपके सुदर्शन-चक्रकी ज्योतिके लेशमात्र प्रसारसे वह आसुर माया-चक्र विनष्ट हो गया, तब जिसका मन बढ़े हुए घनीभूत क्रोधसे अंधा हो रहा था और जो अपने गुरुतर मुष्टिप्रहारोंसे आपपर बारंबार वार कर रहा था, उस असुरके कर्णमूलपर आपने अपने पादाङ्गुष्ठसे चोट पहुँचायी॥ ७॥

महाकायः सोऽयं तव चरणपातप्रमथितो
गलद्रक्तो वक्त्रादपतदृषिभिः श्लाघितहतिः।
तदा त्वामुद्दामप्रमदभरविद्योतिहृदया
मुनीन्द्राः सान्द्राभिः स्तुतिभिरनुवन्नध्वरतनुम्॥ ८॥

आपके चरण-प्रहारसे मथित हुआ वह महाकाय दैत्य हिरण्याक्ष मुखसे रक्त वमन करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा। उस समय ऋषिगण उसकी मृत्युकी प्रशंसा कर रहे थे। तब जिनका हृदय असीम आनन्दराशिसे उद्भासित हो रहा था ऐसे मुनीश्वरगण उत्तम-उत्तम स्तुतियोंद्वारा आप यज्ञमूर्तिकी उच्चस्वरसे स्तुति करने लगे— ॥ ८ ॥

त्वचि च्छन्दो रोमस्वपि कुशगणश्चक्षुषि घृतं
चतुर्होतारोऽङ्घ्रौ स्रुगपि वदने चोदर इडा।
ग्रहा जिह्वायां ते परपुरुष कर्णे च चमसा
विभो सोमो वीर्यं वरद गलदेशेऽप्युपसदः ॥ ९ ॥

'परमपुरुष! आपकी त्वचामें गायत्री आदि छन्दोंकी स्थिति है। आपके रोमकूपमें कुशसमूह तथा नेत्रमें घृतका स्थान है। चारों होता (अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता, उद्गाता) आपके चरणमें वर्तमान हैं। आपके मुखमें स्रुक् तथा उदरमें इडा (पुरोडाश आदि रखनेका पात्रविशेष) बतलाया जाता है। आपकी जिह्वामें ग्रह (सोमरस रखनेके पात्रविशेष) हैं और चमस (भोजन-सामग्री रखनेके पात्र) आपके कर्णरन्ध्रमें स्थित हैं। विभो! सोमरस आपका वीर्य है। वरद! उपसदें (प्रवर्ग्यानन्तर की जानेवाली इष्टियाँ) आपके कण्ठदेशमें वर्तमान हैं'॥ ९ ॥

मुनीन्द्रैरित्यादिस्तवनमुखरैर्मोदितमना
महीयस्या मूर्त्या विमलतरकीर्त्या च विलसन्।
स्वधिष्ण्यं सम्प्राप्तः सुखरसविहारी मधुरिपो
निरुन्ध्या रोगं मे सकलमपि वातालयपते॥ १० ॥

यों स्तवनपरायण मुनीश्वरोंकी स्तुतिसे जिनका मन हर्षविभोर हो रहा था तथा जो महनीया मूर्ति और अत्यन्त निर्मल कीर्तिसे सुशोभित हो रहे थे, वे स्वच्छन्द क्रीडाविहारी विष्णु आप अपने निवासस्थान वैकुण्ठको चले गये। वातालयाधीश मधुरिपो! मेरे भी समस्त रोगोंका विनाश कर दीजिये॥ १० ॥

॥ इति हिरण्याक्षयुद्धवर्णनं त्रयोदशदशकं समाप्तम्॥

चतुर्दशदशकम्

कपिलोपाख्यान

समनुस्मृततावकाङ्घ्रियुग्मः स मनुः पङ्कजसम्भवाङ्गजन्मा।
निजमन्तरमन्तरायहीनं चरितं ते कथयन् सुखं निनाय॥ १॥

जिनकी उत्पत्ति पद्मयोनि ब्रह्माके अङ्गसे हुई थी तथा जो आपके चरणयुगलका भलीभाँति अनुस्मरण करनेवाले थे, उन स्वायम्भुव मनुने इकहत्तर चतुर्युगीके परिमाणवाले अपने राज्यकाल (मन्वन्तर)-को, जो सब प्रकारकी विघ्न-बाधासे रहित था, आपकी लीलाओंका वर्णन करते हुए सुखपूर्वक व्यतीत किया॥ १॥

समये खलु तत्र कर्दमाख्यो द्रुहिणच्छायभवस्तदीयवाचा।
धृतसर्गरसो निसर्गरम्यं भगवंस्त्वामयुतं समाः सिषेवे॥ २॥

भगवन्! उन्हीं मनुके राज्यकालमें जिनका जन्म ब्रह्माकी छायासे हुआ था वे कर्दम नामक ऋषि ब्रह्माके आदेशसे प्रजा-सृष्टिकी कामना लेकर दस हजार वर्षतक स्वभावतः रमणीय आपकी सेवा करते रहे अर्थात् आपकी प्राप्तिके लिये तपस्या करते रहे॥ २॥

गरुडोपरि कालमेघकम्रं विलसत्केलिसरोजपाणिपद्मम्।
हसितोल्लसिताननं विभो त्वं वपुराविष्कुरुषे स्म कर्दमाय॥ ३॥

विभो! तब आपने गरुडपर सवार अपने श्रीविग्रहको, जिसकी कान्ति काले मेघके समान नीली एवं कमनीय थी, जिसके कमल-सदृश हाथमें लीला-कमल सुशोभित हो रहा था तथा जिसका मुख मृदु मुसकानसे उल्लसित था, कर्दमके समक्ष प्रकट कर दिया॥ ३॥

स्तुवते पुलकावृताय तस्मै मनुपुत्रीं दयितां नवापि पुत्रीः।
कपिलञ्च सुतं स्वमेव पश्चात्स्वगतिञ्चाप्यनुगृह्य निर्गतोऽभूः॥ ४॥

उस समय कर्दम ऋषिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे आपकी स्तुति करने लगे। तब आप उन्हें पत्नीरूपमें मनुपुत्री देवहूतिको, उससे उत्पद्यमान नौ पुत्रियों तथा स्वांशभूत कपिल नामक पुत्रको और अन्तमें अपनी प्राप्तिरूप मोक्षको भी वरदानरूपमें प्रदान करके चले गये॥ ४॥

स मनुः शतरूपया महिष्या गुणवत्या सुतया च देवहूत्या।
भवदीरितनारदोपदिष्टः समगात्कर्दममागतिप्रतीक्षम्॥ ५॥

तदनन्तर आपके द्वारा भेजे गये नारदके उपदेशसे वे स्वायम्भुव मनु महारानी शतरूपा तथा अपनी गुणवती पुत्री देवहूतिके साथ आगमनकी प्रतीक्षा करनेवाले कर्दम ऋषिके आश्रमपर पधारे॥ ५॥

मनुनोपहृतां च देवहूतिं तरुणीरत्नमवाप्य कर्दमोऽसौ।
भवदर्चननिर्वृतोऽपि तस्यां दृढशुश्रूषणया दधौ प्रसादम्॥ ६ ॥

यद्यपि कर्दम ऋषि आपकी अर्चनासे प्राप्त परमानन्दमें निमग्न थे तथापि मनुद्वारा उपहाररूपमें दी हुई तरुणीरत्न देवहूतिको पाकर उसकी निष्कपट सेवासे वे उसपर प्रसन्न हो गये॥ ६॥

स पुनस्त्वदुपासनप्रभावाद्दयिताकामकृते कृते विमाने।
वनिताकुलसङ्कुले नवात्मा व्यहरद् देवपथेषु देवहूत्या॥ ७ ॥

तब उन्होंने आपकी उपासनाके प्रभावसे अपनी प्रियतमाकी कामनापूर्तिके हेतु एक नवीन विमानकी रचना की। वनिता-समूहसे पूर्ण उस विमानमें बैठकर वे अपनेको नौ रूपोंमें विभाजित करके देवहूतिके साथ देवोद्यानोंमें विहार करने लगे॥ ७॥

शतवर्षमथ व्यतीत्य सोऽयन्नव कन्याः समवाप्य धन्यरूपाः।
वनयानसमुद्यतोऽपि कान्ताहितकृत्त्वज्जननोत्सुको न्यवात्सीत्॥ ८ ॥

इस प्रकार विहार करते हुए सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तबतक इन्हें परम रूपवती की प्राप्ति हो गयी। तदनन्तर तपस्याके लिये वन-गमनकी इच्छा होनेपर भी ये अपनी प्रियाके हितार्थ आपके कपिल-अवतारकी उत्सुकतासे आश्रमपर ही निवास करते रहे॥ ८॥

निजभर्तृगिरा भवन्निषेवानिरतायामथ देव देवहूत्याम्।
कपिलस्त्वमजायथा जनानां प्रथयिष्यन् परमात्मतत्त्वविद्याम्॥ ९ ॥

देव! तत्पश्चात् जब देवहूति अपने पतिदेवके आदेशसे आपकी सेवामें तल्लीन हो गयीं, तब लोगोंमें परमात्मसम्बन्धी तत्त्वज्ञानको प्रकट करनेके लिये आपने कपिलरूपसे जन्म लिया॥ ९॥

वनमेयुषि कर्दमे प्रसन्ने मतसर्वस्वमुपादिशज्जनन्यै।
कपिलात्मक वायुमन्दिरेश त्वरितं त्वं परिपाहि मां गदौघात्॥ १०॥

कपिलस्वरूप परमात्मन्! जब कर्दम ऋषि प्रसन्नचित्त होकर वनको चले गये, तब आपने माताको अपने समस्त सिद्धान्तका उपदेश दिया। वायुमन्दिरेश! आप मेरी भी रोग-समूहसे शीघ्र ही रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति कपिलोपाख्यानं चतुर्दशदशकं समाप्तम्॥

पञ्चदशदशकम्

कपिलोपदेश

मतिरिह गुणसक्ता बन्धकृत्तेष्वसक्ता
त्वमृतकृदुपरुन्धे भक्तियोगस्तु सक्तिम्।
महदनुगमलभ्या भक्तिरेवात्र साध्या
कपिलतनुरिति त्वं देवहूत्यै न्यगादीः॥ १॥

लोकमें गुणों—विषयोंमें आसक्त हुई बुद्धि बन्धनकारक होती है और उन विषयोंमें आसक्ति न रखनेवाली बुद्धि मोक्ष प्रदान करती है। विषयासक्तिमें रुकावट डालनेवाला भक्तियोग है। वह भक्ति महापुरुषोंका अनुगमन करनेसे उपलब्ध होती है। अतः इस जगत्में लोगोंको भक्तिकी ही साधना करनी चाहिये—यों कपिलरूपसे अवतीर्ण होकर आपने माता देवहूतिको उपदेश दिया था॥ १॥

प्रकृतिमहदहङ्काराश्च मात्राश्च भूता-
न्यपि हृदपि दशाक्षी पूरुषः पञ्चविंशः।
इति विदितविभागो मुच्यतेऽसौ प्रकृत्या
कपिलतनुरिति त्वं देवहूत्यै न्यगादीः॥ २॥

मूलप्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत, मन, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय—यों दस इन्द्रियाँ और पचीसवाँ पुरुष—इस प्रकार जिसे विभागका ज्ञान हो गया है, वह जीव मायासे मुक्त

हो जाता है—यों कपिलरूपसे अवतीर्ण होकर आपने माता देवहूतिको उपदेश दिया था॥ २॥

प्रकृतिगतगुणौघैर्नाज्यते पूरुषोऽयं
यदि तु सजति तस्यां तद्गुणास्तं भजेरन्।
मदनुभजनतत्त्वालोचनैः साप्यपेयात्
कपिलतनुरिति त्वं देवहूत्यै न्यगादीः॥ ३॥

प्रकृतिगत गुणसमूहसे यह जीव उपरत नहीं होता, परंतु यदि यह प्रकृतिमें आसक्त होता है तो प्रकृतिके गुण जीवको वशीभूत कर लेते हैं। वह प्रकृति भी मेरे निरन्तर भजन और मेरे तत्त्वके आलोचनसे (ईश्वर-प्रणिधान तथा ब्रह्मज्ञानसे) दूर हट जाती है—यों कपिलरूपसे अवतीर्ण होकर आपने माता देवहूतिको उपदेश दिया था॥ ३॥

विमलमतिरुपात्तैरासनाद्यैर्मदङ्गं
गरुडसमधिरूढं दिव्यभूषायुधाङ्कम्।
रुचितुलिततमालं शीलयेतानुवेलं
कपिलतनुरिति त्वं देवहूत्यै न्यगादीः॥ ४॥

शुद्ध बुद्धिवाले पुरुषको चाहिये कि वह अभ्यासमें लाये हुए आसनादिद्वारा मेरे उस रूपका—जो गरुड़पर आरूढ़ है, दिव्य भूषण तथा आयुधोंसे विभूषित है और जिसकी कान्तिकी तुलना तमालवृक्षसे की जाती है—प्रतिक्षण अनुशीलन करे—यों कपिलरूपसे अवतीर्ण होकर आपने माता देवहूतिको उपदेश दिया था॥ ४॥

मम गुणगणलीलाकर्णनैः कीर्तनाद्यै-
र्मयि सुरसरिदोघप्रख्यचित्तानुवृत्तिः।
भवति परमभक्तिः सा हि मृत्योर्विजेत्री
कपिलतनुरिति त्वं देवहूत्यै न्यगादीः॥ ५॥

मुझ ईश्वरके गुणसमूहों तथा लीलाओंके श्रवणसे और कीर्तन आदि भक्तियोंद्वारा मुझमें गङ्गाके प्रवाह-सदृश निरन्तर प्रवाहित होनेवाली चित्तवृत्तिरूप परम भक्ति उत्पन्न होती है। वह भक्ति जनन-मरणरूप मृत्युलोकपर विजय पानेवाली होती है—यों कपिलरूपसे अवतीर्ण होकर आपने माता देवहूतिको उपदेश दिया था॥ ५॥

अहह! बहुलहिंसासञ्चितार्थैः कुटुम्बं
प्रतिदिनमनुपुष्णन् स्त्रीजितो बाललाली।
विशति हि गृहसक्तो यातनां मय्यभक्तः
कपिलतनुरिति त्वं देवहूत्यै न्यगादीः॥ ६॥

खेद है कि यह जीव बहुविध हिंसाओंद्वारा उपार्जित द्रव्योंसे प्रतिदिन कुटुम्बका भरण-पोषण करता हुआ स्त्रीके वशीभूत हो बच्चोंके लालन-पालनमें निरत रहता है। यों गृहासक्त होनेके कारण इसकी मुझमें भक्ति नहीं होती, जिससे यातनाभोगके लिये यह रौरवादि नरकोंमें प्रवेश करता है—यों कपिलरूपसे अवतीर्ण होकर आपने माता देवहूतिको उपदेश दिया था॥ ६॥

युवतिजठरखिन्नो जातबोधोऽप्यकाण्डे
प्रसवगलितबोधः पीडयोल्लङ्घ्य बाल्यम्।
पुनरपि बत मुह्यत्येव तारुण्यकाले
कपिलतनुरिति त्वं देवहूत्यै न्यगादीः॥ ७॥

यद्यपि माताके गर्भमें पड़कर तज्जनित दुःखसे खिन्न हुए जीवको उस असहायावस्थामें अकस्मात् ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तथापि प्रसवकालमें उसका वह ज्ञान नष्ट हो जाता है। जन्म लेनेके पश्चात् बड़े कष्टसे बाल्यावस्थाको पार करके युवावस्था आनेपर वह पुनः विषय-विमोहित हो जाता है (जिससे उसे नरककी प्राप्ति होती है)— यों कपिलरूपसे अवतीर्ण होकर आपने माता देवहूतिको उपदेश दिया था॥ ७॥

पितृसुरगणयाजी धार्मिको यो गृहस्थः
स च निपतति काले दक्षिणाध्वोपगामी।
मयि निहितमकामं कर्म तूदक्पथार्थं
कपिलतनुरिति त्वं देवहूत्यै न्यगादीः॥ ८॥

जो गृहस्थ (काम्य फलकी कामनासे) पितृगण तथा देवगणका पूजन करनेवाला और धार्मिक होता है वह दक्षिणमार्गसे अर्थात् धूमादि मार्गसे जाता है और समयानुसार पुण्यक्षय होनेपर पुनरावृत्तिका भागी

होता है। परंतु जो अपने निष्काम कर्मको मुझे समर्पित कर देता है वह अर्चिरादि उत्तरमार्गसे जानेका अधिकारी होता है (जिससे उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती)—यों कपिलरूपसे अवतीर्ण होकर आपने माता देवहूतिको उपदेश दिया था॥ ८॥

इति सुविदितवेद्यां देव हे देवहूतिं
कृतनुतिमनुगृह्य त्वं गतो योगिसङ्घैः।
विमलमतिरथासौ भक्तियोगेन मुक्ता
त्वमपि जनहितार्थं वर्तसे प्रागुदीच्याम्॥ ९ ॥

हे देव! इस प्रकार जिसे वेद्य वस्तु—ब्रह्मका भलीभाँति ज्ञान हो चुका था अतएव जो आपका स्तवन करनेमें तल्लीन थी, उस माता देवहूतिपर अनुग्रह करके आप योगिसमुदायके साथ वहाँसे चले गये। इधर विमल बुद्धिवाली देवहूति भक्तियोगके बलसे मुक्त हो गयी और आप भी लोक-कल्याणार्थ पूर्वोत्तर दिशामें स्थित हो गये॥ ९॥

परम किमु बहूक्त्या त्वत्पदाम्भोजभक्तिं
सकलभयविनेत्रीं सर्वकामोपनेत्रीम्।
वदसि खलु दृढं त्वं तद्विधूयामयान् मे
गुरुपवनपुरेश त्वय्युपाधत्स्व भक्तिम्॥ १०॥

परमपुरुष! अधिक कहनेसे क्या लाभ? आपके चरण-कमलोंकी भक्ति समस्त भयोंका उपशमन करनेवाली तथा सम्पूर्ण अभीष्टोंकी प्राप्ति करानेवाली है—ऐसा आप निश्चयपूर्वक कहते हैं। इसलिये गुरुपवनपुरेश! मेरे रोगोंका विनाश करके अपनेमें मेरी प्रेमलक्षणा भक्तिका आधान कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति कपिलोपदेशाख्यं पञ्चदशदशकं समाप्तम्॥

चतुर्थस्कन्धपरिच्छेदः

षोडशदशकम्

नर-नारायणका चरित तथा दक्ष-यज्ञका वर्णन

दक्षो विरिञ्चतनयोऽथ मनोस्तनूजां
लब्ध्वा प्रसूतिमिह षोडश चाप कन्याः।
धर्मे त्रयोदश ददौ पितृषु स्वधां च
स्वाहां हविर्भुजि सतीं गिरिशे त्वदंशे॥ १॥

ब्रह्माके पुत्र दक्षने स्वायम्भुव मनुकी तनया प्रसूतिको पत्नीरूपमें प्राप्त करके उससे सोलह कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे श्रद्धा, मैत्री आदि तेरह कन्याएँ धर्मको, स्वधा पितरोंको, स्वाहा अग्निको तथा सती आपके स्वरूपभूत शंकरको पत्नीरूपमें प्रदान कर दी॥ १॥

मूर्तिर्हि धर्मगृहिणी सुषुवे भवन्तं
नारायणं नरसखं महितानुभावम्।
यज्जन्मनि प्रमुदिताः कृततूर्यघोषाः
पुष्पोत्करान् प्रववृषुर्नुनुवुः सुरौघाः॥ २॥

धर्मकी तेरह पत्नियोंमें मूर्तिने अप्रमेय महिमशाली नरसहित आप नारायणको जन्म दिया। आपके जन्म-कालमें सुर-समुदाय हर्षोल्लसित होकर दुन्दुभियाँ बजाने लगे और पुष्प-समूहोंकी वृष्टि करके आपके स्तवनमें तन्मय हो गये॥ २॥

दैत्यं सहस्रकवचं कवचैः परीतं
साहस्रवत्सरतपःसमराभिलभ्यैः ।
पर्यायनिर्मिततपस्समरौ भवन्तौ
शिष्टैककङ्कटममुं न्यहतां सलीलम्॥ ३॥

सहस्रकवच नामक दैत्य ऐसे प्राकृतिक सहस्र कवचोंसे संनद्ध था, जिनका छेदन हजार वर्षतक तपस्या और युद्ध करनेसे ही किया जा सकता था। तब आप दोनों नर-नारायणने हजार वर्षोंतक बारी-बारीसे

तप और युद्ध किया। जब उसका एकमात्र कवच अवशिष्ट रह गया, तब आपलोगोंने उसे मार डाला॥ ३॥

अन्वाचरन्नुपदिशन्नपि मोक्षधर्मं
त्वं भ्रातृमान् बदरिकाश्रममध्यवात्सीः।
शक्रोऽथ ते शमतपोबलनिस्सहात्मा
दिव्याङ्गनापरिवृतं प्रजिघाय मारम्॥ ४॥

तदनन्तर आप लोकसंग्रहार्थ स्वयं मोक्ष-धर्मका अनुष्ठान करते हुए तथा नारद आदिको भी उसका उपदेश करते हुए अपने भ्राता नरके साथ बदरिकाश्रममें निवास करने लगे। तब जिनका मन आपके इन्द्रियनिग्रह तथा तपोबलको देखकर ईर्ष्यालु हो गया था, उन इन्द्रदेवने अप्सराओंके साथ कामदेवको (तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये) आपके पास भेजा॥ ४॥

कामो वसन्तमलयानिलबन्धुशाली
कान्ताकटाक्षविशिखैर्विकसद्विलासैः।
विध्यन्मुहुर्मुहुरकम्पमुदीक्ष्य च त्वां
भीतस्त्वयाथ जगदे मृदुहासभाजा॥ ५॥

उस समय कामदेवके साथ उसके बन्धु वसन्त और मलयानिल भी थे। वहाँ पहुँचकर उसने जिनसे विलासकी भावनाएँ अभिव्यक्त हो रही थीं, ऐसे अप्सराओंके कटाक्ष-बाणोंद्वारा आपको बारंबार बींधना आरम्भ किया। परंतु आप अपनी समाधिसे विचलित नहीं हुए। यह देखकर कामदेव भयभीत हो गया। तब आपने मन्द मुसकानपूर्वक उससे कहा— ॥ ५॥

भीत्यालमङ्गज वसन्त सुराङ्गना वो
मन्मानसं त्विह जुषध्वमिति ब्रुवाणः।
त्वं विस्मयेन परितः स्तुवतामथैषां
प्रादर्शयः स्वपरिचारककातराक्षीः॥ ६॥

'कामदेव, वसन्त और अप्सराओ! तुमलोग भय मत करो। यहाँ मेरे निकट आकर मेरे चित्तका अनुवर्तन करो।' आपके यों कहनेपर

वे विस्मयपूर्वक कुछ निकट जाकर आपकी स्तुति करने लगे। तब आपने उन्हें (अपने योगबलसे उत्पन्न करके) अपनी शुश्रूषा करनेवाली बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ दिखलायीं॥ ६॥

सम्मोहनाय मिलिता मदनादयस्ते
त्वद्दासिकापरिमलैः किल मोहमापुः।
दत्तां त्वया च जगृहुस्त्रपयैव सर्व-
स्वर्वासिगर्वशमनीं पुनरुर्वशीं ताम्॥ ७॥

मदन आदि संगठित होकर आपको मोहमें डालनेके लिये आये थे, परंतु आपकी दासियोंके अङ्गोंकी सुगन्धसे वे स्वयं ही मोहको प्राप्त हो गये। तदनन्तर जो समस्त स्वर्गवासियोंके गर्वका शमन करनेवाली थी, उस उर्वशीको आपने उन्हें प्रदान कर दिया और उन्होंने लजाते हुए ही उसे ग्रहण कर लिया॥ ७॥

दृष्ट्वोर्वशीं तव कथां च निशम्य शक्रः
पर्याकुलोऽजनि भवन्महिमावमर्शात्।
एवं प्रशान्तरमणीयतरावतारा-
त्त्वत्तोऽधिको वरद कृष्णतनुस्त्वमेव॥ ८॥

(स्वर्गमें) उर्वशीको देखकर और आपका वृत्तान्त सुनकर इन्द्र आपकी महिमाको न जाननेके कारण अत्यन्त व्याकुल हो गये। वरद! इस प्रकार आपसे बढ़कर प्रशान्त तथा परम रमणीय अवतार अन्य नहीं है, आपसे अधिक तो श्रीकृष्णस्वरूप आप ही हैं॥ ८॥

दक्षस्तु धातुरतिलालनया रजोऽन्धो
नात्यादृतस्त्वयि च कष्टमशान्तिरासीत्।
येन व्यरुन्ध स भवत्तनुमेव शर्वं
यज्ञे च वैरपिशुने स्वसुतां व्यमानीत्॥ ९॥

कष्टकी बात है कि ब्रह्माके अत्यन्त लाड़-प्यार करनेके कारण प्रजापति दक्ष रजोगुणजनित रागसे अंधे हो गये थे। इसी कारण वे आपके प्रति भी अधिक आदर नहीं रख रहे थे, जिससे उनकी शान्ति नष्ट हो गयी थी। अशान्त होनेके कारण ही उन्होंने आपके स्वरूपभूत

शंकरसे विरोध किया और शत्रुता सूचित करनेवाले उस यज्ञमें अपनी कन्या सतीकी भी अवमानना की॥ ९॥

क्रुद्धेशमर्दितमखः स तु कृत्तशीर्षो
देवप्रसादितहरादथ लब्धजीवः।
त्वत्पूरितक्रतुवरः पुनराप शान्तिं
स त्वं प्रशान्तिकर पाहि मरुत्पुरेश॥ १०॥

अपनी प्रियाके अपमानसे क्रुद्ध हुए शंकरद्वारा जिनका यज्ञ नष्ट-भ्रष्ट किया तथा सिर काट लिया गया था, उन दक्षको देवोंद्वारा प्रसन्न किये गये शिवजीसे ही पुनः जीवनकी प्राप्ति हुई। तदनन्तर आपने उनके उस श्रेष्ठ यज्ञको पूर्ण कर दिया और वे पुनः शान्तिको प्राप्त हुए। प्रशान्तिकर! मरुत्पुरेश! ऐसे प्रभावशाली आप मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति नरनारायणावतारवर्णनं षोडशदशकं समाप्तम्॥

सप्तदशदशकम्

ध्रुव-चरित

उत्तानपादनृपतेर्मनुनन्दनस्य
जाया बभूव सुरुचिर्नितरामभीष्टा।
अन्या सुनीतिरिति भर्तुरनादृता सा
त्वामेव नित्यमगतिः शरणं गताभूत्॥ १॥

मनु-नन्दन महाराज उत्तानपादके दो पत्नियाँ थीं, जिनमें सुरुचि राजाको परम प्रिय थी। दूसरीका नाम सुनीति था। वह पतिद्वारा अनादृत होनेके कारण शरणहीना थी। अतः उसने आपका ही अनन्य भावसे आश्रय लिया॥ १॥

अङ्के पितुः सुरुचिपुत्रकमुत्तमं तं
दृष्ट्वा ध्रुवः किल सुनीतिसुतोऽधिरोक्ष्यन्।
आचिक्षिपे किल शिशुः सुतरां सुरुच्या
दुस्संत्यजा खलु भवद्विमुखैरसूया॥ २॥

किसी समय सुनीतिके पुत्र ध्रुवने सुरुचिके पुत्र उत्तमको पिताकी गोदमें लालित होते देखकर स्वयं भी गोदमें चढ़नेकी इच्छा की, परंतु सुरुचिने उस शिशुको कटुवचनोंद्वारा भलीभाँति फटकारा। सच है, भगवद्विमुख लोगोंद्वारा ईर्ष्या एवं दोषदृष्टिका त्याग करना अत्यन्त कठिन है॥ २॥

त्वन्मोहिते पितरि पश्यति दारवश्ये
दूरं दुरुक्तिनिहतः स गतो निजाम्बाम्।
सापि स्वकर्मगतिसंतरणाय पुंसां
त्वत्पादमेव शरणं शिशवे शशंस॥ ३॥

परंतु पिता उत्तानपाद स्त्रीके वशीभूत थे और आप (-की माया)-से उनका चित्त मोहाच्छन्न हो गया था, अतः वे देखते ही रह गये। तब कटुवचनोंसे अत्यन्त आहत हुआ ध्रुव अपनी माता सुनीतिके पास चला गया। सुनीतिने भी अपने बच्चेको बतलाया कि मनुष्योंके लिये अपनी कर्मगतिसे पार पानेके लिये एकमात्र आपका चरण ही शरण है॥ ३॥

आकर्ण्य सोऽपि भवदर्चननिश्चितात्मा
मानी निरेत्य नगरात् किल पञ्चवर्षः।
संदृष्टनारदनिवेदितमन्त्रमार्ग-
स्त्वामारराध तपसा मधुकाननान्ते॥ ४॥

कहते हैं, ध्रुव पाँच ही वर्षका बालक था, तो भी उसमें क्षत्रियोचित स्वाभिमान भरा था। माताके वचनोंको सुनकर उसने भी आपकी आराधनामें ही अपने मनको निश्चित कर लिया। फिर तो वह नगरसे बाहर निकल पड़ा। मार्गमें मिले हुए देवर्षि नारदसे मन्त्र-मार्गका उपदेश पाकर उसने मधुवनमें जाकर तपस्याद्वारा आपकी आराधना आरम्भ की॥ ४॥

ताते विषण्णहृदये नगरीं गतेन
श्रीनारदेन परिसान्त्वितचित्तवृत्तौ।
बालस्त्वदर्पितमनाः क्रमवर्द्धितेन
निन्ये कठोरतपसा किल पञ्च मासान्॥ ५॥

ध्रुवके वन-गमनसे पिता उत्तानपादका मन विषादसे खिन्न हो गया। उसी समय श्रीनारदजी राजधानीमें गये। उन्होंने समझा-बुझाकर उत्तानपादकी चित्तवृत्तिको शान्त किया। इधर बालक ध्रुवने अपने मनको आपमें समाहित करके क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होते हुए उग्र तपश्चरणद्वारा पाँच मास व्यतीत किये॥ ५॥

तावत्तपोबलनिरुच्छ्वसिते दिगन्ते
देवार्थितस्त्वमुदयत्करुणार्द्रचेताः ।
त्वद्रूपचिद्रसनिलीनमतेः पुरस्ता-
दाविर्बभूविथ विभो गरुडाधिरूढः॥ ६॥

तदनन्तर जब ध्रुवके तपोबलसे दिगन्तरालोंमें श्वासावरोध होने लगा, तब देवोंने आपसे प्रार्थना की। उस समय आपका हृदय उत्पन्न हुई करुणासे आर्द्र हो गया। फिर तो आप गरुडपर आरूढ होकर गये और आपके ही स्वरूपभूत चिदानन्दरसमें निमग्न मतिवाले बालक ध्रुवके समक्ष प्रकट हो गये॥ ६॥

त्वद्दर्शनप्रमदभारतरङ्गितं तं
दृग्भ्यां निमग्नमिव रूपरसायने ते।
तुष्टूषमाणमवगम्य कपोलदेशे
संस्पृष्टवानसि दरेण तथाऽऽदरेण॥ ७॥

तब ध्रुव आपके दर्शनजनित हर्षके अतिरेकसे तरङ्गित हो नेत्रोंद्वारा आपके रूपामृतका पान करनेमें निमग्न-सा हो गया। फिर उसे स्तुति करनेके लिये इच्छुक जानकर आपने आदरपूर्वक उसके कपोलदेशपर अपने शङ्खका स्पर्श करा दिया॥ ७॥

तावद्विबोधविमलं प्रणुवन्तमेन-
माभाषथास्त्वमवगम्य तदीयभावम्।
राज्यं चिरं समनुभूय भजस्व भूयः
सर्वोत्तरं ध्रुवपदं विनिवृत्तिहीनम्॥ ८॥

कपोलपर शङ्खका स्पर्श होते ही वह तत्त्वबोधसे विमल स्तवन करने लगा। तदनन्तर ध्रुवके अभिप्रायको जानकर आपने उससे कहा—

'ध्रुव! तुम चिरकालतक राज्यका सुख भोगकर पुनः सप्तर्षिलोकसे भी ऊपर स्थित पुनरावृत्तिरहित स्थान—ध्रुवपद प्राप्त करो'॥ ८॥

इत्यूचुषि त्वयि गते नृपनन्दनोऽसा-
वानन्दिताखिलजनो नगरीमुपेतः।
रेमे चिरं भवदनुग्रहपूर्णकाम-
स्ताते गते च वनमाहृतराज्यभारः॥ ९ ॥

यों कहकर आपके चले जानेपर राजकुमार ध्रुव अखिल जनोंको आनन्दित करता हुआ राजधानीको लौट गया। आपके अनुग्रहसे उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं, तथापि उसे राज्यभार सौंपकर पिता उत्तानपादके वन चले जानेपर उसने चिरकालतक राज्यका सुखोपभोग किया॥ ९॥

यक्षेण देव निहते पुनरुत्तमेऽस्मिन्
यक्षैः स युद्धनिरतो विरतो मनूक्त्या।
शान्त्या प्रसन्नहृदयाद्धनदादुपेता-
त्त्वद्भक्तिमेव सुदृढामवृणोन्महात्मा॥ १०॥

देव! पुनः सुरुचि-पुत्र उत्तमके किसी यक्षद्वारा मारे जानेपर (भ्रातृ-वधसे क्रुद्ध होकर) ध्रुवने यक्षोंके साथ युद्ध छेड़ दिया। किंतु पितामह मनुके मना करनेपर वे उस युद्धसे विरत भी हो गये। ध्रुवकी युद्ध-निवृत्तिसे कुबेरका हृदय प्रसन्न हो गया। तब वे ध्रुवके निकट आये। (उनके वर माँगनेके लिये कहनेपर) महात्मा ध्रुवने उनसे आपकी सुदृढ़ भक्तिका ही वरदान माँगा॥ १०॥

अन्ते भवत्पुरुषनीतविमानयातो
मात्रा समं ध्रुवपदे मुदितोऽयमास्ते।
एवं स्वभृत्यजनपालनलोलधीस्त्वं
वातालयाधिप निरुन्धि ममामयौघान्॥ ११॥

[छब्बीस हजार वर्षतक राज्यभोग करनेके] पश्चात् आपके पार्षद सुनन्द-नन्दद्वारा लाये गये विमानपर बैठकर ये ध्रुवलोकको चले गये। वहाँ माता सुनीतिके साथ प्रसन्नतापूर्वक आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार

अपने भृत्यजनोंका पालन करनेके लिये आपकी बुद्धि सदा उतावली बनी रहती है, अतः वातालयाधिप! मेरे भी रोगसमूहोंका विनाश कर दीजिये॥ ११॥

॥ इति ध्रुवचरितवर्णनं सप्तदशदशकं समाप्तम्॥

अष्टादशदशकम्

पृथु–चरित

जातस्य ध्रुवकुल एव तुङ्गकीर्ते-
रङ्गस्य व्यजनि सुतः स वेननामा।
तद्दोषव्यथितमतिः स राजवर्य-
स्त्वत्पादे निहितमना वनं गतोऽभूत्॥ १॥

ध्रुवकुलमें ही उत्पन्न हुए उच्चकीर्तिवाले महाराज अङ्गके (सुनीथा नामकी पत्नीसे) एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम वेन था। उस पुत्रके दोषसे खिन्नचित्त होकर वे राजश्रेष्ठ अङ्ग आपके चरणोंमें मनको समाहित करके वनवासी हो गये॥ १॥

पापोऽपि क्षितितलपालनाय वेनः
पौराद्यैरुपनिहितः कठोरवीर्यः।
सर्वेभ्यो निजबलमेव सम्प्रशंसन्
भूचक्रे तव यजनान्ययं न्यरौत्सीत्॥ २॥

यद्यपि वेन पापकर्म करनेवाला था, तथापि पुरवासियोंने भूतलका पालन करनेके लिये उसे सिंहासनपर बैठाकर अभिषिक्त कर दिया। तब उस उग्रपराक्रमी वेनने सभी लोगोंसे अपने बलकी ही प्रशंसा करते हुए भूतलपर आपके यजन–पूजनमें रोक लगा दी॥ २॥

सम्प्राप्ते हितकथनाय तापसौघे
मत्तोऽन्यो भुवनपतिर्न कश्चनेति।
त्वन्निन्दावचनपरो मुनीश्वरैस्तैः
शापाग्नौ शलभदशामनायि वेनः॥ ३॥

तब मुनियोंका समुदाय उसे हितकारी परामर्श देनेके लिये उसके

पास आया, परंतु वेनने उत्तर दिया कि 'मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई लोकेश्वर है ही नहीं।' जब वह यों आपकी निन्दा करने लगा, तब उन मुनीश्वरोंने वेनको शापाग्निमें पतिंगेकी दशाको पहुँचा दिया॥ ३॥

तन्नाशात् खलजनभीरुकैर्मुनीन्द्रै-
स्तन्मात्रा चिरपरिरक्षिते तदङ्गे।
त्यक्ताघे परिमथितादथोरुदण्डा-
द्दोर्दण्डे परिमथिते त्वमाविरासीः॥ ४॥

वेनकी माता सुनीथा दीर्घकालतक उसके शरीरकी रक्षा करती रही। तब वेनके नाशसे फैली हुई अराजकताके कारण खलजनोंसे भयभीत हुए मुनीश्वरोंने वेनके ऊरुदण्डका मन्थन किया, जिससे निषादकी उत्पत्ति हुई और उसका पाप निकल गया। पुनः उसकी भुजाका मन्थन करनेपर स्वयं आप प्रकट हुए॥ ४॥

विख्यातः पृथुरिति तापसोपदिष्टैः
सूताद्यैः परिणुतभाविभूरिवीर्यः।
वेनार्त्या कवलितसम्पदं धरित्री-
माक्रान्तां निजधनुषा समामकार्षीः॥ ५॥

उस समय आप पृथु नामसे विख्यात हुए। तब मुनीश्वरोंके उपदेशसे सूत-मागध आदि आपके भावी उत्कृष्ट पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे। वेनके अत्याचारसे व्यथित होकर पृथ्वीने ओषधिरूपी सम्पत्तिको ग्रसित कर लिया था। किंतु आपने उसपर आक्रमण करके अपने धनुषसे उसको समतल बना दिया॥ ५॥

भूयस्तां निजकुलमुख्यवत्सयुक्तै-
र्देवाद्यैः समुचितचारुभाजनेषु।
अन्नादीन्यभिलषितानि यानि तानि
स्वच्छन्दं सुरभितनूमदूदुहस्त्वम्॥ ६॥

पुनः पृथुस्वरूप आपने पृथ्वीका दोहन किया। उस समय देवादिकोंने जिसे जिन-जिन अन्न आदि ओषधियोंकी अभिलाषा हुई, उन-उनको अपने-अपने कुलके प्रधान पुरुषोंको वत्सरूपमें नियुक्त करके समुचित सुन्दर पात्रोंमें स्वच्छन्दतापूर्वक गोरूपधारिणी पृथ्वीसे दुहा॥ ६॥

आत्मानं यजति मखैस्त्वयि त्रिधाम-
न्नारब्धे शततमवाजिमेधयागे।
स्पर्धालुः शतमख एत्य नीचवेषो
हत्वाश्वं तव तनयात् पराजितोऽभूत्॥ ७॥

त्रिधामन्! जब पृथुरूप आप यज्ञोंद्वारा आत्मस्वरूप विष्णुका यजन कर रहे थे, उस समय जब सौवाँ अश्वमेध-यज्ञ प्रारम्भ हुआ तब इन्द्रके मनमें स्पर्धा उत्पन्न हो गयी। फिर तो वे कपटवेष धारण करके वहाँ आये और आपके यज्ञिय अश्वको चुराकर चलते बने। परंतु आपके पुत्रसे उन्हें पराजित होना पड़ा॥ ७॥

देवेन्द्रं मुहुरिति वाजिनं हरन्तं
वह्नौ तं मुनिवरमण्डले जुहूषौ।
रुन्धाने कमलभवे क्रतोः समाप्तौ
साक्षात्त्वं मधुरिपुमैक्षथाः स्वयं स्वम्॥ ८॥

यों बारंबार यज्ञिय अश्वका अपहरण करनेवाले देवराज इन्द्रको जब मुनिवरमण्डलने दक्षिणाग्निमें होम देनेकी इच्छा की, तब ब्रह्माने आकर उन्हें मना कर दिया। फिर यज्ञ-समाप्तिके अवसरपर आपने स्वयं आत्मस्वरूप मधुसूदनका साक्षात्कार किया॥ ८॥

तद्दत्तं वरमुपलभ्य भक्तिमेकां
गङ्गान्ते विहितपदः कदापि देव।
सत्रस्थं मुनिनिवहं हितानि शंस-
न्नैक्षिष्ठाः सनकमुखान् मुनीन् पुरस्तात्॥ ९ ॥

विष्णुभगवान्ने आपको वरदानरूपमें अपनी अनपायिनी भक्ति प्रदान की। देव! तदनन्तर गङ्गाके तटपर स्थान नियत करके आपने यज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञमें पधारे हुए मुनिगणको प्रवृत्ति तथा निवृत्ति लक्षणवाले धर्मका उपदेश करते हुए आपने अपने समक्ष सनकादि मुनियोंको उपस्थित देखा॥ ९॥

विज्ञानं सनकमुखोदितं दधानः
स्वात्मानं स्वयमगमो वनान्तसेवी।

तत्तादृक्पृथुवपुरीश सत्वरं मे
रोगौघं प्रशमय वातगेहवासिन्॥ १०॥

तब सनकादिद्वारा उपदिष्ट ब्रह्मज्ञानको भलीभाँति धारण करके आप वनवास करने लगे और वहाँ स्वयं स्वरूपभूत परब्रह्मको प्राप्त हो गये। इस प्रकार पृथु-शरीर धारण करनेवाले परमेश्वर! वातगेहवासिन्! शीघ्र ही मेरे रोगसमूहको शान्त कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति पृथुचरितवर्णनम् अष्टादशदशकं समाप्तम्॥

एकोनविंशतितमदशकम्

दक्षोत्पत्ति-वर्णन

पृथोस्तु नप्ता पृथुधर्मकर्मठः प्राचीनबर्हिर्युवतौ शतद्रुतौ।
प्रचेतसो नाम सुचेतसः सुतानजीजनत्त्वत्करुणाङ्कुरानिव॥ १॥

भगवन्! पृथुके ही वंशमें उनके प्रपौत्र महाराज प्राचीनबर्हि हुए, जो पृथुके ही समान धर्मात्मा तथा कर्मकाण्डमें निष्णात थे। उन्होंने अपनी भार्या शतद्रुतिके गर्भसे प्रचेतस् (प्रचेता) नामवाले पुत्रोंको पैदा किया। वे सब-के-सब शुद्ध चित्तवाले तथा आपकी करुणाके अङ्कुर-सदृश थे॥ १॥

पितुः सिसृक्षानिरतस्य शासनाद् भवत्तपस्याभिरता दशापि ते।
पयोनिधिं पश्चिममेत्य तत्तटे सरोवरं संददृशुर्मनोहरम्॥ २॥

प्रजाकी सृष्टिमें निरत रहनेवाले पिताके प्रजा-सृष्टिके लिये आदेश देनेपर वे दसों पुत्र आपकी तपस्यामें तत्पर होकर पश्चिम-समुद्रके तटपर चले गये। वहाँ उन्हें एक मनोहर सरोवर दृष्टिगोचर हुआ॥ २॥

तदा भवत्तीर्थमिदं समागतो भवो भवत्सेवकदर्शनादृतः।
प्रकाशमासाद्य पुरः प्रचेतसामुपादिशद् भक्ततमस्तव स्तवम्॥ ३॥

तब भक्तश्रेष्ठ भगवान् शंकर आपके सेवकोंके दर्शनकी अभिलाषासे आपके इस तीर्थक्षेत्रमें पधारे और प्रचेताओंके सामने प्रकट होकर उन्होंने उन्हें आपके स्तोत्रका उपदेश दिया॥ ३॥

स्तवं जपन्तस्तममी जलान्तरे भवन्तमासेविषतायुतं समाः।
भवत्सुखास्वादरसादमीष्वियान् बभूव कालो ध्रुववन्न शीघ्रता॥ ४॥

तब ये सब-के-सब जलके भीतर घुसकर उस स्तोत्रका पाठ करते हुए दस हजार वर्षतक आपके स्तवनमें लगे रहे। आप ही जिसके सुख हैं, उस ब्रह्मानन्दके आस्वादनमें रस मिलनेके कारण इनका इतना समय व्यतीत हो गया। इनमें ध्रुवके समान शीघ्रता नहीं थी॥ ४॥

तपोभिरेषामतिमात्रवर्धिभिः स यज्ञहिंसानिरतोऽपि पावितः।
पितापि तेषां गृहयातनारदप्रदर्शितात्मा भवदात्मतां ययौ॥ ५॥

इनके अत्यन्त वृद्धिगत तपोबलसे यज्ञहिंसामें निरत रहनेपर भी वेन पावन हो गये अर्थात् पापके क्षय हो जानेसे उनका नरकसे उद्धार हो गया। इनके पिता प्राचीनबर्हि भी गृहागत नारदद्वारा आत्मज्ञान लाभ करके सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हो गये॥ ५॥

कृपाबलेनैव पुरः प्रचेतसां प्रकाशमागाः पतगेन्द्रवाहनः।
विराजिचक्रादिवरायुधांशुभिर्भुजाभिरष्टाभिरुदञ्चितद्युतिः॥ ६॥
प्रचेतसां तावदयाचतामपि त्वमेव कारुण्यभराद्वरानदाः।
भवद्विचिन्तापि शिवाय देहिनां भवत्वसौ रुद्रनुतिश्च कामदा॥ ७॥

जिनकी आठ भुजाओंमें कान्तिमान् चक्र आदि श्रेष्ठ आयुधोंकी किरणें उद्दीप्त थीं तथा उन आयुधयुक्त भुजाओंके कारण जिनकी दीप्ति अत्यन्त उद्भासित थी और जो पक्षिराज गरुडपर सवार थे, वे आप भगवान् विष्णु अपनी कृपाके बलसे ही प्रचेताओंके दृष्टिगोचर हुए। जबतक प्रचेताओंने कोई याचना नहीं की उसके पूर्व ही आपने स्वयं अपनी करुणाके वशीभूत हो उन्हें यह वर प्रदान किया—'शरीरधारियोंके लिये तुमलोगोंका अनुस्मरण भी मङ्गलकारक होगा तथा रुद्रद्वारा गायी हुई मेरी यह स्तुति अभीष्ट-दायिनी होगी'॥ ६-७॥

अवाप्य कान्तां तनयां महीरुहां
तया रमध्वं दशलक्षवत्सरीम्।
सुतोऽस्तु दक्षो ननु तत्क्षणाच्च मां
प्रयास्यथेति न्यगदो मुदैव तान्॥ ८॥

'तुमलोग वृक्षोंकी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त करके उसके साथ दस लाख वर्षोंतक सुखोपभोग करोगे। उससे दक्ष नामक पुत्र उत्पन्न होगा। पुनः निश्चित समयके पश्चात् उसी क्षण मुझे प्राप्त कर लोगे अर्थात् मुक्त हो जाओगे।' यों आपने अपनी प्रसन्नतासे ही उन्हें वरदान दिया था॥ ८॥

ततश्च ते भूतलरोधिनः तरून् क्रुधा दहन्तो द्रुहिणेन वारिताः।
द्रुमैश्च दत्तां तनयामवाप्य तां त्वदुक्तकालं सुखिनोऽभिरेमिरे॥ ९ ॥

आपके अन्तर्धान हो जानेपर जब वे प्रचेतागण क्रुद्ध होकर भूतलावरोधी वृक्षोंको जलाने लगे, तब ब्रह्माने आकर उन्हें मना किया। उसी समय वृक्षोंने उन्हें अपनी कन्या प्रदान कर दी। उसे पाकर वे आपद्वारा निर्धारित कालतक उसके साथ सुखपूर्वक रमण करते रहे॥ ९॥

अवाप्य दक्षं च सुतं कृताध्वराः प्रचेतसो नारदलब्धया धिया।
अवापुरानन्दपदं तथाविधस्त्वमीश वातालयनाथ पाहि माम्॥ १०॥

इसी बीचमें उन्हें दक्ष नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् ब्रह्मसत्र (ज्ञानयज्ञ)-का अनुष्ठान आरम्भ करके नारदद्वारा प्राप्त हुए उपदेशसे वे प्रचेतागण आनन्दस्वरूप आपको प्राप्त हो गये। ईश! आप ऐसे भक्तवत्सल हैं। अतः वातालयनाथ! मेरी भी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति प्रचेतःकथानुवर्णनम् एकोनविंशतितमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चमस्कन्धपरिच्छेदः

विंशतितमदशकम्

ऋषभ-चरित

प्रियव्रतस्य प्रियपुत्रभूतादाग्नीध्रराजादुदितो हि नाभिः।
त्वां दृष्टवानिष्टदमिष्टिमध्ये तवैव तुष्ट्यै कृतयज्ञकर्मा॥ १॥

स्वायम्भुव मनुके ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रतके प्रिय पुत्र राजा आग्नीध्र हुए। उनसे नाभिकी उत्पत्ति हुई। महाराज नाभि आपकी ही प्रसन्नताके लिये यज्ञकर्म कर रहे थे। उसी यज्ञमें उन्हें अभीष्टदाता आपका दर्शन हुआ॥ १॥

अभिष्टुतस्तत्र मुनीश्वरैस्त्वं राज्ञः स्वतुल्यं सुतमर्थ्यमानः।
स्वयं जनिष्येऽहमिति ब्रुवाणस्तिरोदधा बर्हिषि विश्वमूर्ते॥ २॥

विश्वमूर्ते! उस समय मुनीश्वरोंने आपकी स्तुति की और राजा नाभिके लिये आपसे आपके ही समान पुत्रकी याचना की, तब आप 'मैं स्वयं ही राजाके पुत्ररूपमें उत्पन्न होऊँगा'। यों कहकर उस यज्ञाग्निमें अन्तर्हित हो गये॥ २॥

नाभिप्रियायामथ मेरुदेव्यां त्वमंशतोऽभूर्ऋषभाभिधानः।
अलोकसामान्यगुणप्रभावप्रभाविताशेषजनप्रमोदः ॥ ३॥

तदनन्तर नाभिकी प्रियतमा पत्नी मेरुदेवीके गर्भसे आप अपने अंशरूपसे प्रकट हुए। उस समय आपका नाम ऋषभ रखा गया। आप अपने अमानुष गुणों तथा प्रभावोंके द्वारा सभी लोगोंको आनन्दित कर रहे थे॥ ३॥

त्वयि त्रिलोकीभृति राज्यभारं निधाय नाभिः सह मेरुदेव्या।
तपोवनं प्राप्य भवन्निषेवी गतः किलानन्दपदं पदं ते॥ ४॥

तब महाराज नाभि त्रिलोकीका भरण-पोषण करनेमें समर्थ आपके अंशभूत ऋषभपर राज्यभार छोड़कर मेरुदेवीके साथ तपोवनको चले गये। वहाँ वे आपकी सेवामें तत्पर हो गये और अन्तमें निरतिशय सुखके स्थानभूत आपके वैकुण्ठधामको चले गये॥ ४॥

इन्द्रस्त्वदुत्कर्षकृतादमर्षाद्ववर्ष नास्मिन्नजनाभवर्षे।
यदा तदा त्वं निजयोगशक्त्या स्ववर्षमेनद्व्यदधाः सुवर्षम्॥ ५॥

आपके उत्कर्षको देखकर इन्द्रको अमर्ष हो आया, इसलिये जब उन्होंने आपके राज्य अजनाभवर्षमें वर्षा नहीं की, तब आपने अपनी योगशक्तिके बलसे अपने इस वर्षमें सुन्दर वृष्टिका विधान किया॥ ५॥

जितेन्द्रदत्तां कमनीं जयन्तीमथोद्वहन्नात्मरताशयोऽपि।
अजीजनस्तत्र शतं तनूजानेषां क्षितीशो भरतोऽग्रजन्मा॥ ६॥

यद्यपि आप आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं तथापि आपने विजित इन्द्रद्वारा प्रदान की हुई सुन्दरी जयन्तीके साथ विवाह किया। उसके गर्भसे आपने सौ पुत्रोंको जन्म दिया, जिनमें भूपाल भरत सबसे ज्येष्ठ थे॥ ६॥

नवाभवन् योगिवरा नवान्ये त्वपालयन् भारतवर्षखण्डान्।
सैका त्वशीतिस्तव शेषपुत्रास्तपोबलाद् भूसुरभूयमीयुः॥ ७॥

आपके उन सौ पुत्रोंमें नौ तो योगिराज हो गये और दूसरे नौ भारतवर्षके विभिन्न खण्डोंके राजा हुए आपके शेष इक्यासी पुत्र अपने तपोबलसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये॥ ७॥

उक्त्वा सुतेभ्योऽथ मुनीन्द्रमध्ये विरक्तिभक्त्यन्वितमुक्तिमार्गम्।
स्वयं गतः पारमहंस्यवृत्तिमधा जडोन्मत्तपिशाचचर्याम्॥ ८॥

स्वयं ऋषभदेवने मुनीश्वरोंके मध्यमें भरत आदि पुत्रोंके प्रति विरक्ति-भक्तिसमन्वित मुक्तिमार्गका उपदेश देकर परमहंस-वृत्तिको धारण कर लिया। तत्पश्चात् वे जड, उन्मत्त तथा पिशाचकी भाँति आचरण करने लगे॥ ८॥

परात्मभूतोऽपि परोपदेशं कुर्वन् भवान् सर्वनिरस्यमानः।
विकारहीनो विचचार कृत्स्नां महीमहीनात्मरसाभिलीनः॥ ९॥

परमात्मस्वरूप होनेपर भी आप दूसरोंको उपदेश करते हुए सब कुछ छोड़कर अर्थात् अवधूतवेषमें विकाररहित हो परमानन्दानुभवमें अभिलीन—जीवन्मुक्तकी भाँति सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरण करते रहे॥ ९॥

शयुव्रतं गोमृगकाकचर्यां चिरं चरन्नाप्य परं स्वरूपम्।
दवाहृताङ्गः कुटकाचले त्वं तापान् ममापाकुरु वातनाथ॥ १०॥

आप चिरकालतक आजगर व्रत तथा गौ, मृग और कौए-जैसी चर्यासे जीवन निभाते रहे। तदनन्तर परम-स्वरूपको प्राप्त होकर कुटकाचलपर आपने दावाग्निद्वारा शरीरको भस्म कर दिया। वातनाथ! मेरे भी तापोंको दूर कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति ऋषभयोगीश्वरचरितवर्णनं विंशतितमदशकं समाप्तम्॥

एकविंशतितमदशकम्

जम्बूद्वीप आदि द्वीपोंमें भगवदुपासनाकी भिन्नताका वर्णन

मध्योद्भवे भुव इलावृतनाम्नि वर्षे
गौरीप्रधानवनिताजनमात्रभाजि।
शर्वेण मन्त्रनुतिभिः समुपास्यमानं
सङ्कर्षणात्मकमधीश्वर संश्रये त्वाम्॥ १॥

पृथ्वीके मध्यभागमें स्थित जम्बूद्वीपके बीचोबीच इलावृत नामका वर्ष है, उसमें गौरीप्रमुख वनिताएँ ही निवास करती हैं। वहाँ एकमात्र शिवजी ही पुरुष हैं। वे मन्त्रों तथा स्तुतियोंद्वारा संकर्षण-स्वरूप आपकी उपासना करते हैं। अधीश्वर! ऐसे आपका मैं भी आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ १॥

भद्राश्वनामक इलावृतपूर्ववर्षे
भद्रश्रवोभिर्ऋषिभिः परिणूयमानम्।
कल्पान्तगूढनिगमोद्धरणप्रवीणं
ध्यायामि देव हयशीर्षतनुं भवन्तम्॥ २॥

देव! इलावृतवर्षके पूर्वभागमें भद्राश्व नामक वर्ष है। उसमें आप हयग्रीवरूपसे वर्तमान हैं। वहाँ भद्रश्रवा नामक ऋषिगण आपकी स्तुति करते हैं। आप कल्पान्तमें लुप्त हुए वेदोंका उद्धार करनेमें प्रवीण हैं। ऐसे आपका मैं ध्यान करता हूँ॥ २॥

ध्यायामि दक्षिणगते हरिवर्षवर्षे
प्रह्लादमुख्यपुरुषैः परिषेव्यमाणम्।
उत्तुङ्गशान्तधवलाकृतिमेकशुद्ध-
ज्ञानप्रदं नरहरिं भगवन् भवन्तम्॥ ३॥

भगवन्! इलावृतके दक्षिणभागमें हरिवर्ष नामक वर्ष है। उसमें आपकी नृसिंह-मूर्ति विद्यमान है, जिसकी आकृति ऊँची, शान्त तथा परमोज्ज्वल है। प्रह्लाद आदि मुख्य पुरुष उसकी उपासना करते हैं। एकमात्र शुद्ध ज्ञान प्रदान करनेवाले आपका मैं ध्यान करता हूँ॥ ३॥

वर्षे प्रतीचि ललितात्मनि केतुमाले
लीलाविशेषललितस्मितशोभनाङ्गम्।
लक्ष्म्या प्रजापतिसुतैश्च निषेव्यमाणं
तस्याः प्रियाय धृतकामतनुं भजे त्वाम्॥ ४॥

इलावृतके पश्चिम सौन्दर्ययुक्त प्राणियोंसे परिपूर्ण केतुमाल नामक वर्ष है। वहाँ लक्ष्मीको प्रसन्न करनेके लिये आपने कामदेवका स्वरूप धारण किया था। आपका शरीर लीलाविशेषसे रमणीय तथा मन्द मुसकानसे सुशोभित है। वहाँ लक्ष्मी तथा संवत्सर नामक प्रजापतिके पुत्रोंद्वारा आपकी सेवा होती है। ऐसे आपका मैं भजन करता हूँ॥ ४॥

रम्ये ह्युदीचि खलु रम्यकनाम्नि वर्षे
तद्वर्षनाथमनुवर्यसपर्यमाणम्।
भक्तैकवत्सलममत्सरहृत्सु भान्तं
मत्स्याकृतिं भुवननाथ भजे भवन्तम्॥ ५॥

भुवननाथ! इलावृतके उत्तर परम रमणीय रम्यक नामवाला वर्ष है। उसमें आपकी मत्स्य-मूर्ति विद्यमान है, जिसकी रम्यकवर्षके स्वामी मनुश्रेष्ठ वैवस्वत नित्य आराधना करते रहते हैं। आप एकमात्र भक्तवत्सल तथा मत्सरहीन हृदयोंमें भासित होनेवाले हैं। ऐसे आपको मैं भजता हूँ॥ ५॥

वर्षं हिरण्मयसमाह्वयमौत्तराह-
मासीनमद्रिधृतिकर्मठकामठाङ्गम्।

संसेवते पितृगणप्रवरोऽर्यमा यं
तं त्वां भजामि भगवन् परचिन्मयात्मन्॥ ६॥

उत्तर दिशामें हिरण्मय नामक वर्ष है। उसमें अमृतमन्थनके समय मन्दराचलको धारण करनेमें निपुण आपकी कच्छप-मूर्ति आसीन है, जिसकी पितृगणोंमें श्रेष्ठ ये अर्यमा नित्य सेवा करते हैं। विशुद्धज्ञानस्वरूप भगवन्! ऐसे आपका मैं भजन करता हूँ॥ ६॥

किं चोत्तरेषु कुरुषु प्रियया धरण्या
संसेवितो महितमन्त्रनुतिप्रभेदैः।
दंष्ट्राग्रघृष्टघनपृष्ठगरिष्ठवर्ष्मा
त्वं पाहि विज्ञनुतयज्ञवराहमूर्ते॥ ७॥

उत्तर कुरुवर्षमें आप दंष्ट्राग्रभागसे घनपृष्ठको रगड़नेवाले अत्यन्त उन्नत यज्ञवाराह-स्वरूपसे वर्तमान हैं। वहाँ आपकी प्रियतमा धरणी-देवी उत्तम मन्त्रों तथा विभिन्न स्तोत्रोंद्वारा आपकी उपासना करती हैं। ज्ञानियोंद्वारा स्तुत यज्ञवराहमूर्तिधारी भगवन्! आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ७॥

याम्यां दिशं भजति किम्पुरुषाख्यवर्षे
संसेवितो हनुमता दृढभक्तिभाजा।
सीताभिरामपरमाद्भुतरूपशाली
रामात्मकः परिलसन् परिपाहि विष्णो॥ ८॥

दक्षिण दिशामें स्थित किम्पुरुष नामक वर्षमें आप सीताजीके साथ परम अद्भुत तथा सौन्दर्यशाली रूप धारण करके राम-रूपसे सुशोभित हो रहे हैं। वहाँ अटलभक्तिमान् हनुमान्जी आपकी सेवा करते हैं। विष्णो! मेरी रक्षा कीजिये॥ ८॥

श्रीनारदेन सह भारतखण्डमुख्यै-
स्त्वं सांख्ययोगनुतिभिः समुपास्यमानः।
आकल्पकालमिह साधुजनाभिरक्षी
नारायणो नरसखः परिपाहि भूमन्॥ ९॥

भारतवर्षमें आप नरसखा नारायणरूपसे वर्तमान हैं। यहाँ आप कल्पपर्यन्त साधुजनोंकी रक्षा करनेमें तत्पर हैं। श्रीनारदजी भारतवासी

मुनीश्वरोंके साथ सांख्य-योगसम्बन्धिनी स्तुतियोंद्वारा आपकी सम्यक् उपासना करते हैं। भूमन्! मेरी रक्षा कीजिये॥ ९॥

प्लाक्षेऽर्करूपमयि शाल्मल इन्दुरूपं
द्वीपे भजन्ति कुशनामनि वह्निरूपम्।
क्रौञ्चेऽम्बुरूपमथ वायुमयं च शाके
त्वां ब्रह्मरूपमयि पुष्करनाम्नि लोकाः॥ १०॥

प्लक्षद्वीपमें सूर्यरूपमें, शाल्मलिद्वीपमें चन्द्ररूपमें, कुशद्वीपमें अग्निरूपमें, क्रौञ्चद्वीपमें जलरूपमें, शाकद्वीपमें वायुरूपमें और पुष्करद्वीपमें ब्रह्मरूपमें उस-उस द्वीपके निवासी आपको भजते हैं॥ १०॥

सर्वैर्ध्रुवादिभिरुडुप्रकरैर्ग्रहैश्च
पुच्छादिकेष्ववयवेष्वभिकल्प्यमानैः ।
त्वं शिंशुमारवपुषा महतामुपास्यः
संध्यासु रुन्धि नरकं मम सिन्धुशायिन्॥ ११॥

सिन्धुशायिन्! महापुरुषगण आपके शिंशुमार (सूँस)-रूपकी तीनों संध्याओंमें उपासना करते हैं। आपके उस शरीरके पूँछ आदि अवयवोंमें उपासकोंने सभी ध्रुव आदि भक्तों, अश्विनी आदि नक्षत्रों तथा सूर्यादि ग्रहोंकी कल्पना कर रखी है। भगवन्! मेरे नरक-पातका निवारण कीजिये॥ ११॥

पातालमूलभुवि शेषतनुं भवन्तं
लोलैककुण्डलविराजिसहस्रशीर्षम् ।
नीलाम्बरं धृतहलं भुजगाङ्गनाभि-
र्जुष्टं भजे हर गदान् गुरुगेहनाथ॥ १२॥

पाताललोकमें आपकी शेषमूर्ति विद्यमान है, जिसके एक हजार फण हैं और जो हिलते हुए एकमात्र कुण्डलसे सुशोभित है। उसपर नीलाम्बर शोभा पा रहा है। उसके हाथमें आयुधरूपमें हल वर्तमान है और नागिनियाँ उसकी सेवा कर रही हैं। ऐसे आपका मैं भजन करता हूँ। गुरुगेहनाथ! मेरे रोगोंको हर लीजिये॥ १२॥

॥ इति जम्बूद्वीपादिषु भगवदुपासनाप्रकारवर्णनम् एकविंशतितमदशकं समाप्तम्॥

षष्ठस्कन्धपरिच्छेदः

द्वाविंशतितमदशकम्

अजामिलोपाख्यान

अजामिलो नाम महीसुरः पुरा
चरन् विभो धर्मपथान् गृहाश्रमी।
गुरोर्गिरा काननमेत्य दृष्टवान्
सुधृष्टशीलां कुलटां मदाकुलाम्॥ १॥

विभो! प्राचीनकालमें अजामिल नामवाले एक ब्राह्मण हो गये हैं। वे गृहस्थाश्रममें रहकर धर्ममार्गका पालन कर रहे थे। एक बार वे पिताकी आज्ञासे वनमें गये। वहाँ उन्होंने एक अतिशय ढीठ स्वभाववाली मदविह्वला कुलटा स्त्रीको देखा॥ १॥

स्वतः प्रशान्तोऽपि तदाहृताशयः
स्वधर्ममुत्सृज्य तया समारमन्।
अधर्मकारी दशमी भवन् पुन-
र्दधौ भवन्नामयुते सुते रतिम्॥ २॥

यद्यपि वे स्वतः परम शान्त थे तथापि उस कुलटाने उनके मनको आकृष्ट कर लिया और वे स्वधर्मका उत्सर्ग करके उसके साथ रमण करने लगे। (लोकयात्रानिर्वाहार्थ) वे पापकर्म करने लगे। पुनः जब दसवीं अवस्था (मृत्यु) समीप आयी, तब उन्होंने अपने 'नारायण' नामक पुत्रमें अत्यन्त स्नेह धारण किया॥ २॥

स मृत्युकाले यमराजकिंकरान्
भयंकरांस्त्रीनभिलक्षयन् भिया।
पुरा मनाक्त्वत्स्मृतिवासनाबला-
ज्जुहाव नारायणनामकं सुतम्॥ ३॥

मृत्युकालमें तीन भयंकर यमदूतोंको देखकर वे भयभीत हो गये।

उस समय भी उनमें पूर्वकृत भगवदुपासनाका कुछ संस्कार अवशेष था, उसीके बलसे उन्होंने अपने नारायण नामक पुत्रको पुकारा॥ ३॥

दुराशयस्यापि तदात्मनिर्गत-
त्वदीयनामाक्षरमात्रवैभवात्।
पुरोऽभिपेतुर्भवदीयपार्षदा-
श्चतुर्भुजाः पीतपटा मनोरमाः॥ ४॥

अजामिल यद्यपि महान् दुराचारी था तथापि मरणासन्न-कालमें उसके मुखसे निकले हुए आपके नामाक्षरमात्रके प्रभावसे आपके पार्षद विष्णुदूत उसके आगे प्रकट हो गये। उन दूतोंके चार भुजाएँ थीं। उनके शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था और उनका रूप मनोहर था॥ ४॥

अमुं च सम्पाश्य विकर्षतो भटान्
विमुञ्चतेत्यारुरुधुर्बलादमी।
निवारितास्ते च भवज्जनैस्तदा
तदीयपापं निखिलं न्यवेदयन्॥ ५॥

यमदूत गलेमें पाश बाँधकर अजामिलको खींच रहे हैं, यह देख उन विष्णुदूतोंने 'इसे छोड़ दो' ऐसा कहकर बलपूर्वक सब ओरसे उन्हें रोका। तब आपके पार्षदोंद्वारा निवारण किये जानेपर वे यमदूत अजामिलके सम्पूर्ण पापोंका वर्णन करने लगे॥ ५॥

भवन्तु पापानि कथं तु निष्कृते
कृतेऽपि भो दण्डनमस्ति पण्डिताः।
न निष्कृतिः किं विदिता भवादृशा-
मिति प्रभो त्वत्पुरुषा बभाषिरे॥ ६॥

प्रभो! तब आपके पार्षदोंने उन्हें यों उत्तर दिया—'ओ दण्डनीतिके पण्डितो! इसके बहुत-से पापकर्म हों, परंतु उनका प्रायश्चित्त कर लेनेपर भी इसे कैसे दण्ड दिया जा सकता है? क्या तुम-जैसे यमदूतोंको प्रायश्चित्तका ज्ञान नहीं है?'॥ ६॥

श्रुतिस्मृतिभ्यां विहिता व्रतादयः
पुनन्ति पापं न लुनन्ति वासनाम्।

अनन्तसेवा तु निकृन्तति द्वयी-
मिति प्रभो त्वत्पुरुषा बभाषिरे॥ ७ ॥

'श्रुति-स्मृतियोंद्वारा विहित व्रत आदि केवल पापका शोधन करते हैं, पाप-वासनाका विनाश नहीं करते; किंतु श्रीहरिकी सेवा पाप तथा पापवासना—दोनोंका उन्मूलन करनेवाली है।' प्रभो! आपके दूतोंने उन्हें यों उत्तर दिया॥ ७॥

अनेन भो जन्मसहस्रकोटिभिः
कृतेषु पापेष्वपि निष्कृतिः कृता।
यदग्रहीन्नाम भयाकुलो हरे-
रिति प्रभो त्वत्पुरुषा बभाषिरे॥ ८ ॥

प्रभो! विष्णुदूतोंने उनसे इस प्रकार कहा—'हे यमदूतो! इसने सहस्र करोड़ जन्मोंतक किये गये पापोंका भी प्रायश्चित्त कर लिया; क्योंकि इसने भयाकुल होकर श्रीहरिका नाम लिया है'॥ ८॥

नृणामबुद्ध्यापि मुकुन्दकीर्तनं
दहत्यघौघान् महिमास्य तादृशः।
यथाग्निरेधांसि यथौषधं गदा-
निति प्रभो त्वत्पुरुषा बभाषिरे॥ ९ ॥

'जैसे अग्नि ईंधनको जला डालती है और ओषधि रोगोंको विनष्ट कर देती है, उसी तरह अनजानमें भी किया हुआ हरि-नामोच्चारण मनुष्योंके पाप-समूहोंको भस्म कर देता है; हरि-नामकी ऐसी ही अपरिच्छेद्य महिमा है।' प्रभो! विष्णुदूतोंने उन्हें ऐसा बतलाया॥ ९॥

इतीरितैर्याम्यभटैरपासृते
भवद्भटानां च गणे तिरोहिते।
भवत्स्मृतिं कंचन कालमाचरन्
भवत्पदं प्रापि भवद्भटैरसौ॥ १०॥

यों समझाये जानेपर जब यमदूत वहाँसे चले गये और विष्णुदूतोंका समुदाय अन्तर्हित हो गया, तब अजामिल कुछ कालतक आपके

भजन-ध्यानका आचरण करता रहा। तत्पश्चात् आपके पार्षदोंने उसे वैकुण्ठमें पहुँचा दिया॥ १०॥

स्वकिंकरावेदनशङ्कितो यम-
स्त्वदङ्घ्रिभक्तेषु न गम्यतामिति।
स्वकीयभृत्यानशिशिक्षदुच्चकैः
स देव वातालयनाथ पाहि माम्॥ ११॥

देव! अपने दूतोंके (सब वृत्तान्त) निवेदन करनेपर (भक्तापराधसे) भयभीत हुए उन यमराजने अपने भृत्योंको अत्यन्त कड़े शब्दोंद्वारा यों शिक्षा दी—'आजसे भगवच्चरणाश्रित जनोंके निकट मत जाना।' वातालयनाथ! ऐसे भक्तवत्सल आप मेरी भी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति अजामिलोपाख्यानं द्वाविंशतितमदशकं समाप्तम्॥

त्रयोविंशतितमदशकम्

चित्रकेतुका उपाख्यान तथा मरुद्गणोंकी उत्पत्ति

प्राचेतसस्तु भगवन्नपरो हि दक्ष-
स्त्वत्सेवनं व्यधित सर्गविवृद्धिकामः।
आविर्बभूविथ तदा लसदष्टबाहु-
स्तस्मै वरं ददिथ तां च वधूमसिक्नीम्॥ १॥

भगवन्! प्रचेताओंके पुत्र दक्ष, जो ब्रह्मपुत्र दक्षसे भिन्न थे, प्रजासर्गकी वृद्धिकी कामनासे आपकी उपासना करने लगे। तब आप आठ भुजाओंसे सुशोभित होकर उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्हें आपने वरदान तथा असिक्नी नामकी भार्या प्रदान की॥ १॥

तस्यात्मजास्त्वयुतमीश पुनः सहस्रं
श्रीनारदस्य वचसा तव मार्गमापुः।
नैकत्र वासमृषये स मुमोच शापं
भक्तोत्तमस्त्वृषिरनुग्रहमेव मेने॥ २॥

ईश! उन दक्षके हर्यश्वसंज्ञक दस हजार तथा शबलाश्व नामक एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए। वे सब-के-सब श्रीनारदजीके निवृत्ति-मार्गोपदेशसे आपके मार्ग—मोक्षको प्राप्त हो गये। तब दक्षने देवर्षि नारदको शाप दिया कि तुम एक स्थानपर स्थिर नहीं रह सकते। भक्तश्रेष्ठ देवर्षिने उसे अपने लिये अनुग्रह ही माना॥ २॥

षष्ट्या ततो दुहितृभिः सृजतः कुलौघान्
दौहित्रसूनुरथ तस्य स विश्वरूपः।
त्वत्स्तोत्रवर्मितमजापयदिन्द्रमाजौ
देव त्वदीयमहिमा खलु सर्वजैत्रः॥ ३॥

तदनन्तर अपनी साठ कन्याओंद्वारा चराचर-भेद-समूहोंका विस्तार करनेवाले दक्षके दौहित्र त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप हुए, जिन्होंने इन्द्रको नारायणकवचसे परिवेष्टित करके देवासुर-संग्राममें विजयी बनाया। देव! आपकी महिमा निश्चय ही सबको जीतनेवाली है॥ ३॥

प्राक्शूरसेनविषये किल चित्रकेतुः
पुत्राग्रही नृपतिरङ्गिरसः प्रभावात्।
लब्ध्वैकपुत्रमथ तत्र हते सपत्नी-
सङ्घैरमुह्यदवशस्तव माययासौ॥ ४॥

प्राचीन कालमें शूरसेनराज्यमें चित्रकेतु नामक राजा हुए। उन्होंने महर्षि अङ्गिरासे पुत्रके लिये आग्रह किया। तब ऋषिके प्रभावसे उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसे महारानीकी सौतोंने मिलकर मार डाला। तब राजा चित्रकेतु आपकी मायासे विवश होकर मोहके वशीभूत हो गये॥ ४॥

तन्नारदस्तु सममङ्गिरसा दयालुः
सम्प्राप्य तावदुपदर्श्य सुतस्य जीवम्।
कस्यास्मि पुत्र इति तस्य गिरा विमोहं
त्यक्त्वा त्वदर्चनविधौ नृपतिं न्ययुङ्क्त॥ ५॥

तब दयालु नारद महर्षि अङ्गिराके साथ राजाके निकट आये और अपने योगबलसे मृत पुत्रके जीवको बुलाकर राजाको दिखलाया। उस

जीवके 'मैं किसका पुत्र हूँ?' इस वचनद्वारा राजाके विमोहको दूर कराकर नारदजीने उन्हें भगवदुपासनामें नियुक्त कर दिया॥ ५॥

स्तोत्रं च मन्त्रमपि नारदतोऽथ लब्ध्वा
तोषाय शेषवपुषो ननु ते तपस्यन्।
विद्याधराधिपतितां स हि सप्तरात्रे
लब्ध्वाप्यकुण्ठमतिरन्वभजद्भवन्तम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर राजा चित्रकेतु नारदजीसे ही स्तोत्र और मन्त्र भी प्राप्त करके आप अनन्तमूर्तिको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करने लगे। सात रात्रिके पश्चात् ही उन्हें विद्याधरोंका आधिपत्य प्राप्त हो गया। तब निश्चल बुद्धिवाले चित्रकेतु आपका भजन करने लगे॥ ६॥

तस्मै मृणालधवलेन सहस्रशीर्ष्णा
रूपेण बद्धनुतिसिद्धगणावृतेन।
प्रादुर्भवन्नचिरतो नुतिभिः प्रसन्नो
दत्त्वात्मतत्त्वमनुगृह्य तिरोदधाथ॥ ७॥

कुछ ही समयके बाद उनकी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर आप उनके सामने प्रकट हो गये। उस समय आपकी मूर्ति कमल-तन्तु-सदृश उज्ज्वल वर्णकी थी, उसमें एक हजार फण थे और स्तवन करनेवाले सिद्धगण उसे घेरे हुए थे। तब आप उनपर अनुग्रह करके उन्हें आत्मतत्त्वका उपदेश देकर अन्तर्धान हो गये॥ ७॥

त्वद्भक्तमौलिरथ सोऽपि च लक्षलक्षं
वर्षाणि हर्षुलमना भुवनेषु कामम्।
सङ्गापयन् गुणगणं तव सुन्दरीभिः
सङ्गातिरेकरहितो ललितं चचार॥ ८ ॥

तत्पश्चात् आपके भक्तोंमें शिरोमणि चित्रकेतु भी प्रसन्न मनसे लाख-लाख वर्षोंतक चौदहों भुवनोंमें विद्याधरियोंद्वारा आपके चरित्रका गान कराते हुए स्वच्छन्दरूपसे सुखपूर्वक विचरण करते रहे। उस समय उनकी आसक्ति नष्ट हो गयी थी॥ ८॥

अत्यन्तसङ्गविलयाय भवत्प्रणुन्नो
नूनं स रौप्यगिरिमाप्य महत्समाजे।

निश्शङ्कमङ्ककृतवल्लभमङ्गजारिं
तं शंकरं परिहसन्नुमयाभिशेपे॥ ९ ॥

फिर भी आसक्तिका सर्वथा विनाश करनेके लिये आपकी प्रेरणासे वे घूमते-घामते रजतगिरि (कैलास)-पर जा पहुँचे। वहाँ बड़े-बड़े मुनियोंके समाजमें कामदेवके शत्रु शंकरजीको निश्शङ्कभावसे पार्वतीको गोदमें लिये बैठे देखकर उनका परिहास करने लगे। तब उमादेवीने चित्रकेतुको शाप दे दिया॥ ९॥

निस्सम्भ्रमस्त्वयमयाचितशापमोक्षो
वृत्रासुरत्वमुपगम्य सुरेन्द्रयोधी।
भक्त्यात्मतत्त्वकथनैः समरे विचित्रं
शत्रोरपि भ्रममपास्य गतः पदं ते॥ १०॥

किंतु चित्रकेतुने शापमोक्षके लिये याचना नहीं की। वे वृत्रासुर-रूपसे उत्पन्न होकर सम्भ्रमरहित हो देवराज इन्द्रके साथ युद्धमें तत्पर हो गये। समरभूमिमें ही भक्तिपूर्वक आत्मतत्त्वके वर्णनद्वारा अपने शत्रु इन्द्रके भी अज्ञानको नष्ट करके (वज्रसे आहत होकर) वे आपके निवासस्थान वैकुण्ठको चले गये। यह एक आश्चर्यकी बात हुई॥ १०॥

त्वत्सेवनेन दितिरिन्द्रवधोद्यतापि
तान्प्रत्युतेन्द्रसुहृदो मरुतोऽभिलेभे।
दुष्टाशयेऽपि शुभदैव भवन्निषेवा
तत्तादृशस्त्वमव मां पवनालयेश॥ ११॥

यद्यपि दिति इन्द्रवधके लिये उद्यत थी (उसके लिये उसने कश्यपजीसे आपकी आराधनाका नियम ग्रहण किया था।) तथापि उसे पुत्ररूपमें इन्द्रके सुहृद् मरुद्गण प्राप्त हुए। इस प्रकार आपकी उपासना दूषित मनवालेके लिये भी शुभदायिनी ही होती है। पवनालयेश! आप ऐसे भक्तवत्सल हैं, अतः मेरी भी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति दक्षचरितं चित्रकेतूपाख्यानं वृत्रवधवर्णनं मरुतामुत्पत्तिकथनं च त्रयोविंशतितमदशकं समाप्तम्॥

सप्तमस्कन्धपरिच्छेदः

चतुर्विंशतितमदशकम्

प्रह्लाद-चरितमें नृसिंहभगवान्‌का प्राकट्य

हिरण्याक्षे पोत्रिप्रवरवपुषा देव भवता
हते शोकक्रोधग्लपितधृतिरेतस्य सहजः।
हिरण्यप्रारम्भः कशिपुरमरारातिसदसि
प्रतिज्ञामातेने तव किल वधार्थं मुररिपो॥ १॥

देव! जब आपने श्रेष्ठ वाराह-मूर्ति धारण करके हिरण्याक्षको मार डाला, तब उसके सहोदर भाई हिरण्यकशिपुका धैर्य शोक और क्रोधके कारण जाता रहा। मुरारे! फिर तो उसने असुरोंकी सभामें आपके वधके लिये प्रतिज्ञा की॥ १॥

विधातारं घोरं स खलु तपसित्वा न चिरतः
पुरःसाक्षात्कुर्वन् सुरनरमृगाद्यैरनिधनम्।
वरं लब्ध्वा दृप्तो जगदिह भवन्नायकमिदं
परिक्षुन्दन्निन्द्रादहरत दिवं त्वामगणयन्॥ २॥

तब उसने घोर तपस्या करके कुछ ही दिनोंमें अपने समक्ष ब्रह्माका साक्षात्कार किया। उनसे देव, मनुष्य और पशु आदिसे न मारे जानेका वरदान प्राप्त करके गर्वित हो उठा। फिर तो आपकी कुछ भी परवाह न करते हुए इस जगत्‌को, जिसके आप ही एकमात्र स्वामी हैं, पीड़ित करके उसने स्वर्गलोकको भी इन्द्रसे छीन लिया॥ २॥

निहन्तुं त्वां भूयस्तव पदमवाप्तस्य च रिपो-
र्बहिर्दृष्टेरन्तर्दधिथ हृदये सूक्ष्मवपुषा।
नदन्नुच्चैस्तत्राप्यखिलभुवनान्ते च मृगयन्
भिया यातं मत्वा स खलु जितकाशी निववृते॥ ३॥

पुनः आपका वध करनेके लिये वह आपके स्थान (क्षीरसागर)-में जा पहुँचा। तब आप ज्ञानदृष्टिरहित उस शत्रुके हृदयमें अपने

सूक्ष्मशरीरसे अन्तर्लीन हो गये। आपको भयसे भागा हुआ मानकर उसने सिंहगर्जना की और चौदहों भुवनोंके अन्ततक आपकी खोज करता हुआ वह अपनेको विजयी मानकर लौट आया॥ ३॥

ततोऽस्य प्रह्लादः समजनि सुतो गर्भवसतौ
मुनेर्वीणापाणेरधिगतभवद्भक्तिमहिमा ।
स वै जात्या दैत्यः शिशुरपि समेत्य त्वयि रतिं
गतस्त्वद्भक्तानां वरद परमोदाहरणताम्॥ ४॥

तदनन्तर उसके प्रह्लाद नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह जब गर्भमें ही था तभी उसे वीणापाणि नारदमुनिसे आपकी भक्तिकी महिमा ज्ञात हो गयी थी। अतः वरद! वह जन्मसे दैत्य होनेपर भी शिशु-अवस्थामें ही आपकी प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त करके आपके भक्तोंके लिये परम उदाहरणस्वरूप हो गया॥ ४॥

सुरारीणां हास्यं तव चरणदास्यं निजसुते
स दृष्ट्वा दुष्टात्मा गुरुभिरशिशिक्षच्चिरममुम्।
गुरुप्रोक्तं चासाविदमिदमभद्राय दृढमि-
त्यपाकुर्वन् सर्वं तव चरणभक्त्यैव ववृधे॥ ५॥

अपने पुत्र प्रह्लादमें आपके चरणोंकी दासता, जो असुरोंके लिये हास्यास्पद थी, देखकर दुष्टात्मा हिरण्यकशिपुने उसे चिर-कालतक शण्डामर्क आदि गुरुओंद्वारा शिक्षा दिलायी। परंतु गुरुद्वारा कही हुई यह सारी विद्या मङ्गलकारिणी नहीं है—यों निश्चय करके प्रह्लाद सबका परित्यागकर केवल आपकी चरणभक्तिके साथ ही बढ़ते रहे अर्थात् शरीरवृद्धिके अनुसार उनकी भक्ति भी बढ़ती गयी॥ ५॥

अधीतेषु श्रेष्ठं किमिति परिपृष्टेऽथ तनये
भवद्भक्तिं वर्यामभिगदति पर्याकुलधृतिः।
गुरुभ्यो रोषित्वा सहजमतिरस्येत्यभिविदन्
वधोपायानस्मिन् व्यतनुत भवत्पादशरणे॥ ६॥

तदनन्तर किसी समय पिताद्वारा 'तुम्हारी पढ़ी हुई विद्याओंमें सर्वोत्तम क्या है?' यों पूछे जानेपर प्रह्लादने आपकी भक्तिको ही

सर्वश्रेष्ठ बतलाया। जिससे हिरण्यकशिपु क्रोधसे तिलमिला उठा। उसने कुपित होकर गुरुओंसे पूछा। तब गुरुमुखसे 'यह इसकी प्राकृतिक बुद्धि है' यों जानकर हिरण्यकशिपु आपके चरणाश्रयी प्रह्लादपर वधोपायोंका प्रयोग करने लगा॥ ६॥

स शूलैराविद्धः सुबहु मथितो दिग्गजगणै-
र्महासर्पैर्दष्टोऽप्यनशनगराहारविधुतः ।
गिरीन्द्रावक्षिप्तोऽप्यहह परमात्मन्नयि विभो
त्वयि न्यस्तात्मत्वात् किमपि न निपीडामभजत॥ ७॥

वह त्रिशूलोंसे बींधा गया, दिग्गजोंद्वारा बारंबार कुचला गया, महान् विषधर सर्पोंसे डँसवाया गया, निराहार रखकर विष पिलाया गया और पर्वतकी चोटीसे ढकेल दिया गया; परंतु हे सर्वव्यापक परमात्मन्! आश्चर्य है, आपमें मनको लगा देनेके कारण प्रह्लादको किसी प्रकारकी भी पीड़ा नहीं हुई॥ ७॥

ततः शङ्काविष्टः स पुनरतिदुष्टोऽस्य जनको
गुरूक्त्या तद्गेहे किल वरुणपाशैस्तमरुणत्।
गुरोश्चासांनिध्ये स पुनरनुगान् दैत्यतनयान्
भवद्भक्तेस्तत्त्वं परममपि विज्ञानमशिषत्॥ ८॥

तब प्रह्लादका पिता हिरण्यकशिपु, जो अत्यन्त दुष्ट था, सशङ्क हो उठा। उसने गुरुओंके कहनेसे पुत्रको पुनः गुरु-गृहमें भेजकर वरुणपाशसे बाँध वहीं अवरुद्ध कर दिया। वहाँ भी जब गुरु घरपर नहीं रहते थे, तब प्रह्लाद अपने अनुयायी दैत्यपुत्रोंको भगवद्भक्तिके तत्त्व तथा ब्रह्मज्ञानका उपदेश देते थे॥ ८॥

पिता शृण्वन् बालप्रकरमखिलं त्वत्स्तुतिपरं
रुषान्धः प्राहैनं कुलहतक कस्ते बलमिति।
बलं मे वैकुण्ठस्तव च जगतां चापि स बलं
स एव त्रैलोक्यं सकलमिति धीरोऽयमगदीत्॥ ९॥

जब पिता हिरण्यकशिपुने सुना कि सब-के-सब दैत्यबालक विष्णुकी ही स्तुतिमें तत्पर रहते हैं, तब क्रोधान्ध होकर उसने प्रह्लादसे

पूछा—'कुलाङ्गार! (मेरी आज्ञाके उल्लङ्घनमें) तेरा कौन-सा बल है?' तब प्रह्लादने निर्भय होकर यों स्पष्ट उत्तर दिया—'पिताजी! विष्णु ही मेरे बल हैं और मेरे ही नहीं बल्कि आपके तथा सारे जगत्के बल वे ही हैं। यह सारी त्रिलोकी विष्णुका ही रूप है'॥ ९॥

अरे क्वासौ क्वासौ सकलजगदात्मा हरिरिति
प्रभिन्ते स्म स्तम्भं चलितकरवालो दितिसुतः।
अतः पश्चाद्विष्णो नहि वदितुमीशोऽस्मि सहसा
कृपात्मन् विश्वात्मन् पवनपुरवासिन् मृडय माम्॥ १०॥

तदनन्तर 'अरे! सम्पूर्ण जगत्का आत्मस्वरूप वह विष्णु कहाँ है? कहाँ है?' यों बकते हुए दैत्य हिरण्यकशिपुने तलवार चलाकर स्तम्भपर प्रहार किया। विष्णो! तत्पश्चात् सहसा जो दृश्य उपस्थित हुआ उसका वर्णन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ। कृपात्मन्! विश्वात्मन्! पवनपुरवासिन्! मुझे सुखी कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति प्रह्लादचरितवर्णनं चतुर्विंशतितमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चविंशतितमदशकम्

प्रह्लाद-चरित

स्तम्भे घट्टयतो हिरण्यकशिपोः कर्णौ समाचूर्णय-
न्नाघूर्णज्जगदण्डकुण्डकुहरो घोरस्तवाभूद्रवः।
श्रुत्वा यं किल दैत्यराजहृदये पूर्वं कदाप्यश्रुतं
कम्पः कश्चन सम्पपात चलितोऽप्यम्भोजभूर्विष्टरात्॥ १॥

हिरण्यकशिपुके खंभेपर प्रहार करते ही आपका ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जिसने उसके कानोंका पर्दा फाड़ दिया और जिससे ब्रह्माण्ड-कुण्डकुहर उद्भ्रान्त हो उठा। जिसे पहले कभी नहीं सुना था ऐसे भीषण शब्दको सुनकर दैत्यराजके हृदयमें एक अवर्णनीय कम्प होने लगा और कमलजन्मा ब्रह्मा अपने आसनसे विचलित हो उठे॥ १॥

दैत्ये दिक्षु विसृष्टचक्षुषि महासंरम्भिणि स्तम्भतः
सम्भूतं न मृगात्मकं न मनुजाकारं वपुस्ते विभो।
किं किं भीषणमेतदद्भुतमिति व्युद्भ्रान्तचित्तेऽसुरे
विस्फूर्जद्धवलोग्ररोमविकसद्वर्ष्मा समाजृम्भथाः ॥ २ ॥

विभो! तब वह महाक्रोधी दैत्य भौंचक्का-सा होकर चारों दिशाओंकी ओर आँखें फाड़कर देखने लगा। उसी समय आपका शरीर खंभेसे बाहर निकल पड़ा, जो न मनुष्यके आकारमें था न पशुके ही अर्थात् नृसिंहरूपमें था। उसे देखकर 'यह भयंकर तथा अद्भुत वस्तु क्या है? क्या है?'—यों हिरण्यकशिपुका चित्त विशेषरूपसे उद्भ्रान्त हो उठा। तब उज्ज्वलवर्णकी उग्र रोमावलियोंसे प्रकाशमान रूपवाले आप पूर्णतः प्रकट हो बृहदाकार दिखायी देने लगे॥ २॥

तप्तस्वर्णसवर्णघूर्णदतिरूक्षाक्षं सटाकेसर-
प्रोत्कम्पप्रनिकुम्बिताम्बरमहो जीयात्तवेदं वपुः।
व्यात्तव्याप्तमहादरीसखमुखं खड्गोग्रवल्गन्महा-
जिह्वानिर्गमदृश्यमानसुमहादंष्ट्रायुगोड्डामरम् ॥ ३ ॥

अहो! जिसके तपे हुए स्वर्णके समान पीले तथा अत्यन्त रूखे नेत्र चञ्चल हो रहे थे और सटाके बाल ऊपर उठे हुए हिल रहे थे, जिनसे गगनतल आच्छादित हो रहा था, जिसका मुख खुली हुई एक विस्तृत महती गुफा-सदृश था, जिसकी खड्गके समान तीखी महान् जिह्वा मुखके बाहर लपलपा रही थी और जो दृश्यमान दो महान् दाढ़ोंसे अत्यन्त भीषण लग रहा था, आपके उस दिव्य विग्रहकी जय हो॥ ३॥

उत्सर्पद्वलिभङ्गभीषणहनुं ह्रस्वस्थवीयस्तर-
ग्रीवं पीवरदोश्शतोद्गतनखक्रूरांशुदूरोल्बणम्।
व्योमोल्लङ्घिघनाघनोपमघनप्रध्वाननिर्द्धावित-
स्पर्द्धालुप्रकरं नमामि भवतस्तन्नारसिंहं वपुः॥ ४॥

अट्टहास करते तथा जँभाई लेते समय ऊपर उठनेवाली वलिभङ्गिमासे जिसके जबड़े बड़े भयंकर लग रहे थे, जिसकी गरदन नाटी तथा मोटी

थी, जिसके सैकड़ों मोटे-मोटे हाथ थे, जिनके नखोंकी क्रूर किरणोंसे वह अतिशय भयावना लग रहा था, जो आकाशको लाँघनेवाले सजल जलधरके गर्जन-सदृश अत्यन्त भयानक गर्जनासे शत्रुसमूहोंको खदेड़ देनेवाला था, आपके उस नृसिंह-शरीरको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४॥

नूनं विष्णुरयं निहन्म्यमुमिति भ्राम्यद्गदाभीषणं
दैत्येन्द्रं समुपाद्रवन्तमधृथा दोर्भ्यां पृथुभ्याममुम्।
वीरो निर्गलितोऽथ खड्गफलकौ गृह्णन् विचित्रश्रमान्
व्यावृण्वन् पुनरापपात भुवनग्रासोद्यतं त्वामहो॥ ५॥

'निश्चय ही यह विष्णु है, मैं इसे मारूँगा' ऐसा निश्चय करके दैत्यराज हिरण्यकशिपु अपनी गदाको घुमाता हुआ आपपर टूट पड़ा। उस समय वह भयंकर दिखायी देता था। तब आपने उसे अपने दो मोटे हाथोंसे पकड़ लिया। तदनन्तर हाथकी पकड़से छूटकर वह वीर पुनः ढाल-तलवार लेकर विचित्र पैंतरे दिखाता हुआ ब्रह्माण्डको ग्रास बनानेमें समर्थ आपके निकट आ धमका॥ ५॥

भ्राम्यन्तं दितिजाधमं पुनरपि प्रोद्गृह्य दोर्भ्यां जवाद्
द्वारेऽथोरुयुगे निपात्य नखरान् व्युत्खाय वक्षो भुवि।
निर्भिन्दन्नधिगर्भनिर्भरगलद्रक्ताम्बुबद्धोत्सवं
पायंपायमुदैरयो बहु जगत्संहारिसिंहारवान्॥ ६॥

तब पैंतरे बदलते हुए उस दैत्याधमको आपने पुनः वेगपूर्वक दोनों हाथोंसे पकड़कर सभाके द्वारपर अपनी दोनों जाँघोंके ऊपर धर दबाया और पंजोंको उसके वक्षःस्थलमें गड़ाकर उसे फाड़ दिया। उसके अंदरसे निरन्तर निकलते हुए रुधिररूपी जलको बड़े उल्लाससे बारंबार पीते हुए आप जगत्-संहारकारी सिंहनाद करने लगे॥ ६॥

त्यक्त्वा तं हतमाशु रक्तलहरीसिक्तोन्नमद्वर्ष्मणि
प्रत्युत्पत्य समस्तदैत्यपटलीं चाखाद्यमाने त्वयि।
भ्राम्यद्भूमिविकम्पिताम्बुधिकुलं व्यालोलशैलोत्करं
प्रोत्सर्पत्खचरं चराचरमहो दुःस्थामवस्थां दधौ॥ ७॥

उस समय आपका विशाल शरीर रुधिरके छींटोंसे अभिषिक्त हो उठा था। आप उस मरे हुए हिरण्यकशिपुको छोड़कर शीघ्र ही उछले और समस्त दैत्यसमूहोंको बारंबार अपना ग्रास बनाने लगे। यह देखकर चराचर जगत् बड़ी दुरवस्थामें पड़ गया; धरती घूमने लगी, सागरसमूह काँपने लगे, अचलसमुदाय चञ्चल हो गये और आकाशचारी ग्रह-नक्षत्र अपने स्थानसे उछल पड़े॥ ७॥

तावन्मांसवपाकरालवपुषं घोरान्त्रमालाधरं
त्वां मध्येसभमिद्धरोषमुषितं दुर्वारगुर्वारवम्।
अभ्येतुं न शशाक कोऽपि भुवने दूरे स्थिता भीरवः
सर्वे शर्वविरिञ्चवासवमुखाः प्रत्येकमस्तोषत॥ ८॥

उस समय मांस और चर्बीके लेपसे आपका शरीर भयानक हो गया था। गलेमें भयंकर आँतोंकी माला लटक रही थी, आपका क्रोध बढ़ा हुआ था। जिसके कारण आप बारंबार दुर्वार सिंहनाद कर रहे थे। ऐसी दशामें संसारके किसी भी प्राणीने उस दैत्य-सभामें आपके निकट जानेकी हिम्मत नहीं की। शिव, ब्रह्मा और इन्द्र आदि सभी देव भयभीत हो दूर ही खड़े रहकर बारी-बारीसे आपकी स्तुति करते रहे॥ ८॥

भूयोऽप्यक्षतरोषधाम्नि भवति ब्रह्माज्ञया बालके
प्रह्लादे पदयोर्नमत्यपभये कारुण्यभाराकुलः।
शान्तस्त्वं करमस्य मूर्ध्नि समधाः स्तोत्रैरथोद्गायत-
स्तस्याकामधियोऽपि तेनिथ वरं लोकाय चानुग्रहम्॥ ९ ॥

फिर भी जब आपका क्रोध कम नहीं हुआ तब ब्रह्माकी आज्ञासे बालक प्रह्लादने जाकर निर्भयतापूर्वक आपके चरणोंमें प्रणिपात किया। जिससे आपका क्रोध शान्त हो गया और आपने करुणाके वशीभूत हो उसके मस्तकपर अपना वरद हस्त रख दिया। तत्पश्चात् प्रह्लाद स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करने लगे। यद्यपि उनके मनमें किसी प्रकारकी कामना नहीं थी, फिर भी आपने उन्हें लोकानुग्रह-रूप वर प्रदान किया॥ ९॥

एवं नाटितरौद्रचेष्टित विभो श्रीतापनीयाभिध-
श्रुत्यन्तस्फुटगीतसर्वमहिमन्नत्यन्तशुद्धाकृते।
तत्तादृङ्निखिलोत्तरं पुनरहो कस्त्वां परो लङ्घयेत्
प्रह्लादप्रिय हे मरुत्पुरपते सर्वामयात्पाहि माम्॥ १०॥

इस प्रकार नाट्यरूपमें आप रौद्र-रसका अभिनय करनेवाले हैं। विभो! श्रीतापनीयोपनिषद् स्पष्टरूपसे आपकी समस्त महिमाका गान करती है। अत्यन्त शुद्ध आकृतिवाले भगवन्! आपका स्वरूप अनुपम तथा सर्वोत्कृष्ट है, ऐसे आपका—आपकी आज्ञाका—कौन लङ्घन कर सकता है। हे प्रह्लादप्रिय! हे मरुत्पुरपते! मेरी समस्त रोगोंसे रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति नरसिंहावतारवर्णनं पञ्चविंशतितमदशकं समाप्तम्॥

अष्टमस्कन्धपरिच्छेदः

षड्विंशतितमदशकम्

गजेन्द्र-मोक्ष

इन्द्रद्युम्नः पाण्ड्यखण्डाधिराज-
स्त्वद्भक्तात्मा चन्दनाद्रौ कदाचित्।
त्वत्सेवायां मग्नधीरालुलोके
नैवागस्त्यं प्राप्तमातिथ्यकामम्॥ १॥

पाण्ड्यदेशके अधिराज इन्द्रद्युम्न आपके भक्त थे। किसी समय वे चन्दनाद्रिपर तपस्या कर रहे थे। वहाँ अतिथि-सत्कारकी कामनासे महर्षि अगस्त्य उनके पास पधारे, परंतु आपके ध्यानमें दत्तचित्त होनेके कारण राजाने महर्षिको नहीं देखा॥ १॥

कुम्भोद्भूतिः सम्भृतक्रोधभारः
स्तब्धात्मा त्वं हस्तिभूयं भजेति।
शप्त्वाथैनं प्रत्यगात्सोऽपि लेभे
हस्तीन्द्रत्वं त्वत्स्मृतिव्यक्तिधन्यम्॥ २॥

इससे कुम्भयोनि अगस्त्य अत्यन्त कुपित हो उठे और 'तेरा हृदय जडवत् हो गया है। अतः हाथीकी योनिको प्राप्त हो जा'—यों राजाको शाप देकर चले गये। राजा इन्द्रद्युम्न भी गजेन्द्रभावको प्राप्त हो गये, परंतु उस समय भी उन्हें आपकी स्मृति बनी रही, इससे उनका वह गजेन्द्रत्व भी धन्य-धन्य हो गया॥ २॥

दुग्धाम्भोधेर्मध्यभाजि त्रिकूटे
क्रीडन् शैले यूथपोऽयं वशाभिः।
सर्वान् जन्तूनत्यवर्तिष्ट शक्त्या
त्वद्भक्तानां कुत्र नोत्कर्षलाभः॥ ३॥

ये यूथपति होकर क्षीरसागरके मध्यमें स्थित त्रिकूट पर्वतपर हथिनियोंके

साथ विहार करने लगे। बलमें सभी जन्तुओंसे बढ़-चढ़कर थे; क्योंकि आपके भक्तोंको भला, किस योनिमें उत्कर्ष लाभ नहीं होता अर्थात् वे सर्वत्र उत्कृष्ट होते हैं॥ ३॥

स्वेन स्थेम्ना दिव्यदेशत्वशक्त्या
सोऽयं खेदानप्रजानन् कदाचित्।
शैलप्रान्ते घर्मतान्तः सरस्यां
यूथैः सार्द्धं त्वत्प्रणुन्नोऽभिरेमे॥ ४॥

अपने असाधारण बल तथा उस दिव्य देशके प्रभावसे इन्हें कभी भी किसी प्रकारके क्लेशका अनुभव नहीं हुआ। एक बार आपकी प्रेरणासे ग्रीष्मकालिक तापसे संतप्त होकर ये पर्वतके प्रान्तभागमें स्थित सरोवरमें अपने यूथके साथ विहार करने लगे॥ ४॥

हूहूस्तावद् देवलस्यापि शापाद्
ग्राहीभूतस्तज्जले वर्तमानः।
जग्राहैनं हस्तिनं पाददेशे
शान्त्यर्थं हि श्रान्तिदोऽसि स्वकानाम्॥ ५॥

उसी समय हूहू नामक गन्धर्व भी महर्षि देवलके शापसे ग्राह होकर उसी सरोवरके जलमें वर्तमान था। उसने इस गजेन्द्रके पैरको पकड़ लिया; क्योंकि शान्ति देनेके लिये कभी आप अपने भक्तोंके लिये भी श्रान्तिदायक हो जाते हैं॥ ५॥

त्वत्सेवाया वैभवाद् दुर्निरोधं
युध्यन्तं तं वत्सराणां सहस्त्रम्।
प्राप्ते काले त्वत्पदैकाग्र्यसिद्ध्यै
नक्राक्रान्तं हस्तिवर्यं व्यधास्त्वम्॥ ६॥

आपकी उपासनाके प्रभावसे उसके साथ लगातार युद्ध करते एक हजार वर्ष बीत गये। तब समय आनेपर अपने चरणोंमें एकाग्रताकी प्राप्तिके लिये आपने गजेन्द्रको ग्राहसे आक्रान्त कर दिया॥ ६॥

आर्तिव्यक्तप्राक्तनज्ञानभक्तिः
शुण्डोत्क्षिप्तैः पुण्डरीकैः समर्च्चन्।
पूर्वाभ्यस्तं निर्विशेषात्मनिष्ठं
स्तोत्रश्रेष्ठं सोऽन्वगादीत् परात्मन्॥ ७ ॥

परात्मन्! तब ग्राहजनित पीडासे जिसके पूर्वजन्मके ज्ञान और भक्तिकी अभिव्यक्ति हो गयी थी वह गजेन्द्र सूँडमें लेकर ऊपर उठाये हुए कमलोंद्वारा आपकी अर्चना करता हुआ जन्मान्तरमें अभ्यस्त हुए निर्गुण-ब्रह्म-विषयक उत्तम स्तोत्रका पाठ करने लगा॥ ७॥

श्रुत्वा स्तोत्रं निर्गुणस्थं समस्तं
ब्रह्मेशाद्यैर्नाहमित्यप्रयाते ।
सर्वात्मा त्वं भूरिकारुण्यवेगात्
ताक्ष्र्यारूढः प्रेक्षितोऽभूः पुरस्तात्॥ ८ ॥

निर्गुण-ब्रह्मविषयक उस समस्त स्तोत्रको सुनकर ब्रह्मा और शंकर आदि देवगण 'मैं नहीं हूँ' अर्थात् इसने मेरा स्तवन नहीं किया है, इसलिये वहाँ नहीं गये। तब सर्वव्यापी आप अतिशय करुणाके वेगसे गरुडपर आरूढ हो उसके सामने प्रकट हो गये॥ ८॥

हस्तीन्द्रं तं हस्तपद्मेन धृत्वा
चक्रेण त्वं नक्रवर्यं व्यदारीः।
गन्धर्वेऽस्मिन् मुक्तशापे स हस्ती
त्वत्सारूप्यं प्राप्य देदीप्यते स्म॥ ९ ॥

तब आपने अपने करकमलसे उस गजेन्द्रको पकड़कर चक्रद्वारा ग्राहश्रेष्ठको विदीर्ण कर दिया। इससे वह गन्धर्व शापमुक्त हो गया और वह हस्ती आपका सारूप्य प्राप्त करके उद्दीप्त हो उठा॥ ९॥

एतद्वृत्तं त्वां च मां च प्रगे यो
गायेत्सोऽयं भूयसे श्रेयसे स्यात्।
इत्युक्त्वैनं तेन सार्द्धं गतस्त्वं
धिष्ण्यं विष्णो पाहि वातालयेश॥ १०॥

'जो मनुष्य प्रातःकाल इस गजेन्द्रमोक्षरूप वृत्तान्तका और तुम्हारा तथा मेरा गान करेगा, उसका महान् मङ्गल होगा।' विष्णो! गजेन्द्रसे ऐसा कहकर उसके साथ आप वैकुण्ठको चले गये। वातालयेश! मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति गजेन्द्रमोक्षवर्णनं षड्विंशतितमदशकं समाप्तम्॥

सप्तविंशतितमदशकम्

अमृत-मन्थन

दुर्वासाः सुरवनिताप्तदिव्यमाल्यं
शक्राय स्वयमुपदाय तत्र भूयः।
नागेन्द्रप्रतिमृदिते शशाप शक्रं
का क्षान्तिस्त्वदितरदेवतांशजानाम्॥ १॥

एक बार महर्षि दुर्वासाने देवाङ्गनाके हाथसे प्राप्त हुए दिव्यमाल्यको स्वयं ले जाकर (ऐरावतपर चढ़कर जाते हुए) इन्द्रको प्रदान किया। (परंतु इन्द्रने उसे ऐरावतके मस्तकपर डाल दिया) पुनः जब उस दिव्य मालाको गजराज ऐरावतने कुचल डाला, तब महर्षिने इन्द्रको शाप दे दिया। भगवन्! भला, आपसे भिन्न देवोंके अंशसे उत्पन्न हुए लोगोंमें क्या क्षमा-भाव है?॥ १॥

शापेन प्रथितजरेऽथ निर्जरेन्द्रे
देवेष्वप्यसुरजितेषु निष्प्रभेषु।
शर्वाद्याः कमलजमेत्य सर्वदेवा
निर्वाणप्रभव समं भवन्तमापुः॥ २॥

मोक्षप्राप्तिके स्थानभूत भगवन्! जब शापके प्रभावसे देवराज इन्द्र शक्तिहीन हो गये और देवता भी असुरोंसे पराजित होकर निस्तेज हो गये, तब शिव आदि समस्त देवता ब्रह्माके पास गये और उन्हें साथ लेकर आपके निकट पहुँचे॥ २॥

ब्रह्माद्यैः स्तुतमहिमा चिरं तदानीं
प्रादुष्षन् वरद पुरः परेण धाम्ना।
हे देवा दितिजकुलैर्विधाय संधिं
पीयूषं परिमथतेति पर्यशास्त्वम्॥ ३॥

उस समय ब्रह्मा आदि देवगण चिरकालतक आपकी महिमाका स्तवन करते रहे। तब आपने अपने परम ऐश्वर्यशाली रूपसे उनके समक्ष प्रकट होकर उन्हें यों आदेश दिया—'हे देवगण! तुमलोग दैत्योंके साथ संधि करके अमृतके लिये समुद्र-मन्थन करो'॥ ३॥

संधानं कृतवति दानवैः सुरौघे
मन्थानं नयति मदेन मन्दराद्रिम्।
भ्रष्टेऽस्मिन् बदरमिवोद्वहन् खगेन्द्रे
सद्यस्त्वं विनिहितवान् पयःपयोधौ॥ ४॥

तब देवताओंने दानवोंके साथ संधि कर ली। तत्पश्चात् वे अभिमानपूर्वक मन्थनके साधनभूत मन्दराचलको उठाकर ले चले। जब मन्दराचल (अधिक भारी होनेके कारण देवासुरोंके हाथसे छूटकर) गिर पड़ा तब आपने तुरंत ही उसे बेरके सदृश उठाकर गरुडपर रख लिया और लाकर क्षीरसमुद्रमें डाल दिया॥ ४॥

आधाय द्रुतमथ वासुकिं वरत्रां
पाथोधौ विनिहितसर्वबीजजाले।
प्रारब्धे मथनविधौ सुरासुरैस्तै-
र्व्याजात्त्वं भुजगमुखेऽकरोः सुरारीन्॥ ५॥

तदनन्तर शीघ्र ही उन देवासुरोंने वासुकि नागको नेती बनाकर सम्पूर्ण बीजसमूहोंसे परिपूर्ण समुद्रका मन्थन आरम्भ किया। उस समय आपने किसी बहानेसे असुरोंको वासुकि नागके मुखकी ओर लगा दिया॥ ५॥

क्षुब्धाद्रौ क्षुभितजलोदरे तदानीं
दुग्धाब्धौ गुरुतरभारतो निमग्ने।
देवेषु व्यथिततमेषु तत्प्रियैषी
प्राणैषीः कमठतनुं कठोरपृष्ठाम्॥ ६॥

मन्दराचलके घूमनेसे समुद्रका भीतरी भाग क्षुब्ध हो उठा। उस समय भारी भारके कारण वह पर्वत क्षीरसागरमें डूब गया। तब देवताओंको अतिशय व्यथित देखकर उनके हितैषी आपने कठोर पीठवाली कच्छप-मूर्ति धारण की॥ ६॥

वज्रातिस्थिरतरकर्परेण विष्णो
विस्तारात्परिगतलक्षयोजनेन।
अम्भोधेः कुहरगतेन वर्ष्मणा त्वं
निर्मग्नं क्षितिधरनाथमुन्निनेथ॥ ७॥

विष्णो! आपकी उस मूर्तिका पृष्ठभाग वज्रसे भी बढ़कर कठोर था तथा विस्तारमें वह मूर्ति एक लाख योजनमें व्याप्त थी। अपनी उस कच्छप-मूर्तिसे क्षीरसागरके अन्तस्तलमें पहुँचकर आपने डूबे हुए पर्वतराज मन्दराचलको ऊपर उठा लिया॥ ७॥

उन्मग्ने झटिति तदा धराधरेन्द्रे
निर्मेथुर्दृढमिह सम्मदेन सर्वे।
आविश्य द्वितयगणेऽपि सर्पराजे
वैवश्यं परिशमयन्नवीवृधस्तान्॥ ८॥

तब पर्वतराजके ऊपर निकल आनेपर तुरंत ही सब लोग गर्वयुक्त हो दृढतापूर्वक मन्थन करने लगे। उस समय आप दोनों देवगण तथा असुरगणमें और सर्पराज वासुकिमें भी सूक्ष्मरूपसे प्रवेश करके उनकी विवशता (थकावट)-को शान्त करते हुए उन्हें बल-वीर्यसे सम्पन्न करते रहे॥ ८॥

उद्दामभ्रमणजवोन्नमद्गिरीन्द्र-
न्यस्तैकस्थिरतरहस्तपङ्कजं त्वाम्।
अभ्रान्ते विधिगिरिशादयः प्रमोदा-
दुद्भ्रान्ता नुनुवुरुपात्तपुष्पवर्षाः॥ ९॥

अतिशय वेगपूर्वक भ्रमण करनेसे ऊपर उछलते हुए पर्वतराजपर आपने अपना एक सुदृढ़ हस्तकमल स्थापित कर रखा था। उस समय मेघमार्गमें स्थित ब्रह्मा-शिव आदि देव हर्षसे उद्भ्रान्त हो पुष्पवृष्टि करते हुए आपका स्तवन कर रहे थे॥ ९॥

दैत्यौघे भुजगमुखानिलेन तप्ते
तेनैव त्रिदशकुलेऽपि किञ्चिदार्ते।
कारुण्यात्तव किल देव वारिवाहाः
प्रावर्षन्नमरगणान्न दैत्यसङ्घान्॥ १०॥

देव! जब वासुकिनागके मुखसे निकले हुए श्वाससे दैत्यसमुदाय संतप्त हो उठा और उसीसे देवगण भी कुछ पीडित हो गया, तब आपकी कृपासे मेघोंने जलकी वृष्टि की; वह वृष्टि देवगणोंपर ही हुई, असुरसमूहोंपर नहीं॥ १०॥

उद्भ्राम्यद्बहुतिमिनक्रचक्रवाले
तत्राब्धौ चिरमथितेऽपि निर्विकारे।
एकस्त्वं करयुगकृष्टसर्पराजः
संराजन् पवनपुरेश पाहि रोगात्॥ ११॥

उछलते हुए बहुत-से तिमि नामक महामत्स्यों तथा ग्राह-समूहोंसे व्याप्त उस समुद्रमें मन्दराचलसे चिरकालतक मथे जानेपर भी जब कोई विकार लक्षित नहीं हुआ, तब अकेले आप अपने दोनों हाथोंसे सर्पराजको खींचते हुए सुशोभित हुए। पवनपुरेश! रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति अमृतमथने कूर्मावतारवर्णनं सप्तविंशतितमदशकं समाप्तम्॥

अष्टाविंशतितमदशकम्

अमृत-मन्थन

गरलं तरलानलं पुरस्ताज्जलधेरुद्विजगाल कालकूटम्।
अमरस्तुतिवादमोदनिघ्नो गिरिशस्तन्निपपौ भवत्प्रियार्थम्॥ १ ॥

तदनन्तर कालकूट नामका विष, जो तरल अनल ही था, सबके सामने समुद्रसे बाहर निकला। तब देवोंके स्तुतिवादकी प्रसन्नतासे वशीभूत हुए शिवजी आपका प्रिय करनेके लिये उसे पी गये॥ १॥

विमथत्सु सुरासुरेषु जाता सुरभिस्तामृषिषु न्यधास्त्रिधामन्।
हयरत्नमभूदथेभरत्नं द्युतरुश्चाप्सरसः सुरेषु तानि॥ २॥

त्रिधामन्! देवासुरोंके मथते रहनेपर समुद्रसे सुरभि प्रादुर्भूत हुई, उसे आपने ऋषियोंको दे डाला। तत्पश्चात् अश्वरत्न, [उच्चैःश्रवा निकला, जिसे बलिने ले लिया।] फिर, गजरत्न ऐरावत, कल्पतरु और अप्सराएँ प्रकट हुईं, उन्हें आपने देवताओंको दे दिया॥ २॥

जगदीश भवत्परा तदानीं कमनीया कमला बभूव देवी।
अमलामवलोक्य यां विलोलः सकलोऽपि स्पृहयाम्बभूव लोकः॥ ३॥

जगदीश! उसी समय जिसके आप ही परम पुरुष हैं, ऐसी शोभामूर्ति लक्ष्मीदेवी निकलीं। उन अमला कमलाको देखकर सारा-का-सारा लोक चञ्चल हो उठा और उन्हें पानेकी इच्छा करने लगा॥ ३॥

त्वयि दत्तहृदे तदैव देव्यै त्रिदशेन्द्रो मणिपीठिकां व्यतारीत्।
सकलोपहृताभिषेचनीयैर्ऋषयस्तां श्रुतिगीर्भिरभ्यषिञ्चन्॥ ४॥

परंतु जब यह स्पष्ट हो गया कि लक्ष्मीने आपको ही अपना हृदय समर्पित कर दिया है, तब तुरंत ही देवराज इन्द्रने उन्हें बैठनेके लिये मणिपीठिका आगे बढ़ा दी और सबके द्वारा लायी हुई अभिषेक-सामग्रियोंसे ऋषियोंने मन्त्रोच्चारणपूर्वक उनका अभिषेक किया॥ ४॥

अभिषेकजलानुपातिमुग्धत्वदपाङ्गैरवभूषिताङ्गवल्लीम्।
मणिकुण्डलपीतचेलहारप्रमुखैस्तामरादयोऽन्वभूषन्॥ ५॥

अभिषेक-जलके साथ-ही-साथ पड़ते हुए आपके मनोहर कटाक्षोंसे जिनकी अङ्गवल्ली विभूषित हो रही थी, उन महालक्ष्मीको देवताओंने मणिनिर्मित कुण्डल, पीताम्बर और हार आदि आभूषणोंसे अलंकृत किया॥ ५॥

वरणस्त्रजमात्तभृङ्गनादां दधती सा कुचकुम्भमन्दयाना।
पदशिञ्जितमञ्जुनूपुरा त्वां कलितव्रीडविलासमाससाद॥ ६॥

जो कुचकलशोंके भारसे मन्दगतिसे चल रही थीं,चलते समय जिनके पैरोंसे सुन्दर पायजेबकी झनकार हो रही थी, वे महालक्ष्मी

भ्रमरोंके गुंजारवसे व्याप्त वरणमाला हाथमें लिये लाजभरे लीला-विलासके साथ आपके निकट आयीं॥ ६॥

गिरिशद्रुहिणादिसर्वदेवान् गुणभाजोऽप्यविमुक्तदोषलेशान्।
अवमृश्य सदैव सर्वरम्ये निहिता त्वय्यनयापि दिव्यमाला॥ ७॥

यद्यपि शंकर-ब्रह्मा आदि समस्त देवता सद्गुणशाली हैं, तथापि वे कुछ-न-कुछ दोषलेशसे युक्त अवश्य हैं—यों विचारकर सदैव सर्व-रमणीय आपके गलेमें लक्ष्मीने वह दिव्यमाला डाल दी॥ ७॥

उरसा तरसा ममानिथैनां भुवनानां जननीमनन्यभावाम्।
त्वदुरोविलसत्तदीक्षणश्रीपरिवृष्ट्या परिपुष्टमास विश्वम्॥ ८॥

तब आपने शीघ्र ही उन अनन्यभावा जगज्जननी लक्ष्मीको अपने वक्षःस्थलपर धारण कर लिया। आपके वक्षःस्थलपर सुशोभित होती हुई लक्ष्मीके कृपा-कटाक्षकी शोभा-वृष्टिसे जगत् परिपुष्ट—सकल सम्पत्तियोंसे समृद्ध हो गया॥ ८॥

अतिमोहनविभ्रमा तदानीं मदयन्ती खलु वारुणी निरागात्।
तमसः पदवीमदास्त्वमेनामतिसम्माननया महासुरेभ्यः॥ ९॥

उसी समय परम मनोहर विभ्रम-विलासशालिनी वारुणी-देवी सबको उन्मत्त बनाती हुई निकलीं। आपने अज्ञानकी हेतुभूता उन वारुणीको अत्यन्त सम्मानके साथ महासुरोंको दे दिया॥ ९॥

तरुणाम्बुदसुन्दरस्तदा त्वं ननु धन्वन्तरिरुत्थितोऽम्बुराशेः।
अमृतं कलशे वहन् कराभ्यामखिलार्तिं हर मारुतालयेश॥ १०॥

तत्पश्चात् आप धन्वन्तरि-रूपमें समुद्रसे प्रकट हुए। आपका स्वरूप सजल जलधरके सदृश परम मनोहर था और आप अपने दोनों हाथोंमें अमृत-कलश लिये हुए थे। मारुतालयेश! मेरी सारी पीडाओंको हर लीजिये॥ १०॥

॥ इति अमृतमथने कालकूटोत्पत्तिवर्णनं लक्ष्मीस्वयंवरवर्णनम्
अमृतोत्पत्तिवर्णनं च अष्टाविंशतितमदशकं समाप्तम्॥

एकोनत्रिंशत्तमदशकम्

मोहिनी-अवतारका वर्णन

उद्गच्छतस्तव करादमृतं हरत्सु
दैत्येषु तानशरणाननुनीय देवान्।
सद्यस्तिरोदधिथ देव भवत्प्रभावा-
दुद्यत्स्वयूथ्यकलहा दितिजा बभूवुः॥ १॥

देव! प्रकट होते ही आपके हाथसे जब दैत्य उन अनन्यशरण देवताओंको पीछे ढकेलकर अमृत-कलश छीनने लगे तब तत्काल आप अदृश्य हो गये। उस समय आपके प्रभावसे उन दैत्योंमें परस्पर विवाद उठ खड़ा हुआ॥ १॥

श्यामां रुचापि वयसापि तनुं तदानीं
प्राप्तोऽसि तुङ्गकुचमण्डलभङ्गुरां त्वम्।
पीयूषकुम्भकलहं परिमुच्य सर्वे
तृष्णाकुलाः प्रतिययुस्त्वदुरोजकुम्भे॥ २॥

तब आपने एक मोहिनी स्त्रीका रूप धारण किया, वह नारी कान्तिसे तो श्यामा थी ही, अवस्थामें भी श्यामा—सोलह सालकी तरुणी थी। वह उभरे हुए स्तनोंके भारसे कुछ झुकी-सी जान पड़ती थी। उसे देखकर सभी असुर तृष्णाकुल हो गये। फिर तो वे अमृतकलशको छोड़कर आपके स्तनकलशकी ओर दौड़ पड़े॥ २॥

का त्वं मृगाक्षि विभजस्व सुधामिमामि-
त्यारूढरागविवशानभियाचतोऽमून्।
विश्वस्यते मयि कथं कुलटास्मि दैत्या
इत्यालपन्नपि सुविश्वसितानतानीः॥ ३॥

वे अतिशय मोहके वशीभूत हो गये थे, अतः आपसे याचना करते हुए बोले—'मृगनयनी! तुम कौन हो? इस अमृतको हम-लोगोंमें बाँट दो।' तब 'दैत्यो! मैं एक कुलटा स्त्री हूँ, तुमलोग मुझमें कैसे

विश्वास कर रहे हो।'—यों कहते हुए भी आपने उनमें गाढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिया॥ ३॥

मोदात् सुधाकलशमेषु ददत्सु सा त्वं
दुश्चेष्टितं मम सहध्वमिति ब्रुवाणा।
पङ्क्तिप्रभेदविनिवेशितदेवदैत्या
लीलाविलासगतिभिः समदाः सुधां ताम्॥ ४॥

तत्पश्चात् वे असुर हर्षपूर्वक जब वह अमृतकलश आपको देने लगे, तब आपने 'मेरी दुश्चेष्टाओंको तुम्हें सहना पड़ेगा'—यों कहकर देवता और असुरोंको भिन्न-भिन्न पंक्तियोंमें बैठाया और लीला-विलासपूर्ण गतिसे चलकर उस सुधाको पूर्णरूपसे देवताओंको दे दिया॥ ४॥

अस्मास्वियं प्रणयिनीत्यसुरेषु तेषु
जोषं स्थितेष्वथ समाप्य सुधां सुरेषु।
त्वं भक्तलोकवशगो निजरूपमेत्य
स्वर्भानुमर्धपरिपीतसुधं व्यलावीः॥ ५॥

'यह हमलोगोंमें अनुराग रखनेवाली है'—यों विचारकर वे असुर चुपचाप बैठे रहे, तबतक भक्तजनोंके वशवर्ती आपने वह अमृत देवताओंमें ही समाप्त करके अपना असली रूप धारण कर लिया और जिसके गलेतक अमृत पहुँच चुका था, उस राहुके सिरको काट दिया॥ ५॥

त्वत्तः सुधाहरणयोग्यफलं परेषु
दत्त्वा गते त्वयि सुरैः खलु ते व्यगृह्णन्।
घोरेऽथ मूर्च्छति रणे बलिदैत्यमाया-
व्यामोहिते सुरगणे त्वमिहाविरासीः॥ ६॥

आपके पाससे अमृतका अपहरण करनेके योग्य जो व्यर्थ परिश्रमरूप फल था, उसे असुरोंको देकर जब आप अन्तर्धान हो गये, तब उन असुरोंने देवोंके साथ युद्ध ठान दिया। तत्पश्चात् उस बढ़ते हुए घोर संग्राममें जब दैत्यराज बलिकी आसुरी मायासे सुर-समुदाय विमोहित हो गया, तब आप वहाँ प्रकट हो गये॥ ६॥

त्वं कालनेमिमथ मालिमुखान् जघन्थ
शक्रो जघान बलिजम्भबलान् सपाकान्।
शुष्कार्द्रदुष्करवधे नमुचौ च लूने
फेनेन नारदगिरा न्यरुणो रणं तम्॥ ७॥

उस युद्धमें आपने कालनेमि, माली, सुमाली और माल्यवान्का संहार किया तथा इन्द्रने बलि, जम्भ, बल और पाकको मौतके घाट उतारा। पुनः जिसका वध सूखे एवं गीले पदार्थसे दुष्कर था, उस नमुचिका सिर समुद्र-फेनसे उतार लिया। तब नारदजीके कहनेसे आपने उस युद्धको बंद कर दिया॥ ७॥

योषावपुर्दनुजमोहनमाहितं ते
श्रुत्वा विलोकनकुतूहलवान् महेशः।
भूतैः समं गिरिजया च गतः पदं ते
स्तुत्वाब्रवीदभिमतं त्वमथो तिरोधाः॥ ८॥

आपने दैत्योंको मोहमें डालनेवाला स्त्रीरूप धारण किया था—यह सुनकर उसे देखनेकी अभिलाषासे शिवजी भूतगणों तथा पार्वतीके साथ आपके वासस्थान वैकुण्ठको गये। वहाँ आपका स्तवन करके उन्होंने अपना मनोरथ कह सुनाया। तब आप अन्तर्धान हो गये॥ ८॥

आरामसीमनि च कन्दुकघातलीला-
लोलायमाननयनां कमनीं मनोज्ञाम्।
त्वामेष वीक्ष्य विगलद्वसनां मनोभू-
वेगादनङ्गरिपुरङ्ग समालिलिङ्ग॥ ९ ॥

अङ्ग! तत्पश्चात् आप मनोमोहिनी स्त्रीके रूपमें प्रकट हुए। वह सुन्दरी उपवनके प्रान्तभागमें गेंद उछाल रही थी, जिससे उसके नेत्र चञ्चल हो रहे थे। वायुके वेगसे उसकी साड़ी खिसक गयी थी। उसे देखकर कामदेवके शत्रु शिवजीने मनोजके वेगसे स्त्री-रूपधारी आपको कसकर छातीसे चिपटा लिया॥ ९॥

भूयोऽपि विद्रुतवतीमुपधाव्य देवो
वीर्यप्रमोक्षविकसत्परमार्थबोधः ।

त्वन्मानितस्तव महत्त्वमुवाच देव्यै
तत्तादृशस्त्वमव वातनिकेतनाथ॥ १०॥

परंतु मोहिनी पुनः अपनेको छुड़ाकर भाग चली। तब महादेवजी भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। उस समय वीर्यके स्खलित हो जानेपर शिवजीमें परमार्थज्ञानका प्रकाश हो आया। अब आपसे सम्मानित होकर उन्होंने देवी पार्वतीसे आपकी महिमाका बखान किया। वातनिकेतनाथ! ऐसे भक्तवत्सल आप मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति विष्णुमायाप्रादुर्भावादिवर्णनम् एकोनत्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

त्रिंशत्तमदशकम्

वामन-चरित

शक्रेण संयति हतोऽपि बलिर्महात्मा
शुक्रेण जीविततनुः क्रतुवर्धितोष्मा।
विक्रान्तिमान् भयनिलीनसुरां त्रिलोकीं
चक्रे वशे स तव चक्रमुखादभीतः॥ १॥

यद्यपि समरभूमिमें इन्द्रने महात्मा बलिको मार डाला था, तथापि शुक्राचार्यने संजीविनी विद्याद्वारा उनके शरीरको जीवित कर दिया। तब उन्होंने यज्ञके अनुष्ठानद्वारा अपनी शक्तिको बढ़ाया और पराक्रम करके त्रिलोकीको अपने वशमें कर लिया। उस समय उनसे भयभीत होकर देवगण इधर-उधर जा छिपे थे। (प्रह्लाद-वंशज होनेके कारण) वे आपके सुदर्शनचक्र आदि अस्त्रोंसे निर्भय थे॥ १॥

पुत्रार्तिदर्शनवशाददितिर्विषण्णा
तं काश्यपं निजपतिं शरणं प्रपन्ना।
त्वत्पूजनं तदुदितं हि पयोव्रताख्यं
सा द्वादशाहमचरत्त्वयि भक्तिपूर्णा॥ २॥

अपने पुत्र इन्द्रको विपत्तिग्रस्त देखकर माता अदिति खेद-खिन्न हो अपने पति महर्षि कश्यपकी शरणमें गयीं। उन्होंने अदितिको पयोव्रत

नामक आपका पूजन बतलाया। तब अदितिने आपमें पूरे भक्तियोगसे दत्तचित्त होकर बारह दिनतक उस व्रतका अनुष्ठान किया॥ २॥

तस्यावधौ त्वयि निलीनमतेरमुष्याः
श्यामश्चतुर्भुजवपुः स्वयमाविरासीः।
नम्रां च तामिह भवत्तनयो भवेयं
गोप्यं मदीक्षणमिति प्रलपन्नयासीः॥ ३॥

उस पयोव्रतकी समाप्तिके अवसरपर जिसकी बुद्धि आपमें निलीन थी उस अदितिके समक्ष श्यामवर्णवाले आप स्वयं चतुर्भुजरूपमें प्रकट हुए और अपने चरणोंमें पड़ी हुई अदितिसे 'मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। तुम मेरे इस दर्शनकी बात किसीसे मत कहना।'—यों कहकर आप अन्तर्धान हो गये॥ ३॥

त्वं काश्यपे तपसि संनिदधत्तदानीं
प्राप्तोऽसि गर्भमदितेः प्रणुतो विधात्रा।
प्रासूत च प्रकटवैष्णवदिव्यरूपं
सा द्वादशीश्रवणपुण्यदिने भवन्तम्॥ ४॥

तदनन्तर आप कश्यपके तपोमय वीर्यमें आविष्ट होकर अदितिके गर्भमें जा पहुँचे। यह जानकर ब्रह्माने आपका स्तवन किया। फिर समय आनेपर अदितिने द्वादशी तिथि तथा श्रवण नक्षत्रसे युक्त पुण्य मुहूर्तमें आपको जन्म दिया। उस समय आप विष्णुसम्बन्धी दिव्यरूपमें प्रकट हुए थे॥ ४॥

पुण्याश्रमं तमभिवर्षति पुष्पवर्षै-
र्हर्षाकुले सुरगणे कृततूर्यघोषे।
बद्ध्वाञ्जलिं जय जयेति नुतः पितृभ्यां
त्वं तत्क्षणे पटुतमं वटुरूपमाधाः॥ ५॥

आपको देखकर देव-समुदाय हर्षविभोर हो उठा। वे दुन्दुभियाँ बजाते हुए उस पुण्याश्रमपर पुष्प-वृष्टि करने लगे। आपके माता-पिता भी अञ्जलि बाँधकर जय-जयकार करते हुए स्तवनमें प्रवृत्त हो गये। उसी क्षण आपने परम पटु ब्रह्मचारीका रूप धारण कर लिया॥ ५॥

तावत् प्रजापतिमुखैरुपनीय मौञ्जी-
दण्डाजिनाक्षवलयादिभिरर्च्यमानः ।
देदीप्यमानवपुरीश कृताग्निकार्य-
स्त्वं प्रास्थिथा बलिगृहं प्रकृताश्वमेधम्॥ ६॥

तब प्रजापति आदि ऋषियोंने आपका उपनयन-संस्कार करके मौञ्जी, दण्ड, कृष्णमृग-चर्म और अक्षमाला आदिसे आपको सुसज्जित कर दिया, जिससे आपका शरीर उद्भासित हो उठा। ईश! तब आप अग्निहोत्रका कार्य सम्पन्न करके जहाँ अश्वमेध-यज्ञ हो रहा था बलिकी उस यज्ञशालाकी ओर प्रस्थित हुए॥ ६॥

गात्रेण भाविमहिमोचितगौरवं प्राग्
व्यावृण्वदेव धरणीं चलयन्नयासीः।
छत्रं परोष्मतिरणार्थमिवादधानो
दण्डं च दानवजनेष्विव संनिधातुम्॥ ७॥

उस समय आप शरीरसे भावी विराट् रूपकी विशालताके अनुरूप गौरव पहलेसे ही प्रकट करते हुए-से धरणीको कँपाते हुए चल रहे थे। छत्र तो मानो आपने शत्रुओंकी गर्मीका निवारण करनेके लिये तथा दण्ड मानो दैत्यजनोंको दण्डित करनेके लिये धारण कर रखा था॥ ७॥

तां नर्मदोत्तरतटे हयमेधशाला-
मासेदुषि त्वयि रुचा तव रुद्धनेत्रैः।
भास्वान् किमेष दहनो नु सनत्कुमारो
योगी नु कोऽयमिति शुक्रमुखैः शशङ्के॥ ८॥

नर्मदाके उत्तर तटपर स्थित उस यज्ञशालामें आपके पहुँचनेपर आपकी कान्तिसे शुक्र आदि महर्षियोंके नेत्र चौंधिया गये। वे परस्पर यों अटकल लगाने लगे कि यह कौन है? क्या ये सूर्य, अग्नि अथवा योगी सनत्कुमार तो नहीं हैं?॥ ८॥

आनीतमाशु भृगुभिर्महसाभिभूतै-
स्त्वां रम्यरूपमसुरः पुलकावृताङ्गः।

भक्त्या समेत्य सुकृती परिषिच्य पादौ
तत्तोयमन्वधृत मूर्धनि तीर्थतीर्थम्॥ ९॥

तत्पश्चात् आपके तेजसे अभिभूत (हतप्रतिभ) हुए शुक्राचार्य आदि ऋषि मनोहर रूपधारी आपको शीघ्र ही बलिके पास ले गये। आपको देखते ही असुरराज बलिका शरीर पुलकित हो उठा। फिर तो उस पुण्यात्माने भक्तिपूर्वक आपके निकट जाकर आपका पाद-प्रक्षालन किया और तीर्थको भी पवित्र करनेवाले उस पादोदकको मस्तकपर धारण कर लिया॥ ९॥

प्रह्लादवंशजतया क्रतुभिर्द्विजेषु
विश्वासतो नु तदिदं दितिजोऽपि लेभे।
यत्ते पदाम्बु गिरिशस्य शिरोऽभिलाल्यं
स त्वं विभो गुरुपुरालय पालयेथाः॥ १०॥

विभो! यद्यपि बलि दैत्यकुलमें उत्पन्न हुआ था तथापि प्रह्लादका वंशज होनेके नाते या यज्ञानुष्ठानोंसे अथवा द्विजोंमें विश्वास करनेसे उसने उस पादोदकको प्राप्त कर लिया, जिसे शंकरजी बड़े लाड़से अपने मस्तकपर धारण करते हैं। गुरुपुरालय! वही आप मेरा भी पालन कीजिये॥ १०॥

॥ इति वामनावतारवर्णनं त्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

एकत्रिंशत्तमदशकम्

वामन-चरित

प्रीत्या दैत्यस्तव तनुमहःप्रेक्षणात् सर्वथापि
त्वामाराध्यन्नजित रचयन्नञ्जलिं संजगाद।
मत्तः किं ते समभिलषितं विप्रसूनो वद त्वं
वित्तं भक्तं भवनमवनिं वापि सर्वं प्रदास्ये॥ १॥

किसीसे पराजित न होनेवाले भगवन्! तत्पश्चात् आपके श्रीविग्रहके तेजको देखकर दैत्यराज बलिने प्रसन्नतापूर्वक षोडशोपचार-विधिसे

आपकी आराधना करके हाथ जोड़कर यों कहा—'ब्राह्मणकुमार! स्पष्ट बतलाइये, आप मुझसे धन, भोजन, भवन अथवा भूमि—क्या प्राप्त करना चाहते हैं? मैं आपको सब कुछ प्रदान करूँगा'॥ १॥

तामक्षीणां बलिगिरमुपाकर्ण्य कारुण्यपूर्णो-
ऽप्यस्योत्सेकं शमयितुमना दैत्यवंशं प्रशंसन्।
भूमिं पादत्रयपरिमितां प्रार्थयामासिथ त्वं
सर्वं देहीति तु निगदिते कस्य हास्यं न वा स्यात्॥ २॥

बलिकी उस अक्षीण—जगदीश्वरत्वको प्रकट करनेवाली वाणीको सुनकर करुणामूर्ति होनेपर भी आपने उसके गर्वका शमन करनेके लिये उद्यत हो दैत्यवंशकी प्रशंसा करते हुए उससे तीन पग भूमिकी याचना की; क्योंकि **'सर्वं देहि'**—'सब दो'—यह कहनेपर वह वचन किसके लिये हास्यास्पद नहीं होता? अर्थात् सभी उसकी हँसी उड़ाते, इसीसे तीन पग भूमि ही माँगी॥ २॥

विश्वेशं मां त्रिपदमिह किं याचसे बालिशस्त्वं
सर्वां भूमिं वृणु किममुनेत्यालपत्त्वां स दृप्यन्।
यस्माद्दर्पात्त्रिपदपरिपूर्त्यक्षमः क्षेपवादान्
बन्धं चासावगमदतदर्होऽपि गाढोपशान्त्यै॥ ३॥

तब बलिने बड़े दर्पसे कहा—'तुम नादान हो। अरे! मुझ जगदीश्वरसे तीन पग भूमिकी क्या याचना करते हो? सारी पृथ्वीका राज्य माँग लो! इस तीन पग भूमिसे तुम्हें क्या लाभ होगा?' परंतु गर्व करनेके कारण वह तीन पग भूमिकी पूर्ति करनेमें समर्थ न हो सका, जिससे उसे आक्षेपपूर्ण वचन तथा बन्धन दोनों सहने पड़े। यद्यपि बलि इसके योग्य नहीं था तथापि सम्यक् प्रकारसे उस गर्वकी उपशान्तिके लिये आपने वैसा किया॥ ३॥

पादत्रय्या यदि न मुदितो विष्टपैर्नापि तुष्ये-
दित्युक्तेऽस्मिन् वरद भवते दातुकामेऽथ तोयम्।
दैत्याचार्यस्तव खलु परीक्षार्थिनः प्रेरणात्तं
मा मा देयं हरिरयमिति व्यक्तमेवाबभाषे॥ ४॥

यदि पादत्रयीसे संतोष नहीं होगा तो त्रिलोकीके दानसे भी वह संतुष्ट नहीं हो सकता—यों कहे जानेपर बलिने आपको दान देनेके लिये जल हाथमें लिया। तब बलिकी धर्मस्थिरताकी परीक्षा लेनेकी इच्छावाले आपकी प्रेरणासे दैत्याचार्य शुक्रने बलिको 'अरे! ये साक्षात् विष्णु हैं, इन्हें दान मत दो, मत दो'—यों स्पष्टरूपसे मना किया॥ ४॥

याचत्येवं यदि स भगवान् पूर्णकामोऽस्मि सोऽहं
दास्याम्येव स्थिरमिति वदन् काव्यशप्तोऽपि दैत्यः।
विन्ध्यावल्या निजदयितया दत्तपाद्याय तुभ्यं
चित्रं चित्रं सकलमपि स प्रार्पयत्तोयपूर्वम्॥ ५॥

तब 'यदि ये भगवान् विष्णु हैं और इस प्रकार मुझसे याचना कर रहे हैं, तब तो मेरी सारी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं—मैं कृतार्थ हो गया। निश्चय ही इन्हें इनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा।' बलिके यों कहनेपर शुक्राचार्यने उसे शाप दे दिया। तथापि अपनी प्रियतमा पत्नी विन्ध्यावलीद्वारा आपके लिये पाद्य समर्पित किये जानेपर बलिने आपको सर्वस्व समर्पित कर दिया। यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई॥ ५॥

निस्संदेहं दितिकुलपतौ त्वय्यशेषार्पणं तद्
व्यातन्वाने मुमुचुर्ऋषयः सामराः पुष्पवर्षम्।
दिव्यं रूपं तव च तदिदं पश्यतां विश्वभाजा-
मुच्चैरुच्चैरवृधदवधीकृत्य विश्वाण्डभाण्डम्॥ ६॥

जब दैत्यराज बलिने निस्संदेह आपको सर्वस्व समर्पित कर दिया, उस समय देवोंसहित ऋषिगण उसपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। तदनन्तर विश्वके सभी प्राणियोंके देखते-देखते आपका वह दिव्य वामन-रूप ब्रह्माण्डकटाहको अवधि बनाकर ऊपर-ही-ऊपर बढ़ने लगा॥ ६॥

त्वत्पादाग्रं निजपदगतं पुण्डरीकोद्भवोऽसौ
कुण्डीतोयैरसिचदपुनाद्यज्जलं विश्वलोकान्।
हर्षोत्कर्षात् सुबहु ननृते खेचरैरुत्सवेऽस्मिन्
भेरीं निघ्नन् भुवनमचरज्जाम्बवान् भक्तिशाली॥ ७॥

बढ़ते-बढ़ते जब आपका चरण सत्यलोकमें जा पहुँचा, तब

कमलजन्मा ब्रह्माने अपने धाममें स्थित उस चरणके अग्रभागको कमण्डलुके जलसे पखार लिया। उस पादोदकने सारे लोकोंको पवित्र कर दिया। उस शुभ अवसरपर आकाशचारी हर्षातिरेकसे विभिन्न प्रकारके नृत्य करने लगे और भक्तिशाली जाम्बवान्ने भेरी-वादनपूर्वक भुवनोंमें विचरते हुए आपकी परिक्रमा कर ली॥ ७॥

तावद् दैत्यास्त्वनुमतिमृते भर्तुरारब्धयुद्धा
देवोपेतैर्भवदनुचरैः सङ्गता भङ्गमापन्।
कालात्मायं वसति पुरतो यद्वशात् प्राग्जिताः स्मः
किं वो युद्धैरिति बलिगिरा तेऽथ पातालमापुः॥ ८॥

तबतक दैत्योंने संगठित होकर अपने स्वामीकी अनुमतिके बिना ही आपके अनुचर देवताओंके साथ युद्ध छेड़ दिया, परंतु वे पराजित हो गये। तदनन्तर 'ये कालस्वरूप भगवान् विष्णु सामने खड़े हैं, जिनके कारण पूर्वमें हमलोग पराजित हुए थे; अतः इस समय तुमलोगोंको युद्धसे कोई लाभ नहीं होगा।' बलिके यों कहनेपर वे सब-के-सब पातालमें चले गये॥ ८॥

पाशैर्बद्धं पतगपतिना दैत्यमुच्चैरवादी-
स्तार्त्तीयीकं दिश मम पदं किं न विश्वेश्वरोऽसि।
पादं मूर्ध्नि प्रणय भगवन्नित्यकम्पं वदन्तं
प्रह्लादस्तं स्वयमुपगतो मानयन्नस्तवीत्त्वाम्॥ ९॥

तब पक्षिराज गरुड़ने बलिको पाशसे बाँध लिया। उस समय आपने बलिसे उच्चस्वरमें कहा—'दैत्यराज! तुम जगदीश्वर हो न? मेरे इस तृतीय पदको रखनेके लिये स्थान दो; देते क्यों नहीं?' 'भगवन्! यह चरण मेरे मस्तकपर रख दीजिये'—यों बलिके अविचलितभावसे कहनेपर स्वयं प्रह्लाद उसके निकट उपस्थित हो गये और आपका सम्मान करते हुए स्तवन करने लगे॥ ९॥

दर्पोच्छित्त्यै विहितमखिलं दैत्य सिद्धोऽसि पुण्यै-
र्लोकस्तेऽस्तु त्रिदिवविजयी वासवत्वं च पश्चात्।

मत्सायुज्यं भज च पुनरित्यन्वगृह्णा बलिं तं
विप्रैः संतानितमखवरः पाहि वातालयेश॥ १०॥

उस समय आपने बलिपर अनुग्रह करके यों कहा—'दैत्यराज! यह सब कुछ तुम्हारा दर्प दूर करनेके लिये किया गया है। तुम तो अपने पुण्यकर्मोंसे सिद्ध हो गये हो। अब तुम स्वर्गसे भी बढ़कर सुतललोकमें जाओ। इस इन्द्रके निवृत्त होनेके बाद तुम्हें इन्द्रपद भी प्राप्त होगा। उसके अनन्तर फिर तुम्हें मेरा सायुज्य प्राप्त होगा।' तत्पश्चात् विप्रोंद्वारा आपने उस यज्ञश्रेष्ठ राजसूयको पूर्ण कराया। वातालयेश! मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति बलिविध्वंसनमेकत्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

द्वात्रिंशत्तमदशकम्

मत्स्यावतारका वर्णन

पुरा हयग्रीवमहासुरेण षष्ठान्तरान्तोद्यदकाण्डकल्पे।
निद्रोन्मुखब्रह्ममुखाद्धृतेषु वेदेष्वधित्सः किल मत्स्यरूपम्॥ १॥

प्राचीन कालमें छठे चाक्षुषमन्वन्तरकी समाप्तिके समय अवान्तर प्रलयके अवसरपर जब ब्रह्माजी निद्रोन्मुख हो रहे थे, उस समय उनके मुखसे महासुर हयग्रीवने वेदोंको चुरा लिया। तब आपने (वेदोंका उद्धार करनेके लिये) मत्स्य-रूप धारण करनेकी इच्छा की॥ १॥

सत्यव्रतस्य द्रमिलाधिभर्तुर्नदीजले तर्पयतस्तदानीम्।
कराञ्जलौ संज्वलिताकृतिस्त्वमदृश्यथाः कश्चन बालमीनः॥ २॥

उसी समय द्रविड़ देशके अधिपति महाराज सत्यव्रत कृतमाला नदीके जलमें तर्पण कर रहे थे, उनके हाथकी अञ्जलिमें आप एक चमकती हुई आकृतिवाली छोटी-सी मछलीके रूपमें दिखायी पड़े॥ २॥

क्षिप्तं जले त्वां चकितं विलोक्य
निन्येऽम्बुपात्रेण मुनिः स्वगेहम्।

स्वल्पैरहोभिः कलशीं च कूपं
वापीं सरश्चानशिषे विभो त्वम्॥ ३॥

राजर्षि सत्यव्रतने आपको जलमें फेंक दिया, परंतु पुनः आपको चकित देखकर वे आपको जलपात्रमें रखकर अपने घर ले आये। विभो! वहाँ आपने थोड़े ही दिनोंमें बढ़कर क्रमशः कलश, कूप, बावड़ी तथा सरोवरको अपने शरीरसे आच्छादित कर लिया॥ ३॥

योगप्रभावाद्भवदाज्ञयैव नीतस्ततस्त्वं मुनिना पयोधिम्।
पृष्टोऽमुना कल्पदिदृक्षुमेनं सप्ताहमास्स्वेति वदन्नयासीः॥ ४॥

तदनन्तर राजर्षिने आपकी ही आज्ञासे अपने योगबलसे आपको समुद्रमें पहुँचाया। आपके पूछनेपर राजाने प्रलयार्णवके दर्शनकी इच्छा प्रकट की, तब उनसे 'सात दिनतक प्रतीक्षा करो'—यों कहकर आप अन्तर्धान हो गये॥ ४॥

प्राप्ते त्वदुक्तेऽहनि वारिधारापरिप्लुते भूमितले मुनीन्द्रः।
सप्तर्षिभिः सार्द्धमपारवारिण्युद्घूर्णमानः शरणं ययौ त्वाम्॥ ५॥

आपके द्वारा निर्धारित दिवसके प्राप्त होनेपर जब सारा पृथ्वी-तल जल-धाराओंसे परिप्लुत हो गया, तब मुनिश्रेष्ठ सत्यव्रतसप्तर्षियोंके साथ उस प्रलय-समुद्रमें सम्भ्रान्त होकर आपकीशरणमें गये॥ ५॥

धरां त्वदादेशकरीमवाप्तां नौरूपिणीमारुरुहुस्तदा ते।
तत्कम्पकम्प्रेषु च तेषु भूयस्त्वमम्बुधेराविरभूर्महीयान्॥ ६॥

तब आपकी आज्ञाका पालन करनेवाली पृथ्वी आपकी ही प्रेरणासे नौकाका रूप धारण करके वहाँ आ पहुँची। उसपर वे लोग चढ़ गये। पुनः नौकाके डगमगानेसे जब वे सभी भयभीत हो गये, तब महान् ऐश्वर्यशाली आप उस जलराशिसे प्रकट हुए॥ ६॥

झषाकृतिं योजनलक्षदीर्घां दधानमुच्चैस्तरतेजसं त्वाम्।
निरीक्ष्य तुष्टा मुनयस्त्वदुक्त्या त्वत्तुङ्गशृङ्गे तरणिं बबन्धुः॥ ७॥

उस समय आपने मत्स्य-मूर्ति धारण कर रखी थी, जो एक लाख

योजन लंबी थी। उसका तेज अत्यन्त उत्कृष्ट था। उसे धारण किये आपको देखकर मुनिगण संतुष्ट हो गये और आपके कथनानुसार उन्होंने मत्स्यके ऊँचे सींगमें नावको बाँध दिया॥ ७॥

आकृष्टनौको मुनिमण्डलाय प्रदर्शयन् विश्वजगद्विभागान्।
संस्तूयमानो नृवरेण तेन ज्ञानं परं चोपदिशन्नचारीः॥ ८ ॥

तब आप उस नावको खींचने लगे। उस समय नरश्रेष्ठ राजर्षि सत्यव्रत आपकी स्तुति कर रहे थे। तत्पश्चात् आप उस मुनिमण्डलको विश्वके विभिन्न भागोंको दिखाते हुए तथा परमज्ञान—ब्रह्मज्ञानका उपदेश देते हुए विचरण करने लगे॥ ८॥

कल्पावधौ सप्त मुनीन् पुरोवत् प्रस्थाप्य सत्यव्रतभूमिपं तम्।
वैवस्वताख्यं मनुमादधानः क्रोधाद्धयग्रीवमभिद्रुतोऽभूः॥ ९ ॥

प्रलयकालकी अवधि समाप्त होनेपर आपने सप्तर्षियोंको पूर्ववत् प्रस्थापित करके भूपाल सत्यव्रतको वैवस्वत नामक मनु बना दिया। तत्पश्चात् क्रुद्ध होकर हयग्रीवका पीछा किया॥ ९॥

स्वतुङ्गशृङ्गक्षतवक्षसं तं निपात्य दैत्यं निगमान् गृहीत्वा।
विरिञ्चये प्रीतहृदे ददानः प्रभञ्जनागारपते प्रपायाः॥ १०॥

तथा अपने ऊँचे सींगसे उस दैत्यकी छाती चीरकर उसे मार डाला और वेदोंको लेकर प्रसन्न-चित्तवाले ब्रह्माको प्रदान कर दिया। प्रभञ्जनागारपते! मेरी भी सर्वथा रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति मत्स्यावतारवर्णनं द्वात्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

नवमस्कन्धपरिच्छेदः

त्रयस्त्रिंशत्तमदशकम्

अम्बरीष-चरित

वैवस्वताख्यमनुपुत्रनभागजात-
नाभागनामकनरेन्द्रसुतोऽम्बरीषः।
सप्तार्णवावृतमहीदयितोऽपि रेमे
त्वत्सङ्गिषु त्वयि च मग्नमनाः सदैव॥ १॥

वैवस्वत मनुके पुत्र नभग हुए। नभगके पुत्र महाराज नाभाग हुए और नाभागके पुत्र अम्बरीष हुए, जो सात समुद्रोंसे घिरी हुई पृथ्वीके स्वामी अर्थात् सार्वभौम सम्राट् होकर भी सदैव आपमें तथा आपके भक्तोंमें सदा ही मन लगाये रहते थे॥ १॥

त्वत्प्रीतये सकलमेव वितन्वतोऽस्य
भक्त्यैव देव न चिरादभृथाः प्रसादम्।
येनास्य याचनमृतेऽप्यभिरक्षणार्थं
चक्रं भवान् प्रवितताार सहस्रधारम्॥ २॥

देव! अम्बरीष सारा लौकिक-वैदिक कर्म आपकी प्रसन्नताके लिये ही करते थे। उनकी भक्तिसे ही आपने शीघ्र ही उनपर कृपा की। जिससे उनके याचना न करनेपर भी आपने उनकी रक्षाके लिये उन्हें अपने सहस्र-धारवाले सुदर्शन चक्रको दे दिया था॥ २॥

स द्वादशीव्रतमथो भवदर्चनार्थं
वर्षं दधौ मधुवने यमुनोपकण्ठे।
पत्न्या समं सुमनसा महतीं वितन्वन्
पूजां द्विजेषु विसृजन् पशुषष्टिकोटिम्॥ ३॥

महाराज अम्बरीषने आपकी अर्चना करनेके लिये एक वर्षतक द्वादशीव्रत करनेका संकल्प किया। फिर तो वे यमुनाके तटपर स्थित मधुवनमें जाकर अपनी भक्तिमती पत्नीके साथ आपकी महती पूजामें लग गये। उस समय उन्होंने ब्राह्मणोंको साठ करोड़ गौएँ दान कीं॥ ३॥

तत्राथ पारणदिने भवदर्चनान्ते
दुर्वाससास्य मुनिना भवनं प्रपेदे।
भोक्तुं वृतश्च स नृपेण परार्तिशीलो
मन्दं जगाम यमुनां नियमान् विधास्यन्॥ ४॥

तत्पश्चात् आपकी आराधनाकी समाप्तिके अवसरपर पारणके दिन मुनिवर दुर्वासा राजाके महलमें पधारे। राजाने उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया। तब पर-पीड़ामें निरत रहनेवाले दुर्वासा अपनी नित्यक्रिया सम्पन्न करनेके लिये धीरेसे यमुना-तटपर गये॥ ४॥

राज्ञाऽथ पारणमुहूर्तसमाप्तिखेदाद्
वारैव पारणमकारि भवत्परेण।
प्राप्तो मुनिस्तदथ दिव्यदृशा विजानन्
क्षिप्यन्क्रुधोद्धृतजटो विततान कृत्याम्॥ ५॥

इधर पारणका मुहूर्त समाप्त हो रहा था, उसके लिये खेदके कारण आपकी उपासनामें तत्पर रहनेवाले महाराज अम्बरीषने जलसे ही पारण कर लिया। इसके बाद दुर्वासा मुनि वापस लौटे। उन्होंने दिव्यदृष्टिसे यह ज्ञात कर लिया कि राजाने पारण कर लिया है। तब तो वे क्रोधसे जल-भुन उठे और राजाको झिड़कते हुए उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ी और उससे कृत्या उत्पन्न की॥ ५॥

कृत्यां च तामसिधरां भुवनं दहन्ती-
मग्रेऽभिवीक्ष्य नृपतिर्न पदाच्चकम्पे।
त्वद्भक्तबाधमभिवीक्ष्य सुदर्शनं ते
कृत्यानलं शलभयन् मुनिमन्वधावीत्॥ ६॥

वह कृत्या हाथमें खड्ग लिये हुए त्रिलोकीको संतप्त कर रही थी। उसे अपने आगे उपस्थित देखकर राजा अपने स्थानसे विचलित नहीं हुए। तब आपके भक्तको संकटग्रस्त देखकर आपके सुदर्शनचक्रने उस कृत्याको आगमें पड़े हुए पतिंगेकी तरह भस्म करके मुनिका पीछा किया॥ ६॥

धावन्नशेषभुवनेषु भिया स पश्यन्
विश्वत्र चक्रमपि ते गतवान् विरिञ्चम्।
कः कालचक्रमतिलङ्घयतीत्यपास्तः
शर्वं ययौ स च भवन्तमवन्दतैव॥ ७॥

मुनि दुर्वासा भयभीत होकर समस्त भुवनोंमें भागते फिरे, परंतु उन्हें सर्वत्र आपका चक्र पीछे लगा हुआ दिखायी पड़ा। तब वे रक्षार्थ ब्रह्माके पास गये। वहाँ 'भला, इस कालचक्रका अतिक्रमण कौन कर सकता है?'—यों कहकर निराश लौटाये जानेपर वे भगवान् शंकरकी शरणमें गये; किंतु शिवजीने भी आपकी वन्दना ही की॥ ७॥

भूयो भवन्निलयमेत्य मुनिं नमन्तं
प्रोचे भवानहमृषे ननु भक्तदासः।
ज्ञानं तपश्च विनयान्वितमेव मान्यं
याह्यम्बरीषपदमेव भजेति भूमन्॥ ८॥

भूमन्! फिर, दुर्वासा वैकुण्ठमें पहुँचकर आपके चरणोंमें जा गिरे। उन्हें प्रणिपात करते देखकर आपने उनसे यों कहा—'ऋषे! मैं तो भक्तोंका ही दास हूँ। ज्ञान और तप विनययुक्त होनेपर ही आदरणीय होते हैं; अतः आप जाइये, अम्बरीषकी ही शरण ग्रहण कीजिये'॥ ८॥

तावत्समेत्य मुनिना स गृहीतपादो
राजापसृत्य भवदस्त्रमसावतौषीत्।
चक्रे गते मुनिरदादखिलाशिषोऽस्मै
त्वद्भक्तिमागसि कृतेऽपि कृपां च शंसन्॥ ९॥

ऐसा कहे जानेपर मुनिने अम्बरीषके पास जाकर उनके चरण पकड़ लिये। (चरणस्पर्शसे लज्जित होकर) राजा पीछे हट गये और आपके अस्त्र सुदर्शनचक्रकी स्तुति करने लगे। जब चक्र शान्त होकर लौट गया, तब दुर्वासा मुनिने अपराध करनेपर भी अपने ऊपर जो अम्बरीषकी कृपा हुई, उसकी तथा उनकी भगवद्भक्तिकी प्रशंसा करते हुए उन्हें सब प्रकारका आशीर्वाद—वर प्रदान किया॥ ९॥

राजा प्रतीक्ष्य मुनिमेकसमामनाश्वान्
सम्भोज्य साधु तमृषिं विसृजन् प्रसन्नम्।
भुक्त्वा स्वयं त्वयि ततोऽपि दृढं रतोऽभूत्
सायुज्यमाप च स मां पवनेश पायाः॥ १०॥

राजा अम्बरीष एक वर्षतक निराहार रहकर मुनिकी प्रतीक्षा करते रहे। आज उन्होंने महर्षि दुर्वासाको भलीभाँति भोजन कराकर उन्हें प्रसन्न करके विदा किया। तत्पश्चात् स्वयं भोजन किया। तबसे वे आपमें पहलेसे भी अधिक निरत रहने लगे। अन्तमें उन्हें सायुज्य-मुक्तिकी प्राप्ति हुई। पवनेश! मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति अम्बरीषोपाख्यानं त्रयस्त्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

चतुस्त्रिंशत्तमदशकम्

श्रीराम-चरित

गीर्वाणैरर्थ्यमानो दशमुखनिधनं कोसलेष्वृष्यशृङ्गे
पुत्रीयामिष्टिमिष्ट्वा ददुषि दशरथक्ष्माभृते पायसाग्र्यम्।
तद्भुक्त्या तत्पुरन्ध्रीष्वपि तिसृषु समं जातगर्भासु जातो
रामस्त्वं लक्ष्मणेन स्वयमथ भरतेनापि शत्रुघ्ननाम्ना॥ १॥

देवताओंने दशमुख रावणका वध करनेके लिये आपसे प्रार्थना की। तब (आपकी अन्तःप्रेरणासे) महर्षि ऋष्यशृङ्ग कोसलदेशमें गये। उन्होंने भूपाल दशरथसे पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान कराकर उन्हें (अग्निप्रदत्त) श्रेष्ठ पायस प्रदान किया। उस पायसका भक्षण करनेसे राजाकी तीन महारानियाँ (कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी) एक साथ ही गर्भवती हुईं। उनके गर्भसे स्वयं आपने राम-रूपसे लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ अवतार लिया॥ १॥

कोदण्डी कौशिकस्य क्रतुवरमवितुं लक्ष्मणेनानुयातो
यातोऽभूस्तातवाचा मुनिकथितमनुद्वन्द्वशान्ताध्वखेदः।

नृणां त्राणाय बाणैर्मुनिवचनबलात्ताटकां पाटयित्वा
लब्ध्वास्मादस्त्रजालं मुनिवनमगमो देव सिद्धाश्रमाख्यम्॥ २॥

देव! बचपनमें ही आप पिताकी आज्ञासे महर्षि विश्वामित्रके श्रेष्ठ यज्ञकी रक्षा करनेके लिये धनुष धारण कर लक्ष्मणके साथ प्रस्थित हुए। मार्गमें मुनिद्वारा उपदेश किये गये दो मन्त्रों—बला और अतिबला नामक दो विद्याओंके प्रभावसे आपका सारा मार्गश्रम शान्त हो गया। आपने मुनिके आदेशसे मनुष्योंकी रक्षा करनेके लिये बाणोंद्वारा ताटकाकी देह चीर डाली। तब विश्वामित्रजीने आपको बहुत-से अस्त्र प्रदान किये। उन्हें ग्रहण करके आप मुनिके सिद्धाश्रम नामक तपोवनमें पहुँचे॥ २॥

मारीचं द्रावयित्वा मखशिरसि शरैरन्यरक्षांसि निघ्नन्
कल्यां कुर्वन्नहल्यां पथि पदरजसा प्राप्य वैदेहगेहम्।
भिन्दानश्चान्द्रचूडं धनुरवनिसुतामिन्दिरामेव लब्ध्वा
राज्यं प्रातिष्ठथास्त्वं त्रिभिरपि च समं भ्रातृवीरैः सदारैः॥ ३॥

वहाँ यज्ञमण्डपके द्वारपर स्थित होकर बाणोंद्वारा मारीचको खदेड़कर (उड़ाकर) अन्य राक्षसोंका संहार किया। पुनः मार्गमें अपनी चरण-धूलिसे अहल्याको स्वस्थ (शापरहित) करते हुए विदेहकी राजधानीमें जा पहुँचे। वहाँ शिवजीके पिनाकको तोड़कर लक्ष्मीस्वरूपिणी धरणिसुता सीताको प्राप्त करके अपने तीनों सपत्नीक वीर भाइयोंके साथ आप अपने राज्य कोसलको प्रस्थित हुए॥ ३॥

आरुन्धाने रुषान्धे भृगुकुलतिलके संक्रमय्य स्वतेजो
याते यातोऽस्ययोध्यां सुखमिह निवसन् कान्तया कान्तमूर्ते।
शत्रुघ्नेनैकदाथो गतवति भरते मातुलस्याधिवासं
तातारब्धोऽभिषेकस्तव किल विहतः केकयाधीशपुत्र्या॥ ४॥

मार्गमें भृगुकुलतिलक परशुरामजी क्रोधान्ध होकर आपसे उलझ पड़े, परंतु अन्तमें वे अपना वैष्णवतेज आपमें संस्थापित करके चले गये। कान्तमूर्ते! तब आप अयोध्याको गये और वहाँ प्रियतमा सीताके साथ सुखपूर्वक निवास करने लगे। तदनन्तर एक समय जब कि भरत शत्रुघ्नके साथ अपने मामाके घर गये हुए थे, पिता दशरथजीने

आपका अभिषेक-कार्य आरम्भ किया,परंतु केकयराजकुमारी कैकेयीने उसमें विघ्न डाल दिया॥ ४॥

तातोक्त्या यातुकामो वनमनुजवधूसंयुतश्चापधारः
पौरानारुध्य मार्गे गुहनिलयगतस्त्वं जटाचीरधारी।
नावा संतीर्य गङ्गामधिपदवि पुनस्तं भरद्वाजमारा-
न्नत्वा तद्वाक्यहेतोरतिसुखमवसश्चित्रकूटे गिरीन्द्रे॥ ५॥

तब पिताके आदेशसे आप भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीताके साथ धनुष धारण करके वनमें जानेको प्रस्थित हुए। मार्गमें (साथ चलते हुए) पुरवासियोंको रोककर निषादराज गुहके घर पहुँचे। वहाँ जटा-चीरधारी होकर आपने नावसे गङ्गा पार करके मार्गमें महर्षि भरद्वाजके निकट जाकर उन्हें नमस्कार किया और उनके कथनानुसार आप गिरिराज चित्रकूटपर अतिशय सुखपूर्वक निवास करने लगे॥ ५॥

श्रुत्वा पुत्रार्तिखिन्नं खलु भरतमुखात् स्वर्गयातं स्वतातं
तप्तो दत्त्वाम्बु तस्मै निदधिथ भरते पादुकां मेदिनीं च।
अत्रिं नत्वाथ गत्वा वनमतिविपुलं दण्डकं चण्डकायं
हत्वा दैत्यं विराधं सुगतिमकलयश्चारु भो शारभङ्गीम्॥ ६॥

वहाँ भरतके मुखसे अपने पिता दशरथजीको पुत्र-विरहसे खिन्न होकर स्वर्ग गया हुआ अर्थात् मृत्युको प्राप्त हुआ सुनकर आप दुःखाभिभूत हो गये। तब उन्हें तिलाञ्जलि देकर अपनी चरण-पादुका तथा पृथ्वी भरतको सौंप दी। तदनन्तर अत्रिमुनिको नमस्कार करके अत्यन्त विस्तृत दण्डकारण्यमें चले गये। वहाँ प्रचण्ड शरीरवाले दैत्य विराधको मारकर शरभङ्ग मुनिको सुगति अर्थात् मुक्ति प्रदान की॥ ६॥

नत्वाऽगस्त्यं समस्ताशरनिकरसपत्राकृतिं तापसेभ्यः
प्रत्यश्रौषीः प्रियैषी तदनु च मुनिना वैष्णवे दिव्यचापे।
ब्रह्मास्त्रे चापि दत्ते पथि पितृसुहृदं वीक्ष्य भूयो जटायुं
मोदाद् गोदातटान्ते परिरमसि पुरा पञ्चवट्यां वधूट्या॥ ७॥

पुनः महर्षि अगस्त्यको नमस्कार करके तापसोंका प्रिय करनेकी इच्छासे आपने उनसे सारे राक्षस-समुदायके वधकी प्रतिज्ञा की।

तत्पश्चात् मुनिवर अगस्त्यने आपको दिव्य वैष्णव धनुष तथा ब्रह्मास्त्र प्रदान किया। आगे बढ़नेपर मार्गमें आपको अपने पिताके मित्र जटायुका दर्शन हुआ। तब गोदावरीके तटपर स्थित पञ्चवटीमें आप पत्नीसहित हर्षपूर्वक निवास करने लगे॥ ७॥

प्राप्तायाः शूर्पणख्या मदनचलधृतेरर्थनैर्निस्सहात्मा
तां सौमित्रौ विसृज्य प्रबलतमरुषा तेन निर्लूननासाम्।
दृष्ट्वैनां रुष्टचित्तं खरमभिपतितं दूषणं च त्रिमूर्द्धं
व्याहिंसीराशरानप्ययुतसमधिकांस्तत्क्षणादक्षतोष्मा ॥ ८॥

एक दिन वहाँ शूर्पणखा नामकी राक्षसी जा पहुँची। (आपको देखकर) कामदेवके वशीभूत होनेसे उसका धैर्य छूट गया। उसने आपसे प्रार्थना की, परंतु उसे सहन न करके आपने शूर्पणखाको सुमित्राकुमार लक्ष्मणके पास भेज दिया। लक्ष्मणने अतिशय क्रुद्ध होकर उसकी नाक काट ली (तब वह अपने भ्राता खरके पास पहुँची।)। शूर्पणखाकी वह दुर्दशा देखकर रुष्टचित्त खर, दूषण और त्रिशिरा आपपर टूट पड़े। तब आपने उन्हें उसी क्षण दस हजारसे भी अधिक राक्षसोंसहित मृत्युके हवाले कर दिया, परंतु आपके उत्साह और तेजको कोई क्षति नहीं पहुँची॥ ८॥

सोदर्या प्रोक्तवार्ताविवशदशमुखादिष्टमारीचमाया-
सारङ्गं सारसाक्ष्या स्पृहितमनुगतः प्रावधीर्बाणघातम्।
तन्मायाक्रन्दनिर्यापितभवदनुजां रावणस्तामहार्षी-
त्तेनार्तोऽपि त्वमन्तः किमपि मुदमधास्तद्वधोपायलाभात्॥ ९ ॥

अपनी सहोदरा शूर्पणखाद्वारा बताये गये वृत्तान्तसे विवश हुए रावणके आदेशसे मारीच मायामृग बनकर सीताके सामने गया। उसे देखकर सारसके-से नेत्रवाली सीताने उसे प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। तब उसका पीछा करते हुए आपने उसपर एक बाणद्वारा चोट की। मरते समय उसकी कपटभरी पुकार सुनकर जिसने आपके अनुज लक्ष्मणको भेज दिया था, उस सीताको रावण हर ले गया। तब

सीता-विरहसे दुःखी होनेपर भी रावणके वधके उपायकी प्राप्तिसे आप भीतर-ही-भीतर किसी अद्भुत आनन्दका अनुभव कर रहे थे॥ ९॥

भूयस्तन्वीं विचिन्वन्नहृत दशमुखस्त्वद्वधूं मद्वधेने-
त्युक्त्वा याते जटायौ दिवमथ सुहृदः प्रातनोः प्रेतकार्यम्।
गृह्णानं तं कबन्धं जघनिथ शबरीं प्रेक्ष्य पम्पातटे त्वं
सम्प्राप्तो वातसूनुं भृशमुदितमनाः पाहि वातालयेश॥ १०॥

पुनः सूक्ष्माङ्गी सीताको खोजते हुए आप आगे बढ़े। तदनन्तर मार्गमें 'रावण मेरा वध करके आपकी पत्नीको हर ले गया'—यों कहकर जटायुके स्वर्ग चले जानेपर आपने अपने सुहृद् जटायुका प्रेत-कार्य सम्पन्न किया। फिर अपनेको पकड़नेवाले राक्षस कबन्धको मारा। तत्पश्चात् शबरीसे मिलकर आप पम्पा-तटपर पहुँचे। वहाँ वायु-पुत्र हनुमान्से भेंट हुई, जिससे आपका मन अत्यन्त हर्षोल्लसित हो उठा। वातालयेश! मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति श्रीरामचरितवर्णनं चतुस्त्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चत्रिंशत्तमदशकम्

श्रीराम-चरित

नीतः सुग्रीवमैत्रीं तदनु हनुमता दुन्दुभेः कायमुच्चैः
क्षिप्त्वाङ्गुष्ठेन भूयो लुलुविथ युगपत्पत्रिणा सप्त सालान्।
हत्वा सुग्रीवघातोद्यतमतुलबलं बालिनं व्याजवृत्त्या
वर्षावेलामनैषीर्विरहतरलितस्त्वं मतङ्गाश्रमान्ते॥ १॥

तत्पश्चात् हनुमान्ने आपके साथ सुग्रीवकी मित्रता करायी। तब आपने पैरके अँगूठेके बलसे दुन्दुभिके शरीरको दूर फेंककर एक ही बाणसे सात साल-वृक्षोंको काट गिराया। पुनः आपने सुग्रीवका वध करनेके लिये उद्यत अतुल बलशाली बालीको कपट-वृत्तिसे मारकर स्वयं विरहसे विह्वल हो मतङ्ग मुनिके आश्रमके निकट वर्षाकाल व्यतीत किया॥ १॥

सुग्रीवेणानुजोक्त्या सभयमभियता व्यूहितां वाहिनीं ता-
मृक्षाणां वीक्ष्य दिक्षु द्रुतमथ दयितामार्गणायावनम्राम्।
संदेशं चाङ्गुलीयं पवनसुतकरे प्रादिशो मोदशाली
मार्गे मार्गे ममार्गे कपिभिरपि तदा त्वत्प्रिया सप्रयासैः॥ २॥

तदनन्तर लक्ष्मणके कहनेसे भयभीत होकर साथ जाते हुए सुग्रीवने रीछों तथा वानरोंकी सेना इकट्ठी की, जो शीघ्र ही दिशाओंमें सीताकी खोज करनेके लिये उद्यत थी। उसे देखकर प्रसन्नचित्त हुए आपने वायुपुत्र हनुमान्‌के हाथमें अपनी अंगूठी तथा संदेश प्रदान किया। तब उस कपिदलने प्रयासपूर्वक प्रत्येक मार्गमें आपकी प्रियतमाका अन्वेषण करना आरम्भ किया॥ २॥

त्वद्वार्ताकर्णनोद्यद्गरुदुरुजवसम्पातिसम्पातिवाक्य-
प्रोत्तीर्णार्णोधिरन्तर्नगरि जनकजां वीक्ष्य दत्त्वाङ्गुलीयम्।
प्रक्षुद्योद्यानमक्षक्षपणचणरणः सोढबन्धो दशास्यं
दृष्ट्वा प्लुष्ट्वा च लङ्कां झटिति स हनुमान् मौलिरत्नं ददौ ते॥ ३॥

तत्पश्चात् आपका वृत्तान्त सुननेसे जिसके पंख निकल आये थे, उस अतिशय वेगपूर्वक उड़नेवाले सम्पातीके कहनेसे जिसने समुद्रको पार किया और नगरीके भीतर घुसकर जानकीका दर्शन करके उन्हें अंगूठी प्रदान की, अशोक-वाटिकाको नष्ट-भ्रष्ट किया, रणमें अक्षकुमारका कचूमर निकाला तथा ब्रह्मास्त्रका बन्धन स्वीकार किया, उस हनुमान्‌ने रावणको देखकर और लङ्काको जलाकर—तहस-नहस करके शीघ्र ही लौटकर आपको चूड़ामणि समर्पित की॥ ३॥

त्वं सुग्रीवाङ्गदादिप्रबलकपिचमूचक्रविक्रान्तभूमी-
चक्रोऽभिक्रम्य पारेजलधि निशिचरेन्द्रानुजाश्रीयमाणः।
तत्प्रोक्तां शत्रुवार्तां रहसि निशमयन् प्रार्थनापार्थ्यरोष-
प्रस्ताग्नेयास्त्रतेजस्त्रसदुदधिगिरा लब्धवान् मध्यमार्गम्॥ ४॥

तब आप सुग्रीव-अङ्गद आदि प्रबल वानरोंकी महती सेनासे भूमितलको आक्रान्त करते हुए वहाँसे चलकर समुद्रके तटपर आये। वहाँ राक्षसराज रावणका छोटा भाई विभीषण आपकी शरणमें आया और एकान्तमें

उसने आपको शत्रुका वृत्तान्त कह सुनाया। तब समुद्रसे प्रार्थना करनेपर अपनी प्रार्थनाके विफल होनेके कारण क्रुद्ध होकर आपने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उसके तेजसे भयभीत होकर समुद्र प्रकट हुआ। तब उसके कथनानुसार आपको समुद्रके मध्यसे मार्ग प्राप्त हुआ॥ ४॥

कीशैराशान्तरोपाहृतगिरिनिकरैः सेतुमाधाप्य यातो
यातून्यामर्द्य दंष्ट्रानखशिखरिशिलासालशस्त्रैः स्वसैन्यैः।
व्याकुर्वन् सानुजस्त्वं समरभुवि परं विक्रमं शक्रजेत्रा
वेगान्नागास्त्रबद्धः पतगपतिगरुन्मारुतैर्मोचितोऽभूः॥ ५॥

उस समय वानरोंद्वारा अनवरत लाये जाते हुए पर्वत-समूहोंसे सेतुका निर्माण कराकर आप समुद्र-पार हुए। वहाँ युद्धमें दाढ़, नख, पर्वत-शिखर, शिला और सालवृक्ष ही जिनके आयुध थे, अपनी उन सेनाओंद्वारा राक्षसोंको रौंद डाला। तत्पश्चात् जब लक्ष्मणसहित आप समरभूमिमें इन्द्रको जीतनेवाले मेघनादके साथ जूझते हुए परम पराक्रम प्रकट कर रहे थे, उसी समय उस राक्षसने आपको वेगपूर्वक नागास्त्रसे बाँध लिया। तब पक्षिराज गरुड़की पाँखोंके वायुसे आप मुक्त हुए॥ ५॥

सौमित्रिस्त्वस्त्रशक्तिप्रहृतिगलदसुर्वातजानीतशैल-
घ्राणात् प्राणानुपेतो व्यकृणुत कुसृतिश्लाघिनं मेघनादम्।
मायाक्षोभेषु वैभीषणवचनहृतस्तम्भनः कुम्भकर्णं
सम्प्राप्तं कम्पितोर्वीतलमखिलचमूभक्षिणं व्यक्षिणोस्त्वम्॥ ६॥

उस संग्राममें जब मेघनादके शक्तिप्रहारसे सुमित्राकुमार मूर्च्छित हो गये, तब हनुमान्‌जीद्वारा लाये गये पर्वतकी ओषधिके सूँघनेसे उन्हें पुनः जीवन प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् लक्ष्मणने कुमार्गकी प्रशंसा करनेवाले मेघनादको कालके गालमें भेज दिया। तब विभीषणके बतलाये हुए मार्गसे मायासे क्षुब्ध हुई सेनाओंके स्तम्भनको आपने दूर किया। इसी समय धरातलको कँपाता हुआ तथा सारी वानरी-सेनाको भक्षण करता हुआ कुम्भकर्ण आ डटा, तब आपने उसका संहार कर डाला॥ ६॥

गृह्णन् जम्भारिसम्प्रेषितरथकवचौ रावणेनाभियुध्यन्
ब्रह्मास्त्रेणास्य भिन्दन् गलततिमबलामग्निशुद्धां प्रगृह्णन्।

देवश्रेणीवरोज्जीवितसमरमृतैरक्षतैर्ऋक्षसङ्घै-
र्लङ्काभर्त्रा च साकं निजनगरमगाः सप्रियः पुष्पकेण॥ ७॥

तत्पश्चात् जम्भासुरके शत्रु इन्द्रने अपना रथ और कवच आपके पास भेजे। उन्हें ग्रहण करके आप रावणके साथ युद्ध करने लगे। उस संग्राममें आपने ब्रह्मास्त्रद्वारा उसके सिरसमूहोंको काट डाला और अग्नि-परीक्षाद्वारा शुद्ध हुई सीताको ग्रहण किया। तब समरभूमिमें मरे हुए रीछ-वानरोंको देवगणोंमें श्रेष्ठ इन्द्रने (अमृत-वर्षा करके) पुनः जीवित तथा घावरहित कर दिया। तब आप पत्नी (तथा अनुज)-सहित उन रीछ-वानरोंके झुंडको तथा लङ्काधिपति विभीषणको साथ लेकर पुष्पकविमानद्वारा अपने नगरकी ओर प्रस्थित हुए॥ ७॥

प्रीतो दिव्याभिषेकैरयुतसमधिकान् वत्सरान् पर्यरंसी-
र्मैथिल्यां पापवाचा शिव! शिव! किल तां गर्भिणीमभ्यहासीः।
शत्रुघ्नेनार्दयित्वा लवणनिशिचरं प्रार्दयः शूद्रपाशं
तावद्वाल्मीकिगेहे कृतवसतिरुपासूत सीता सुतौ ते॥ ८॥

अयोध्यामें आपका दिव्य राज्याभिषेक हुआ, उससे प्रसन्न होकर आप ग्यारह हजार वर्षोंतक प्रजाका पालन करते रहे। इसी बीचमें मैथिलीके विषयमें निन्दित वाणी सुनकर शिव! शिव! गर्भिणी-अवस्थामें उनका परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् शत्रुघ्नद्वारा लवण राक्षसका वध कराकर स्वयं शूद्रमुनि शम्बूकको मौतके घाट उतार दिया। तबतक सीता महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें निवास करती रहीं। वहाँ उन्होंने आपके दोनों पुत्र लव-कुशको जन्म दिया॥ ८॥

वाल्मीकेस्त्वत्सुतोद्गापितमधुरकृतेराज्ञया यज्ञवाटे
सीतां त्वय्याप्तुकामे क्षितिमविशदसौ त्वं च कालार्थितोऽभूः।
हेतोः सौमित्रिघाती स्वयमथ सरयूमग्ननिश्शेषभृत्यैः
साकं नाकं प्रयातो निजपदमगमो देव वैकुण्ठमाद्यम्॥ ९॥

आपके पुत्र लव-कुशद्वारा जिनकी मधुर कृति रामायण-काव्यका गान किया जाता था, उन महर्षि वाल्मीकिकी आज्ञासे सीता यज्ञशालामें पधारीं; क्योंकि आप उन्हें प्राप्त करना चाहते थे। वहाँ वे पृथ्वीमें प्रवेश कर गयीं और कालने आपसे भी स्वर्गारोहणके लिये प्रार्थना की। तब

निमित्तवश लक्ष्मणका परित्याग करके स्वयं आप सरयूमें डूबकर अपने सम्पूर्ण भृत्योंके साथ स्वर्गलोकमें होते हुए ब्रह्माण्डोत्पत्तिसे भी पूर्व विद्यमान रहनेवाले अपने निवासस्थान वैकुण्ठको चले गये॥ ९॥

सोऽयं मर्त्यावतारस्तव खलु नियतं मर्त्यशिक्षार्थमेवं
विश्लेषार्तिर्निरागस्त्यजनमपि भवेत् कामधर्मातिसक्त्या।
नो चेत्स्वात्मानुभूतेः क्व नु तव मनसो विक्रिया चक्रपाणे
स त्वं सत्त्वैकमूर्ते पवनपुरपते व्याधुनु व्याधितापान्॥ १०॥

चक्रपाणे! आपका यह मर्त्यावतार निश्चय ही मृत्युलोकवासियोंके शिक्षार्थ ही हुआ था। इस प्रकार कामासक्तिसे प्रियविरहजनित दुःख और धर्मासक्तिसे निरपराधका त्याग भी होता है (अतः कामादिमें अत्यन्त आसक्ति नहीं करनी चाहिये।) अन्यथा स्वानुभूतिसम्पन्न आपके मनमें विकार कहाँ? सत्त्वैकमूर्ते! पवनपुरपते! ऐसे आप मेरे रोगजनित कष्टको दूर कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति श्रीरामचरितवर्णनं पञ्चत्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

षट्त्रिंशत्तमदशकम्

परशुराम-चरित

अत्रेः पुत्रतया पुरा त्वमनसूयायां हि दत्ताभिधो
जातः शिष्यनिबन्धतन्द्रितमनाः स्वस्थश्चरन् कान्तया।
दृष्टो भक्ततमेन हैहयमहीपालेन तस्मै वरा-
नष्टैश्वर्यमुखान् प्रदाय ददिथ स्वेनैव चान्ते वधम्॥ १॥

पूर्वकालमें आप अत्रिमुनिके पुत्ररूपमें अनसूयाके गर्भसे दत्त नामसे उत्पन्न हुए। उस समय शिष्य बनानेसे भगवद्भक्तिमें बाधा आयगी, अतः भक्तिमें तन्द्रायुक्त चित्तवाले आप आत्मनिष्ठ रहकर अपनी कान्ताके साथ विचर रहे थे। भक्तश्रेष्ठ हैहय-नरेश कार्तवीर्य अर्जुनने आपको देखा। आपने राजाको ऐश्वर्ययुक्त आठ वर देकर अन्तमें अपने ही द्वारा उसके वधका वरदान दिया॥ १॥

सत्यं कर्तुमथार्जुनस्य च वरं तच्छक्तिमात्रानतं
ब्रह्मद्वेषि तदाखिलं नृपकुलं हन्तुं च भूमेर्भरम्।
संजातो जमदग्नितो भृगुकुले त्वं रेणुकायां हरे
रामो नाम तदात्मजेष्ववरजः पित्रोरधाः सम्मदम्॥ २॥

उस समय जो अर्जुनकी शक्तिमात्रसे कुछ शान्त, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाला अतएव पृथ्वीके लिये भार-रूप हो रहा था, उस सम्पूर्ण राजकुलका विनाश करनेके लिये तथा अर्जुनके वरको सत्य करनेके हेतु आप भृगुकुलमें जमदग्निद्वारा रेणुकाके गर्भसे उत्पन्न हुए। हरे! उस समय आपका राम नाम था और आप जमदग्निके पुत्रोंमें सबसे छोटे थे। आपने माता-पिताको परम आनन्द प्रदान किया॥ २॥

लब्धाम्नायगणश्चतुर्दशवया गन्धर्वराजे मना-
गासक्तां किल मातरं प्रति पितुः क्रोधाकुलस्याज्ञया।
ताताज्ञातिगसोदरैः सममिमां छित्त्वाथ शान्तात् पितु-
स्तेषां जीवनयोगमापिथ वरं माता च तेऽदाद्वरान्॥ ३॥

चौदह वर्षकी अवस्थामें ही आपने सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। एक बार (जल लानेके लिये नदी-तटपर गयी हुई) माता रेणुका गन्धर्वराज चित्ररथको वहाँ विहार करते देखकर उसपर कुछ आसक्त हो गयीं। तब क्रोधाविष्ट होकर महर्षि जमदग्निने उन्हें मार डालनेके लिये पुत्रोंको आज्ञा दी, परंतु ज्येष्ठ पुत्रोंने पिताकी आज्ञाका पालन नहीं किया। तब आपने अपने सहोदर बड़े भाइयोंसहित माताका सिर धड़से अलग कर दिया। तदनन्तर पिताके प्रसन्न होनेपर उनसे भ्राताओं तथा माताके पुनरुज्जीवन-सम्बन्धी वर प्राप्त किया। जीवित होनेपर माताने भी आपको वरदान दिया॥ ३॥

पित्रा मातृमुदे स्तवाहृतवियद्धेनोर्निजादाश्रमात्
प्रस्थायाथ भृगोर्गिरा हिमगिरावाराध्य गौरीपतिम्।
लब्ध्वा तत्परशुं तदुक्तदनुजच्छेदी महास्त्रादिकं
प्राप्तो मित्रमथाकृतव्रणमुनिं प्राप्यागमः स्वाश्रमम्॥ ४॥

तदनन्तर पितामह भृगुके आदेशसे, जिसमें पिताने माता रेणुकाकी प्रसन्नताके लिये स्तवन करके स्वर्गकी धेनु सुरभिको ला रखा था, अपने उस आश्रमसे प्रस्थान करके हिमालयपर जाकर गौरीपतिकी आराधना की। फिर शिवजीसे वर-रूपमें उनका फरसा तथा अन्य महान् अस्त्रसमूहोंको प्राप्त करके उनके द्वारा बतलाये हुए दानवोंका संहार किया। तत्पश्चात् अपने मित्र अकृतव्रणमुनिसे मिलकर आप अपने आश्रमको लौट आये॥ ४॥

आखेटोपगतोऽर्जुनः सुरगवीसम्प्राप्तसम्पद्गणै-
स्त्वत्पित्रा परिपूजितः पुरगतो दुर्मन्त्रिवाचा पुनः।
गां क्रेतुं सचिवं न्ययुङ्क्त कुधिया तेनापि रुन्धन्मुनि-
प्राणक्षेपसरोषगोहतचमूचक्रेण वत्सो हृतः॥ ५॥

एक बार मृगयाके प्रसङ्गसे सहस्रार्जुन आपके आश्रमपर आये। आपके पिताने सुरभिके प्रभावसे प्राप्त हुए दिव्य भोगोंद्वारा राजाका सम्यक् प्रकारसे आतिथ्य किया। राजा अपनी राजधानी माहिष्मतीको लौट गये। पुनः अपने दुष्ट मन्त्रीके कहनेसे उन्होंने सुरभिको खरीद लानेके लिये उसे नियुक्त किया। उस दुर्बुद्धिने जब सुरभिको पकड़ना चाहा, तब जमदग्निमुनिने उसे मना किया, जिससे क्रुद्ध होकर उसने मुनिको मार डाला। तब मुनिके वधसे रुष्ट हुई सुरभिने उसके सारे सैन्यसमूहको नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् वह सचिव सुरभिके बछड़ेको चुराकर माहिष्मतीमें ले गया॥ ५॥

शुक्रोज्जीविततातवाक्यचलितक्रोधोऽथ सख्या समं
बिभ्रद् ध्यातमहोदरोपनिहितं चापं कुठारं शरान्।
आरूढः सहवाहयन्तृकरथं माहिष्मतीमाविशन्
वाग्भिर्वत्समदाशुषि क्षितिपतौ सम्प्रास्तुथाः सङ्गरम्॥ ६॥

तदनन्तर शुक्राचार्यकी संजीवनी विद्याके प्रभावसे पुनः जीवित हुए पिता जमदग्निके कहनेसे आपका क्रोध भड़क उठा। तब आपने शिवजीके पार्षद महोदरका ध्यान किया। उसने फरसा, धनुष, बाण और घोड़े-सारथिसहित रथ लाकर उपस्थित कर दिया। फिर तो आप उन अस्त्रोंको धारण करके अपने मित्र अकृतव्रणके साथ रथपर सवार

हो माहिष्मतीमें जा पहुँचे। वहाँ जब कहनेमात्रसे राजाने बछड़ा देना स्वीकार नहीं किया, तब आपने लड़ाई छेड़ दी॥ ६॥

पुत्राणामयुतेन सप्तदशभिश्चाक्षौहिणीभिर्महा-
सेनानीभिरनेकमित्रनिवहैर्व्याजृम्भितायोधनः।
सद्यस्त्वत्ककुठारबाणविदलन्निश्शेषसैन्योत्करो
भीतिप्रद्रुतनष्टशिष्टतनयस्त्वामापतद्धैहयः ॥ ७॥

फिर तो सहस्रार्जुन अपने दस हजार पुत्रों, वीर सेनापतियोंसे संचालित सतरह अक्षौहिणी सेनाओं तथा अनेक मित्रसमूहोंके साथ युद्धस्थलमें आ डटा। परंतु जब तत्काल ही आपके फरसे तथा बाणोंके आघातसे उसका सारा सैन्यसमूह नष्ट हो गया और मरनेसे बचे हुए लड़के भयभीत होकर भाग खड़े हुए, तब स्वयं हैहयवंशी सहस्रार्जुनने आपपर आक्रमण किया॥ ७॥

लीलावारितनर्मदाजलवलल्लङ्केशगर्वापह-
श्रीमद्बाहुसहस्रमुक्तबहुशस्त्रास्त्रं निरुन्धन्नमुम्।
चक्रे त्वय्यथ वैष्णवेऽपि विफले बुद्ध्वा हरिं त्वां मुदा
ध्यायन्तं छितसर्वदोषमवधीः सोऽगात् परं ते पदम्॥ ८॥

कभी एक ओरसे क्रीड़ावश नर्मदाके जलको रोककर दूसरी ओर उसके बाढ़में सेनासहित बहते हुए रावणके गर्वका विनाश करनेवाले अपने शोभाशाली हजारों हाथोंसे उस समय वह अनेकों प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा करने लगा। तब आपने उसे रोक दिया। पुनः उसने आपपर वैष्णव चक्रसे वार किया। परंतु जब वह चक्र विफल हो गया,तब सहस्रार्जुन आपको श्रीहरि जानकर आनन्दमग्न हो ध्यान करने लगा, जिससे उसके सारे दोष नष्ट हो गये। तत्पश्चात् आपने उसकी सारी भुजाएँ काटकर उसे मौतके घाट उतार दिया। तब वह आपके परम पद—वैकुण्ठको चला गया॥ ८॥

भूयोऽमर्षितहैहयात्मजगणैस्ताते हते रेणुका-
माघ्नानां हृदयं निरीक्ष्य बहुशो घोरां प्रतिज्ञां वहन्।
ध्यानानीतरथायुधस्त्वमकृथा विप्रद्रुहः क्षत्रियान्
दिक्चक्रेषु कुठारयन् विशिखयन् निःक्षत्रियां मेदिनीम्॥ ९॥

पुनः पितृ-वधको न सह सकनेके कारण सहस्रार्जुनके बचे-खुचे

पुत्रोंने क्रुद्ध होकर (आपकी अनुपस्थितिमें) आपके पिता जमदग्निको मार डाला, जिससे माता रेणुका छाती पीटती हुई विलाप करने लगीं। उन्हें रोती देखकर आपने भीषण प्रतिज्ञा की। तत्पश्चात् ध्यान करनेपर दिव्य रथ और आयुध आ उपस्थित हुए। उन्हें लेकर आपने सारी दिशाओंमें घूम-घूमकर ब्राह्मणद्रोही क्षत्रियोंका कुठार और बाणोंद्वारा संहार करते हुए पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया॥ ९॥

तातोज्जीवनकृन्नृपालककुलं त्रिस्सप्तकृत्वो जयन्
संतर्प्याथ समन्तपञ्चकमहारक्तह्रदौघे पितॄन्।
यज्ञे क्ष्मामपि काश्यपादिषु दिशन् शाल्वेन युध्यन् पुनः
कृष्णोऽमुं निहनिष्यतीति शमितो युद्धात् कुमारैर्भवान्॥ १०॥

तदनन्तर पिताको पुनः जीवित करके इक्कीस बार क्षत्रियकुलका संहार किया और उनके रुधिरसे भरे हुए समन्तपञ्चक नामक महान् ह्रदमें पितरोंका तर्पण किया। पुनः यज्ञमें काश्यप आदि ब्राह्मणोंको पृथ्वीका दान करके आप शाल्वके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए; परंतु सनकादिकोंद्वारा 'श्रीकृष्ण इसका वध करेंगे'—यों कहे जानेपर आप युद्धसे विरत हो गये॥ १०॥

न्यस्यास्त्राणि महेन्द्रभूभृति तपस्तन्वन् पुनर्मज्जितां
गोकर्णावधि सागरेण धरणीं दृष्ट्वार्थितस्तापसैः।
ध्यातेष्वासधृतानलास्त्रचकितं सिन्धुं स्रुवक्षेपणा-
दुत्सार्योद्धृतकेरलो भृगुपते वातेश संरक्ष माम्॥ ११॥

तत्पश्चात् शस्त्रास्त्रका परित्याग कर आप महेन्द्र पर्वतपर तपस्या करने लगे। पुनः गोकर्णतककी भूमिको समुद्रद्वारा जलमग्न की हुई देखकर तापसोंने उसके उद्धारके लिये आपसे प्रार्थना की। तब ध्यान करते ही आयुधोंके उपस्थित होनेपर आपने धनुषपर आग्नेयास्त्रका संधान किया। उसे देखकर सागर भयसे चकित हो उठा। भृगुपते! तब आपने स्रुव-क्षेपणसे समुद्रको दूर हटाकर केरलकी भूमिका उद्धार किया। वातेश! मेरी सब तरहसे रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति परशुरामावतारवर्णनं षट्त्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

दशमस्कन्धपरिच्छेदः

सप्तत्रिंशत्तमदशकम्

कृष्णावतारके प्रसङ्गका वर्णन

सान्द्रानन्दतनो हरे ननु पुरा दैवासुरे सङ्गरे
त्वत्कृत्ता अपि कर्मशेषवशतो ये ते न याता गतिम्।
तेषां भूतलजन्मनां दितिभुवां भारेण दूरार्दिता
भूमिः प्राप विरिञ्चमाश्रितपदं देवैः पुरैवागतैः॥ १॥

घनीभूत आनन्दस्वरूप भगवन्! प्राचीनकालमें देवासुर-संग्राममें आपने जिन राक्षसोंका वध किया था, उनमेंसे भी कुछ राक्षस कर्मभोग शेष होनेके कारण मोक्षको नहीं प्राप्त हुए थे, अतः उन्हें पुनः भूतलपर जन्म लेना पड़ा। उन दैत्योंके भारसे अत्यन्त पीड़ित हुई भूमि पहलेसे ही उपस्थित देवताओंके साथ सत्यलोकस्थित ब्रह्माके पास जाकर कहने लगी—॥ १॥

हा हा दुर्जनभूरिभारमथितां पाथोनिधौ पातुका-
मेतां पालय हन्त मे विवशतां सम्पृच्छ देवानिमान्।
इत्यादिप्रचुरप्रलापविवशामालोक्य धाता महीं
देवानां वदनानि वीक्ष्य परितो दध्यौ भवन्तं हरे॥ २॥

'हाय! हाय!! ब्रह्मन्! महान् कष्ट है! दुर्जनोंके अतिशय भारसे पीड़ित तथा समुद्रमें मग्नप्राय मुझ अबलाकी रक्षा कीजिये। खेद है! मेरी विवशता इन देवताओंसे पूछ लीजिये।' हरे! यों बहुत तरहसे प्रलाप करती हुई पृथ्वीको देखकर ब्रह्मा चारों दिशाओंमें देवताओंके मुखोंकी ओर दृष्टिपात करके आपके ध्यानमें मग्न हो गये॥ २॥

ऊचे चाम्बुजभूरमूनयि सुराः सत्यं धरित्र्या वचो
नन्वस्या भवतां च रक्षणविधौ दक्षो हि लक्ष्मीपतिः।

सर्वे शर्वपुरस्सरा वयमितो गत्वा पयोवारिधिं
नत्वा तं स्तुमहे जवादिति ययुः साकं तवाकेतनम्॥ ३॥

(ध्यानमें सारी बातें प्रत्यक्ष ज्ञात करके) कमलजन्मा ब्रह्मा देवताओंसे बोले—'अयि देवगण! धरणीका कथन सत्य है (यह मैंने दिव्य दृष्टिसे देख लिया)। निश्चय ही इसकी तथा आपलोगोंकी रक्षा करनेमें लक्ष्मीपति विष्णु ही समर्थ हैं; अतः शिवजीको आगे करके हम सब लोग यहाँसे क्षीरसागरको चलें। वहाँ विष्णुको नमस्कार करके उनकी स्तुति करें।' ब्रह्माके यों कहनेपर वे सब एक साथ वेगपूर्वक आपके निवासभूत क्षीरसागरको चल दिये॥ ३॥

ते मुग्धानिलशालि दुग्धजलधेस्तीरं गताः सङ्गता
यावत्त्वत्पदचिन्तनैकमनसस्तावत्स पाथोजभूः।
त्वद्वाचं हृदये निशम्य सकलानानन्दयन्नूचिवा-
नाख्यातः परमात्मना स्वयमहं वाक्यं तदाकर्ण्यताम्॥ ४॥

वे संगठित होकर शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुसे सेवित क्षीरसागरके तटपर पहुँचकर जबतक आपके चरणोंके ध्यानमें दत्तचित्त थे, तबतक ब्रह्मा अपने हृदयमें आपकी वाणीको अवगत करके सबको आनन्दित करते हुए यों बोले—'देवताओ! स्वयं परमात्माने मुझसे जो कुछ कहा है, उस वचनको आपलोग सुनें'॥ ४॥

जाने दीनदशामहं दिविषदां भूमेश्च भीमैर्नृपै-
स्तत्क्षेपाय भवामि यादवकुले सोऽहं समग्रात्मना।
देवा वृष्णिकुले भवन्तु कलया देवाङ्गनाश्चावनौ
मत्सेवार्थमिति त्वदीयवचनं पाथोजभूरूचिवान्॥ ५॥

(उन्होंने कहा है कि) 'मैं स्वर्गवासियोंको तथा पृथ्वीकी दीनदशाको, जो अत्याचारी नरेशोंके कारण उत्पन्न हुई है, भलीभाँति जानता हूँ। अतः उसका विनाश करनेके लिये सच्चिदानन्दस्वरूप मैं अपने समग्ररूपसे यादवकुलमें प्रकट होऊँगा। भूतलपर मेरी सेवाके हेतु देवगण अपने अंशसे वृष्णिकुलमें उत्पन्न हों तथा देवाङ्गनाएँ भी

(राजकन्या एवं गोपी-रूपमें) जन्म धारण करें।' इस प्रकार आपके वचनको ब्रह्माने सबसे कह सुनाया॥ ५॥

श्रुत्वा कर्णरसायनं तव वचः सर्वेषु निर्वापित-
स्वान्तेष्वीश गतेषु तावककृपापीयूषतृप्तात्मसु।
विख्याते मथुरापुरे किल भवत्सांनिध्यपुण्योत्तरे
धन्यां देवकनन्दनामुदवहद्राजा स शूरात्मजः॥ ६॥

ईश! कानोंके लिये अमृतस्वरूप आपके वचनको सुनकर सभीका अन्तःकरण आनन्दित हो गया। तब आपके कृपामृतसे तृप्तात्मा होकर सब-के-सब चले गये। तदनन्तर शूरपुत्र राजा वसुदेवने आपके सांनिध्यजनित पुण्यसे उत्कर्षको प्राप्त हुई प्रसिद्ध मथुरानगरीमें जाकर सौभाग्यशालिनी देवकनन्दिनी देवकीका पाणिग्रहण किया॥ ६॥

उद्वाहावसितौ तदीयसहजः कंसोऽथ सम्मानय-
न्नेतौ सूततया गतः पथि रथे व्योमोत्थया त्वद्गिरा।
अस्यास्त्वामतिदुष्टमष्टमसुतो हन्तेति हन्तेरितः
संत्रासात् स तु हन्तुमन्तिकगतां तन्वीं कृपाणीमधात्॥ ७॥

विवाह सम्पन्न हो जानेपर विदाईके अवसरपर देवकीका भ्राता कंस देवकी-वसुदेवके प्रति सम्मान प्रदर्शित करता हुआ रथपर सारथि बनकर बैठ गया। खेद है, उसी समय मार्गमें आपकी आकाशवाणीने 'इसका आठवाँ पुत्र तुझ अत्यन्त दुराचारीका हनन करनेवाला होगा'— यों घोषित किया। उसे सुनकर भयभीत होनेके कारण कंसने समीपमें ही बैठी हुई कृशाङ्गी देवकीको मार डालनेके लिये तलवार हाथमें उठा ली॥ ७॥

गृह्णानश्चिकुरेषु तां खलमतिः शौरेश्चिरं सान्त्वनै-
र्नो मुञ्चन् पुनरात्मजार्पणगिरा प्रीतोऽथ यातो गृहान्।
आद्यं त्वत्सहजं तथार्पितमपि स्नेहेन नाहन्नसौ
दुष्टानामपि देव पुष्टकरुणा दृष्टा हि धीरेकदा॥ ८॥

पुनः उस दुर्बुद्धिने देवकीकी चोटी पकड़ ली। तब वसुदेवजी बड़ी

देरतक उसे सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा समझाते रहे, परंतु उसने (चोटी) नहीं छोड़ी। तदनन्तर 'इसके पुत्रोंको मैं तुम्हें दे दूँगा' वसुदेवजीके यों प्रतिज्ञा करनेपर वह प्रसन्न होकर घरको लौट गया। पूर्वप्रतिज्ञानुसार वसुदेवजीने आपके प्रथम सहोदर भाईको लाकर उसे समर्पित किया, तथापि कंसने स्नेहवश उसका वध नहीं किया। देव! दुष्टोंकी भी बुद्धि कभी-कभी करुणायुक्त देखी जाती है॥ ८॥

तावत्त्वन्मनसैव नारदमुनिः प्रोचे स भोजेश्वरं
यूयं नन्वसुराः सुराश्च यदवो जानासि किं न प्रभो।
मायावी स हरिर्भवद्वधकृते भावी सुरप्रार्थना-
दित्याकर्ण्य यदूनदूधुनदसौ शौरेश्च सूनूनहन्॥ ९ ॥

(जब कंस घर लौट गया,) तब आपकी ही प्रेरणासे नारदमुनि भोजराज कंसके पास जाकर उससे बोले—'प्रभो! क्या आप नहीं जानते हैं कि आपलोग असुर हैं और ये यदुवंशी देवता हैं? वे मायावी श्रीहरि देवताओंकी प्रार्थनासे आपलोगोंके वधार्थ (यदुवंशमें) उत्पन्न होनेवाले हैं।' ऐसा सुनकर कंसने यादवोंको स्थानच्युत कर दिया और वसुदेवजीके पुत्रोंको मार डाला॥ ९॥

प्राप्ते सप्तमगर्भतामहिपतौ त्वत्प्रेरणान्मायया
नीते माधव रोहिणीं त्वमपि भोः सच्चित्सुखैकात्मकः।
देवक्या जठरं विवेशिथ विभो संस्तूयमानः सुरैः
स त्वं कृष्ण विधूय रोगपटलीं भक्तिं परां देहि मे॥ १०॥

माधव! जब देवकीके सातवें गर्भमें नागराज अनन्त प्राप्त हुए, तब आपकी प्रेरणासे मायाने उन्हें रोहिणीके उदरमें पहुँचा दिया। तत्पश्चात् सच्चिदानन्दस्वरूप आप भी देवकीके गर्भमें प्रविष्ट हुए। विभो! उस समय देवगण आपकी स्तुति कर रहे थे। कृष्ण! वही आप मेरे रोगसमूहोंका विनाश करके परा भक्ति प्रदान कीजिये॥ १०॥

॥ इति श्रीकृष्णावतारप्रसङ्गवर्णनं सप्तत्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

अष्टात्रिंशत्तमदशकम्

श्रीकृष्णका गोकुल-गमन

आनन्दरूप भगवन्नयि तेऽवतारे
प्राप्ते प्रदीप्तभवदङ्गनिरीयमाणैः।
कान्तिव्रजैरिव घनाघनमण्डलैर्द्या-
मावृण्वती विरुरुचे किल वर्षवेला॥ १॥

अयि आनन्दस्वरूप भगवन्! आपके जन्म लेते समय वर्षा-ऋतु आपके प्रकाशोज्ज्वल श्रीविग्रहसे बाहर फैलते हुए कान्ति-पुञ्जकी भाँति घनघोर बादलोंसे आकाशको आच्छादित करती हुई विशेष शोभा पा रही थी॥ १॥

आशासु शीतलतरासु पयोदतोयै-
राशासिताप्तिविवशेषु च सज्जनेषु।
नैशाकरोदयविधौ निशि मध्यमायां
क्लेशापहस्त्रिजगतां त्वमिहाविरासीः॥ २॥

उस समय मेघ-जलसे सभी दिशाएँ अत्यन्त शीतल हो गयी थीं और सत्पुरुष-समुदाय अभीष्टार्थकी प्राप्तिसे आनन्दविभोर था। तब अर्धरात्रिके समय चन्द्रोदयकी भाँति त्रिलोकीके कष्टहर्ता आप इस भूतलपर प्रकट हुए॥ २॥

बाल्यस्पृशापि वपुषा दधुषा विभूती-
रुद्यत्किरीटकटकाङ्गदहारभासा।
शङ्खारिवारिजगदापरिभासितेन
मेघासितेन परिलेसिथ सूतिगेहे॥ ३॥

उस समय बाल्यभावका स्पर्श करते हुए भी जिसने ईश्वरत्वद्योतक विभूतियाँ धारण कर रखी थीं, जिससे प्रकाशमान किरीट, कटक, बाजूबंद और हारकी प्रभा छिटक रही थी, जो अपनी चारों भुजाओंमें

शङ्ख, चक्र, कमल और गदा धारण करनेसे उद्दीप्त हो रहा था तथा जिसकी कान्ति सजल जलधरके समान श्याम थी, अपने उस श्रीविग्रहसे आप सूतिकागृहमें शोभा पाने लगे॥ ३॥

वक्षःस्थलीसुखनिलीनविलासिलक्ष्मी-
मन्दाक्षलक्षितकटाक्षविमोक्षभेदैः।
तन्मन्दिरस्य खलकंसकृतामलक्ष्मी-
मुन्मार्जयन्निव विरेजिथ वासुदेव॥ ४॥

वासुदेव! अपने वक्षःस्थलपर सुखपूर्वक निवास करनेवाली विलासवती लक्ष्मीके लज्जापूर्वक लक्षित होनेवाले विभिन्न प्रकारके कटाक्ष-पातोंसे उस भवनकी दुष्ट कंसद्वारा उत्पन्न की हुई अलक्ष्मी (शोभाहीनता)-का उन्मार्जन करते हुए-से आप विशेष रूपसे सुशोभित हो रहे थे॥ ४॥

शौरिस्तु धीरमुनिमण्डलचेतसोऽपि
दूरस्थितं वपुरुदीक्ष्य निजेक्षणाभ्याम्।
आनन्दबाष्पपुलकोद्गमगद्गदार्द्र-
स्तुष्टाव दृष्टिमकरन्दरसं भवन्तम्॥ ५॥

उस समय धीर—साधनचतुष्टयसम्पन्न मुनिमण्डलीके चित्तसे भी दूर रहनेवाले अर्थात् ध्यानमें न आनेवाले आपके श्रीविग्रहको अपने नेत्रोंद्वारा अवलोकन करके वसुदेवजीके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छलक आये, उनका शरीर पुलकित हो उठा और उनकी वाणी हर्षगद्गद हो गयी। तब वे नेत्रोंके लिये मकरन्दरसस्वरूप आपकी स्तुति करने लगे—॥ ५॥

देव प्रसीद परपूरुष तापवल्ली-
निर्लूनदात्र समनेत्र कलाविलासिन्।
खेदानपाकुरु कृपागुरुभिः कटाक्षै-
रित्यादि तेन मुदितेन चिरं नुतोऽभूः॥ ६॥

'देव! प्रसन्न होइये। परम पुरुष! आप ताप-वल्लीका मूलोच्छेदन

करनेके लिये अतिशय तीक्ष्ण शस्त्ररूप हैं, सभी प्राणियोंको समान-दृष्टिसे देखनेवाले तथा अपनी अंशभूता मायाद्वारा क्रीड़ा करनेवाले हैं। अपने कृपा-परिपूर्ण कटाक्षोंद्वारा मेरे कष्टोंको दूर कर दीजिये।' इस प्रकार वसुदेवजी हर्षोल्लसित होकर चिरकालतक आपके स्तवनमें लगे रहे॥ ६॥

मात्रा च नेत्रसलिलास्तृतगात्रवल्या
स्तोत्रैरभिष्टुतगुणः करुणालयस्त्वम्।
प्राचीनजन्मयुगलं प्रतिबोध्य ताभ्यां
मातुर्गिरा दधिथ मानुषबालवेषम्॥ ७॥

माता देवकी, जिनका लता-सदृश दुबला-पतला शरीर नेत्रोंसे बहते हुए आँसुओंद्वारा भीग रहा था, स्तोत्रोंद्वारा आपका गुणगान कर रही थीं। तब आप दयानिधिने अपने दो प्राचीन (पृश्नि-सुतपाद्वारा पृश्निगर्भ तथा अदिति-कश्यपद्वारा वामन नामक) अवतारोंकी बातें बताकर उन्हें समझाया और माताके कहनेसे मानव-बाल-रूप धारण कर लिया॥ ७॥

त्वत्प्रेरितस्तदनु नन्दतनूजया ते
व्यत्यासमारचयितुं स हि शूरसूनुः।
त्वां हस्तयोरधित चित्तविधार्यमार्यै-
रम्भोरुहस्थकलहंसकिशोररम्यम्॥ ८॥

तत्पश्चात् नन्द-तनयाके साथ अपना व्यत्यास (अदला-बदली—'मुझे यशोदाके पास पहुँचा दो और उनकी पुत्री मेरी माताके पास ला दो'—इस आज्ञाका पालन) करनेके लिये आपद्वारा प्रेरित किये जानेपर शूर-कुमार वसुदेवजीने मुनियोंद्वारा चित्तसे धारण करने योग्य आपको दोनों हाथोंसे उठाया। उस समय कमलपर बैठे हुए कलहंस-किशोरके समान आपकी अद्भुत शोभा हो रही थी॥ ८॥

जाता तदा पशुपसद्मनि योगनिद्रा
निद्राविमुद्रितमथाकृत पौरलोकम्।

त्वत्प्रेरणात् किमिव चित्रमचेतनैर्यद्
द्वारैः स्वयं व्यघटि संघटितैः सुगाढम्॥ ९॥

आपके प्रस्थान करते समय भगवती योगनिद्राने नन्दगोपके घरमें जन्म लिया। उसने आपकी प्रेरणासे पुरवासियोंको निद्रित करके निश्चेष्ट कर दिया। फिर तो जो सुदृढ़ रूपसे बंद किये गये थे वे अचेतन दरवाजे स्वयं खुल गये, यह कैसी आश्चर्यकी बात है?॥ ९॥

शेषेण भूरिफणवारितवारिणाथ
स्वैरं प्रदर्शितपथो मणिदीपितेन।
त्वां धारयन् स खलु धन्यतमः प्रतस्थे
सोऽयं त्वमीश मम नाशय रोगवेगान्॥ १०॥

तदनन्तर नागराज शेष अपने हजारों फणोंसे वर्षाकी बूँदोंका निवारण करते हुए फणस्थित मणियोंके प्रकाशसे स्वच्छन्दतापूर्वक मार्गदर्शन कर रहे थे। इस प्रकार वे धन्यातिधन्य वसुदेवजी आपको सिरपर धारण करके प्रस्थित हुए। हे ईश! वही आप मेरे रोगोंके वेगको नष्ट कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति श्रीकृष्णावतारवर्णनम् अष्टात्रिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

एकोनचत्वारिंशत्तमदशकम्

वसुदेवजीद्वारा योगमायाका लाया जाना

भवन्तमयमुद्वहन् यदुकुलोद्वहो निस्सरन्
ददर्श गगनोच्चलज्जलभरां कलिन्दात्मजाम्।
अहो सलिलसंचयः स पुनरैन्द्रजालोदितो
जलौघ इव तत्क्षणात् प्रपदमेयतामाययौ॥ १॥

यदुकुलतिलक वसुदेवजी आपको उठाये हुए आगे बढ़ रहे थे।

मार्गमें उन्हें कलिन्दकन्या यमुनाका दर्शन हुआ, जो आकाशको चूमनेवाली लहरोंसे युक्त जलसे भरी थीं। परंतु आश्चर्य है, वह अगाध जल ऐन्द्रजालिकद्वारा प्रकट की गयी जलराशिकी तरह उसी क्षण प्रपद (पादाग्रभाग)-तक परिमाणवाला हो गया॥ १॥

प्रसुप्तपशुपालिकां निभृतमारुदद्बालिका-
मपावृतकवाटिकां पशुपवाटिकामाविशन्।
भवन्तमयमर्पयन् प्रसवतल्पके तत्पदाद्
वहन् कपटकन्यकां स्वपुरमागतो वेगतः॥ २॥

तदनन्तर जिसमें गोपिकाएँ निद्रामग्न थीं, बालिका मन्द-मन्द रुदन कर रही थी और जिसके कपाट खुले हुए थे, नन्दगोपकी उस वाटिका (बाड़ी या घर)-में प्रवेश करके वसुदेवजी आपको यशोदाकी प्रसव-शय्यापर रखकर और उस स्थानसे कपटकन्या योगनिद्राको उठाकर वेगपूर्वक अपने नगरको लौट आये॥ २॥

ततस्त्वदनुजारवक्षपितनिद्रवेगद्रव-
द्भटोत्करनिवेदितप्रसववार्तयैवार्तिमान्।
विमुक्तचिकुरोत्करस्त्वरितमापतन् भोजरा-
डतुष्ट इव दृष्टवान् भगिनिकाकरे कन्यकाम्॥ ३॥

तत्पश्चात् आपकी अनुजाके रुदन-शब्दसे जिनकी नींद भङ्ग हो गयी थी, उन दौड़ते हुए द्वारपालोंद्वारा निवेदित प्रसव-वार्तासे ही जो पीड़ित हो उठा था और जिसके केशपाश अस्त-व्यस्त थे, वह भोजराज कंस तुरंत ही वहाँ आ पहुँचा; परंतु अपनी बहनके हाथमें कन्या देखकर वह असंतुष्ट-सा हो गया॥ ३॥

ध्रुवं कपटशालिनो मधुहरस्य माया भवे-
दसाविति किशोरिकां भगिनिकाकरालिङ्गिताम्।
द्विपो नलिनिकान्तरादिव मृणालिकामाक्षिप-
न्नयं त्वदनुजामजामुपलपट्टके पिष्टवान्॥ ४॥

पुनः 'यह निश्चय ही कपटशाली मधुसूदनकी माया हो सकती है'—यों सोच-विचारकर कंसने देवकीकी गोदमें चिपटी हुई उस बालिकाको उसी प्रकार खींच लिया, जैसे हाथी पुष्करिणीके भीतरसे मृणालिकाको झटक लेता है। तत्पश्चात् उसने मायारूपिणी आपकी अनुजाको शिलापर पटक दिया॥ ४॥

ततो भवदुपासको झटिति मृत्युपाशादिव
प्रमुच्य तरसैव सा समधिरूढरूपान्तरा।
अधस्तलमजग्मुषी विकसदष्टबाहुस्फुर-
न्महायुधमहो गता किल विहायसा दिद्युते॥ ५॥

परंतु जैसे आपके उपासक तत्काल ही मृत्यु-पाशसे छूट जाते हैं, उसी प्रकार वह बालिका कंसके हाथसे छूट गयी और तुरंत ही उसने दूसरा रूप धारण कर लिया। वह नीचेके लोकोंमें नहीं गयी, आकाशमार्गसे जाती हुई सुशोभित हुई। उस समय उसके आठ हाथोंमें चमकते हुए बड़े-बड़े आयुध शोभा पा रहे थे॥ ५॥

नृशंसतर कंस ते किमु मया विनिष्पिष्टया
बभूव भवदन्तकः क्वचन चिन्त्यतां ते हितम्।
इति त्वदनुजा विभो खलमुदीर्य तं जग्मुषी
मरुद्गणपणायिता भुवि च मन्दिराण्येयुषी॥ ६॥

(उस समय योगमायाने कंससे कहा—) 'रे क्रूरकर्मा कंस! मुझे पटकनेसे तुझे क्या लाभ मिला? मूर्ख! तेरा वध करनेवाला कहीं उत्पन्न हो चुका। अब तू अपने हितकी चिन्ता कर।' विभो! आपकी अनुजा उस दुष्ट कंससे यों कहकर मरुद्गणोंद्वारा स्तुत होती हुई अभीष्ट स्थानको चली गयी और भूतलपर भी यत्र-तत्र मन्दिरोंमें स्थित हुई॥ ६॥

प्रगे पुनरगात्मजावचनमीरिता भूभुजा
प्रलम्बबकपूतनाप्रमुखदानवा मानिनः।

भवन्निधनकाम्यया जगति बभ्रमुर्निर्भयाः
कुमारकविमारकाः किमिव दुष्करं निष्कृपैः॥ ७॥

दूसरे दिन प्रातःकाल भूपाल कंसने प्रलम्ब, बक, पूतना आदि मानी दानवोंको बुलाकर उनसे योगमायाद्वारा कहा हुआ वचन कह सुनाया। तब वे निर्भय होकर शिशुओंका प्राण हरण करते हुए आपके वधकी इच्छासे संसारमें घूमने लगे। भला, क्रूर-कर्मियोंके लिये कौन-सा कुकर्म दुष्कर है?॥ ७॥

ततः पशुपमन्दिरे त्वयि मुकुन्द नन्दप्रिया-
प्रसूतिशयनेशये रुदति किञ्चिदञ्चत्पदे।
विबुध्य वनिताजनैस्तनयसम्भवे घोषिते
मुदा किमु वदाम्यहो सकलमाकुलं गोकुलम्॥ ८ ॥

मुकुन्द! इधर नन्दगोपके गृहमें नन्दप्रिया यशोदाकी प्रसूति-शय्यापर सोये हुए आप जब अपने मृदुल चरणोंको थोड़ा उछालकर रोने लगे, तब वहाँ सोयी हुई गोपिकाएँ जाग उठीं और उन्होंने पुत्रोत्पत्तिका समाचार घोषित किया। अहो! उस समयकी दशा क्या कहें, सारा गोकुल आनन्दविह्वल हो उठा॥ ८॥

अहो खलु यशोदया नवकलायचेतोहरं
भवन्तमलमन्तिके प्रथममापिबन्त्या दृशा।
पुनः स्तनभरं निजं सपदि पाययन्त्या मुदा
मनोहरतनुस्पृशा जगति पुण्यवन्तो जिताः॥ ९ ॥

अहो! यशोदाने संसारमें सभी पुण्यवानोंको मात कर दिया; क्योंकि पहले तो उसने नूतन शरीर धारण करनेके कारण अत्यन्त मनोहर आपको अपने निकट पाकर नेत्रोंद्वारा आपके रूपामृतका पान किया, पुनः तुरंत ही हर्षविभोर होकर आपको अपने स्तनोंका दूध पिलाया और आपके मनोहर शरीरका स्पर्श-लाभ किया॥ ९॥

भवत्कुशलकाम्यया स खलु नन्दगोपस्तदा
प्रमोदभरसंकुलो द्विजकुलाय किन्नाददात्।
तथैव पशुपालकाः किमु न मङ्गलं तेनिरे
जगत्त्रितयमङ्गल त्वमिह पाहि मामामयात्॥ १०॥

उस समय नन्दगोपने हर्षोल्लसित होकर आपकी मङ्गल-कामनासे ब्राह्मणोंको क्या नहीं दे डाला अर्थात् सब कुछ दान किया। उसी प्रकार गोपोंने भी कौन-सा मङ्गल नहीं किया अर्थात् सभी प्रकारके माङ्गलिक कार्य सम्पन्न किये। त्रिलोकीके मङ्गलस्वरूप भगवन्! आप यहाँ रोगोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति योगमायानयनादिवर्णनम् एकोनचत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

चत्वारिंशत्तमदशकम्

पूतना-उद्धार

तदनु नन्दममन्दशुभास्पदं नृपपुरीं करदानकृते गतम्।
समवलोक्य जगाद भवत्पिता विदितकंससहायजनोद्यमः॥ १॥

तदनन्तर अमन्द मङ्गलके आश्रयस्थान नन्दजी जब वार्षिक कर चुकानेके लिये राजधानी मथुरामें गये हुए थे, उस समय वहाँ उन्हें देखकर आपके पिता वसुदेवजीने, जिन्हें कंसके सहायकजनोंका उद्यम पूर्णतः ज्ञात था, नन्दजीसे कहा—॥ १॥

अयि सखे तव बालकजन्म मां सुखयतेऽद्य निजात्मजजन्मवत्।
इति भवत्पितृतां व्रजनायके समधिरोप्य शशंस तमादरात्॥ २॥

'अयि सखे! आपके पुत्रका जन्म आज मुझे अपने औरस पुत्रके जन्मकी भाँति आनन्द दे रहा है।' इस प्रकार व्रजेश्वर नन्दपर आपका पितृत्व आरोपित करके आदरपूर्वक उनसे कहा—॥ २॥

इह च सन्त्यनिमित्तशतानि ते कटकसीम्नि ततो लघु गम्यताम्।
इति च तद्वचसा व्रजनायको भवदपायभिया द्रुतमाययौ॥ ३॥

'मित्र! यहाँ आपके व्रजकी सीमामें सैकड़ों अपशकुन हो रहे हैं, इसलिये शीघ्र ही लौट जाइये।' वसुदेवजीके यों कहनेपर व्रजेश्वर नन्द आपके अमङ्गलके भयसे भीत होकर तुरंत ही लौट चले॥ ३॥

अवसरे खलु तत्र च काचन व्रजपदे मधुराकृतिरङ्गना।
तरलषट्पदलालितकुन्तला कपटपोतक ते निकटं गता॥ ४॥

उसी अवसरपर—नन्दकी अनुपस्थितिके समय एक सुन्दर स्वरूपवाली युवती व्रजमें आयी। उसके सुसज्जित केशपाशपर भौंरे मँडरा रहे थे। मायासे शिशुरूप धारण करनेवाले भगवन्! वह आपके निकट गयी॥ ४॥

सपदि सा हृतबालकचेतना निशिचरान्वयजा किल पूतना।
व्रजवधूष्विह केयमिति क्षणं विमृशतीषु भवन्तमुपाददे॥ ५॥

वह राक्षस-कुलमें उत्पन्न हुई बालघातिनी पूतना थी। उसे देखकर व्रज-युवतियाँ क्षणभरतक यों विचार करती रहीं कि 'यह कौन है?' तबतक उसने आपको उठा लिया॥ ५॥

ललितभावविलासहृतात्मभिर्युवतिभिः प्रतिरोद्धुमपारिता।
स्तनमसौ भवनान्तनिषेदुषी प्रददुषी भवते कपटात्मने॥ ६॥

ललित हाव-भावके विलाससे जिनका मन अपहृत हो चुका था, वे युवतियाँ उसे रोकनेमें समर्थ न हुईं। तब पूतनाने भवनके भीतर बैठकर मायामूर्तिधारी आपके मुखमें अपना स्तन दे दिया॥ ६॥

समधिरुह्य तदङ्कमशङ्कितस्त्वमथ बालकलोपनरोषितः।
महदिवाम्रफलं कुचमण्डलं प्रतिचुचूषिथ दुर्विषदूषितम्॥ ७॥

तब आप निःशङ्कभावसे उसकी गोदमें बैठकर बड़े-बड़े आमके फलसदृश उसके स्तनमण्डलको, जो घातक विषसे अनुलिप्त था, बारंबार चूसने लगे; क्योंकि आप उसपर बालकोंका वध करनेके कारण रुष्ट हो रहे थे॥ ७॥

असुभिरेव समं धयति त्वयि स्तनमसौ स्तनितोपमनिस्वना।
निरपतद्भयदायि निजं वपुः प्रतिगता प्रविसार्य भुजावुभौ॥ ८॥

आप प्राणोंके साथ-ही-साथ उसका स्तन पी रहे थे, (जिससे असह्य दुःखके कारण वह छटपटाने लगी।) तब उसने अपना भयंकर राक्षसी-शरीर प्रकट कर दिया और मेघध्वनिके समान गम्भीर आर्तनाद करती हुई वह दोनों भुजाओंको फैलाकर (बाहर गोष्ठमें) गिर पड़ी॥ ८॥

भयदघोषणभीषणविग्रहश्रवणदर्शनमोहितवल्लवे।
व्रजपदे तदुरःस्थलखेलनान्यनुभवन्तमगृह्णत गोपिकाः॥ ९॥

व्रजमें उसके भयंकर चीत्कारके श्रवणसे तथा भयानक शरीरके दर्शनसे सभी गोप भयसे मोहित हो रहे थे, परंतु आप उसकी छातीपर खेल रहे थे। तब गोपिकाओंने आपको उठा लिया॥ ९॥

भुवनमङ्गल नामभिरेव ते युवतिभिर्बहुधा कृतरक्षणः।
त्वमयि वातनिकेतननाथ मामगदयन् कुरु तावकसेवकम्॥ १०॥

भुवनमङ्गल! तब युवतियोंने आपके ही नामोंद्वारा अनेक प्रकारसे आपके अङ्गोंकी रक्षा की। अयि वातनिकेतननाथ! आप मुझे नीरोग करके अपना सेवक बना लीजिये॥ १०॥

॥ इति पूतनामोक्षं चत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

एकचत्वारिंशत्तमदशकम्

पूतनाके शवका दाह और गोपियोंका आनन्द

व्रजेश्वरः शौरिवचो निशम्य समाव्रजन्नध्वनि भीतचेताः।
निष्पिष्टनिश्शेषतरुं निरीक्ष्य कञ्चित्पदार्थं शरणं गतस्त्वाम्॥ १॥

नन्दजी वसुदेवजीके वचनको सुनकर व्रजको लौट रहे थे। मार्गमें जिसने अपने शरीरके भारसे समस्त वृक्षोंको छिन्न-भिन्न कर दिया था,

ऐसे किसी अद्भुत पदार्थको देखकर भयभीत-चित्त हो गये और आपकी शरणमें गये॥ १॥

निशम्य गोपीवचनादुदन्तं सर्वेऽपि गोपा भयविस्मयान्धाः।
त्वत्पातितं घोरपिशाचदेहं देहुर्विदूरेऽथ कुठारकृत्तम्॥ २॥

तदनन्तर गोपियोंके मुखसे पूतनाके वृत्तान्तको सुनकर सभी गोपोंने भय और विस्मयसे सहसा अपने नेत्र बंद कर लिये। फिर उन्होंने आपके द्वारा गिराये गये उस भयंकर पिशाच-शरीरको फरसोंसे टुकड़े-टुकड़े करके दूर ले जाकर उसका दाहसंस्कार किया॥ २॥

त्वत्पीतपूतस्तनतच्छरीरात् समुच्चलन्नुच्चतरो हि धूमः।
शङ्कामधादागरवः किमेष किं चान्दनो गौग्गुलवोऽथवेति॥ ३॥

आपके द्वारा पान किये जानेके कारण जिसका स्तन पवित्र हो गया था, उसके उस शरीरसे उत्तम सुगन्धयुक्त धूम निकलने लगा, जो आकाशमें बहुत ऊँचेतक उठा हुआ था और ऐसी शङ्का उत्पन्न कर रहा था कि क्या यह अगुरुका धुआँ है अथवा यह चन्दन या गुग्गुलका धुआँ तो नहीं है?॥ ३॥

मदङ्गसङ्गस्य फलं न दूरे क्षणेन तावद्भवतामपि स्यात्।
इत्युल्लपन्वल्लवतल्लजेभ्यस्त्वं पूतनामातनुथाः सुगन्धिम्॥ ४॥

'मेरे अङ्ग-सङ्गका फल दूर—जन्मान्तरमें नहीं प्राप्त होता, बल्कि तत्काल ही क्षणभरमें प्राप्त हो जाता है। वह आपलोगोंको भी प्राप्त होगा।' गोपालकोंसे मानो यों कहते हुए आपने पूतनाके शरीरमें सुगन्धका विस्तार किया था॥ ४॥

चित्रं पिशाच्या न हतः कुमारश्चित्रं पुरैवाकथि शौरिणेदम्।
इति प्रशंसन् किल गोपलोको भवन्मुखालोकरसे न्यमाङ्क्षीत्॥ ५॥

'आश्चर्य है कि इस राक्षसीने कुमारको मार नहीं डाला। इस भयको वसुदेवजीने पहले ही बतला दिया था—यह और भी आश्चर्यजनक है'—इस प्रकार गोपसमुदाय वसुदेवजीकी प्रशंसा करता हुआ आपके मुखावलोकनके आनन्दमें निमग्न हो गया॥ ५॥

दिने दिनेऽथ प्रतिवृद्धलक्ष्मीरक्षीणमाङ्गल्यशतो व्रजोऽयम्।
भवन्निवासादयि वासुदेव प्रमोदसान्द्रः परितो विरेजे॥ ६॥

अयि वासुदेव! आपके निवास करनेसे जिसमें प्रतिदिन लक्ष्मीकी वृद्धि हो रही थी, सैकड़ों मङ्गल-कार्य बिना किसी क्षति या बाधाके होते रहते थे तथा जो घनीभूत हर्षसे परिपूर्ण था, ऐसा यह व्रज चारों ओरसे शोभा पाने लगा॥ ६॥

गृहेषु ते कोमलरूपहासमिथःकथासंकलिताः कमन्यः।
वृत्तेषु कृत्येषु भवन्निरीक्षासमागताः प्रत्यहमत्यनन्दन्॥ ७॥

घरोंमें युवतियाँ आपके सुन्दर रूप तथा हासकी परस्पर कथाएँ कहती हुई उलझी रहती थीं। गृहकार्य समाप्त हो जानेपर वे प्रतिदिन आपका दर्शन करने आती थीं और आपको निहारकर अत्यन्त आनन्दित होती थीं॥ ७॥

अहो कुमारो मयि दत्तदृष्टिः स्मितं कृतं मां प्रति वत्सकेन।
एह्येहि मामित्युपसार्य पाणिं त्वयीश किं किं न कृतं वधूभिः॥ ८॥

कोई कहती थी, 'अहो! लाला मेरी ओर टकटकी लगाकर देख रहा है। कोई कहती थी, बच्चेने मुझे देखकर मन्द-मन्द मुसकराया है। कोई हाथ पसारकर 'आओ, मेरे पास आओ'—यों कहती थी। ईश! गोपवधुएँ आपके प्रति क्या-क्या चेष्टा नहीं करती थीं? अर्थात् वे आपको गोदमें लेना, आलिङ्गन करना, चूमना और लाड़ लड़ाना आदि सब कुछ करती थीं॥ ८॥

भवद्वपुःस्पर्शनकौतुकेन करात्करं गोपवधूजनेन।
नीतस्त्वमाताम्रसरोजमालाव्यालम्बिलोलम्बतुलामलासीः॥ ९॥

जब आपके शरीर-स्पर्शके कुतूहलसे भरी हुई गोपिकाएँ आपको परस्पर एकके हाथसे दूसरीके हाथमें देती थीं, उस समय आप लाल कमलोंकी मालापर मँडराते हुए मधुलोभी भ्रमरकी समानताको प्रकट करने लगे थे॥ ९॥

निपाययन्ती स्तनमङ्कगं त्वां विलोकयन्ती वदनं हसन्ती।
दशां यशोदा कतमां न भेजे स तादृशः पाहि हरे गदान्माम्॥ १०॥

जिस समय यशोदा आपको गोदमें लेकर स्तन पिलाती हुई आपके मुखकी ओर निहारकर हँसती थीं, उस समय उन्हें वात्सल्य-स्नेहकी कौन-सी दशा नहीं प्राप्त होती थी अर्थात् स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च आदि सभी अवस्थाएँ क्रमशः उनके अङ्गोंमें प्रकट होने लगीं। हरे! ऐसे भक्तवत्सल आप मुझे इस रोगसे बचाइये॥ १०॥

॥ इति पूतनाशरीरदाहवर्णनं गोपीनां बाललालनकौतुकवर्णनं च एकचत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

द्विचत्वारिंशत्तमदशकम्

शकटासुर-उद्धार

कदापि जन्मर्क्षदिने तव प्रभो निमन्त्रितज्ञातिवधूमहीसुरा।
महानसस्त्वां सविधे निधाय सा महानसादौ ववृते व्रजेश्वरी॥ १॥

प्रभो! एक बार आपकी वर्ष-गाँठके दिन व्रजेश्वरी यशोदाने अपने जाति-भाइयों, गोपाङ्गनाओं तथा ब्राह्मणोंको भोजनार्थ आमन्त्रित कर रखा था, जिससे वे आपको एक महान् शकटके समीप सुलाकर रसोई आदिके कार्यमें लग गयीं॥ १॥

ततो भवत्त्राणनियुक्तबालकप्रभीतिसंक्रन्दनसंकुलारवैः।
विमिश्रमश्रावि भवत्समीपतः परिस्फुटद्दारुचटच्चटारवः॥ २॥

इतनेमें ही उन्हें आपके समीपसे आपकी रक्षाके लिये नियुक्त किये गये बालकोंके भययुक्त आक्रन्दनके उच्च स्वरसे संयुक्त फटती हुई लकड़ीका चटचट शब्द सुनायी पड़ा॥ २॥

ततस्तदाकर्णनसम्भ्रमश्रमप्रकम्पिवक्षोजभरा व्रजाङ्गनाः।
भवन्तमन्तर्ददृशुः समन्ततो विनिष्पतद्दारुणदारुमध्यगम्॥ ३॥

तब उस शब्दके सुननेसे सम्भ्रान्त होनेके कारण दौड़नेके परिश्रमसे जिनके स्थूल स्तन हिल रहे थे, उन व्रजाङ्गनाओंने घरसे बाहर जाकर आपको चारों ओरसे गिरती हुई भारी-भारी लकड़ियोंके बीच विद्यमान देखा॥ ३॥

शिशोरहो किं किमभूदिति द्रुतं प्रधाव्य नन्दः पशुपाश्च भूसुराः।
भवन्तमालोक्य यशोदया धृतं समाश्वसन्नश्रुजलार्द्रलोचनाः॥ ४॥

'अहो! बच्चेको क्या हो गया, क्या हो गया'—यों कहते हुए नन्द, गोपगण तथा ब्राह्मण शीघ्र ही दौड़ते हुए वहाँ आये और आपको यशोदाद्वारा उठाया हुआ देखकर आश्वस्त हुए। उस समय उनके नेत्र आँसुओंसे आर्द्र हो रहे थे॥ ४॥

कस्को नु कौतस्कुत एष विस्मयो
विशङ्कटं यच्छकटं विपाटितम्।
न कारणं किञ्चिदिहेति ते स्थिताः
स्वनासिकादत्तकरास्त्वदीक्षकाः॥ ५॥

वे कह रहे थे—अरे! यह आश्चर्यजनक काण्ड करनेवाला कौन है, कैसा है? कहाँसे आया है? किस कारणसे आया है? जिसने इस विशाल शकटको टूक-टूक कर दिया है। जब उन्हें वहाँ कोई कारण ज्ञात नहीं हुआ, तब वे अपनी नाकपर हाथ रखकर चकित दृष्टिसे आपकी ओर निहारते हुए ठगे-से खड़े रहे॥ ५॥

कुमारकस्यास्य पयोधरार्थिनः प्ररोदने लोलपदाम्बुजाहतम्।
मया मया दृष्टमनो विपर्यगादितीश ते पालकबालका जगुः॥ ६॥

ईश! तब आपके रक्षक बालकोंने बतलाया—'हाँ मैंने देखा है, हाँ-हाँ मैंने भी देखा है, इस लल्लाने दूध पीनेकी इच्छासे रोते हुए जब अपने चरणकमलोंको उछाला है, तब उनसे आहत होकर छकड़ा उलट गया है'॥ ६॥

भिया तदा किञ्चिदजानतामिदं कुमारकाणामतिदुर्घटं वचः।
भवत्प्रभावाविदुरैरितीरितं मनागिवाशङ्क्यत दृष्टपूतनैः॥ ७॥

तब आपके प्रभावसे अनभिज्ञ कुछ लोग यों कहने लगे—'ये अबोध बालक हैं। ये सब भयसे कह रहे हैं। इनका यह कथन सर्वथा दुर्घट है।' परंतु जिन्होंने पूतनाको देखा था, उन नन्दादि गोपोंको (आपके प्रभावसे ही यह कार्य हुआ है, ऐसी) थोड़ी आशङ्का हो गयी॥ ७॥

प्रवालताम्रं किमिदं पदं क्षतं सरोजरम्यौ नु करौ विराजितौ।
इति प्रसर्पत्करुणातरङ्गितास्त्वदङ्गमापस्पृशुरङ्गनाजनाः॥ ८॥

तब 'मूँगेके सदृश अरुण वर्णवाले इस चरणमें घाव तो नहीं लगा? कमलके समान सुशोभित इन रमणीय हाथोंमें चोट तो नहीं आयी?'—यों कहकर विस्तृत करुणाकी तरंगोंमें बहती हुई गोपाङ्गनाएँ आपके निकट जाकर आपके शरीरको धीरे-धीरे सहलाने लगीं॥ ८॥

अये सुतं देहि जगत्पतेः कृपातरङ्गपातात्परिपातमद्य मे।
इति स्म संगृह्य पिता त्वदङ्गकं मुहुर्मुहुः श्लिष्यति जातकण्टकः॥ ९॥

उस समय नन्दबाबाने 'अये! आज जगदीश्वरकी कृपाके लेशमात्र संयोगसे सुरक्षित मेरे पुत्रको मुझे दो।'—यों कहकर आपको गोदमें ले लिया। तब उनका शरीर रोमाञ्चित हो उठा और वे बारंबार आपको अपने हृदयसे लगाने लगे॥ ९॥

अनोनिलीनः किल हन्तुमागतः सुरारिरेवं भवता विहिंसितः।
रजोऽपि नो दृष्टममुष्य तत्कथं स शुद्धसत्त्वे त्वयि लीनवान् ध्रुवम्॥ १०॥

इस प्रकार शकटमें छिपकर बैठा हुआ शकटासुर निश्चय ही आपको मारनेके लिये आया था, किंतु वह स्वयं आपके द्वारा मृत्युका ग्रास बना दिया गया। परंतु इसका क्या कारण है कि उसके शरीरका धूलि-कण भी दिखायी नहीं पड़ा? ऐसा प्रतीत होता है कि वह अवश्य ही शुद्ध सत्त्वस्वरूप आपमें सशरीर लीन हो गया॥ १०॥

प्रपूजितैस्तत्र ततो द्विजातिभिर्विशेषतो लम्भितमङ्गलाशिषः।
व्रजं निजैर्बाल्यरसैर्विमोहयन्मरुत्पुराधीश रुजां जहीहि मे॥ ११॥

तदनन्तर नन्दबाबाने ब्राह्मणोंका विधिवत् पूजन किया और उन्होंने विशेषरूपसे आपके विघ्नविनाशके लिये माङ्गलिक आशीर्वाद दिये। इस प्रकार आप अपनी बाल्य-मधुरिमासे व्रज-वासियोंको विमोहित करने लगे। मरुत्पुराधीश! मुझे रोगोंसे मुक्त कर दीजिये॥ ११॥

॥ इति शकटासुरवधवर्णनं द्विचत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

त्रयश्चत्वारिंशत्तमदशकम्

तृणावर्त-वध

त्वामेकदा गुरुमरुत्पुरनाथ वोढुं
गाढाधिरूढगरिमाणमपारयन्ती।
माता निधाय शयने किमिदं बतेति
ध्यायन्त्यचेष्टत गृहेषु निविष्टशङ्का॥ १॥

गुरुमरुत्पुरनाथ! एक बार आपने अपने शरीरकी गरिमाको इतना अधिक बढ़ा लिया कि माता आपको गोदमें धारण करनेमें समर्थ न हो सकीं, तब उन्होंने आपको पालनेमें लिटा दिया और शङ्कालु होकर 'यह कैसे आश्चर्यकी बात है!'—यों सोचती हुई वे गृह-कार्यमें लग गयीं॥ १॥

तावद्विदूरमुपकर्णितघोरघोष-
व्याजृम्भिपांसुपटलीपरिपूरिताशः।
वात्यावपुः स किल दैत्यवरस्तृणाव-
र्ताख्यो जहार जनमानसहारिणं त्वाम्॥ २॥

तबतक दूरसे ही सुनायी पड़नेवाले भयंकर शब्द तथा अधिक मात्रामें बढ़ी हुई धूलि-वर्षासे जिसने दसों दिशाओंको परिपूर्ण कर दिया था, वह महादैत्य तृणावर्त बवंडरके रूपमें आकर भक्तजनोंके मनका अपहरण करनेवाले आपको चुरा ले चला॥ २॥

उद्दामपांसुतिमिराहतदृष्टिपाते
द्रष्टुं किमप्यकुशले पशुपाललोके।
हा बालकस्य किमिति त्वदुपान्तमासा
माता भवन्तमविलोक्य भृशं रुरोद॥ ३॥

उस समय उत्कट धूलि-वर्षा तथा अन्धकारके कारण जिसकी दृष्टिशक्ति नष्ट हो गयी थी, वह गोपसमुदाय कुछ भी देखनेमें समर्थ न हो सका। तबतक 'मेरे लल्लाका क्या हाल है?'—यों सोचकर माता यशोदा दौड़कर आपके पास जा पहुँचीं; परंतु वहाँ आपको न देखकर फूट-फूटकर रोने लगीं॥ ३॥

तावत्स दानववरोऽपि च दीनमूर्त्ति-
र्भावत्कभारपरिधारणलूनवेगः।
सङ्कोचमाप तदनु क्षतपांसुघोषे
घोषे व्यतायत भवज्जननीनिनादः॥ ४॥

तबतक आपके भारी भारको धारण करनेसे जिसकी गमन-शक्ति नष्ट हो गयी थी और जिसका शरीर क्षीण हो गया था, वह महादानव तृणावर्त भी निश्चेष्ट हो गया। तत्पश्चात् धूलि-वर्षा और झंझारवके शान्त होनेपर व्रजमें आपकी माताका रुदन शब्द व्याप्त हो गया॥ ४॥

रोदोपकर्णनवशादुपगम्य गेहं
क्रन्दत्सु नन्दमुखगोपकुलेषु दीनः।
त्वां दानवस्त्वखिलमुक्तिकरं मुमुक्षु-
स्त्वय्यप्रमुञ्चति पपात वियत्प्रदेशात्॥ ५॥

यशोदाके रोदनको सुननेके कारण नन्दादि सारा गोपसमुदाय उनके गृहमें जाकर क्रन्दन करने लगा। इधर दानव तृणावर्त समस्त प्राणियोंके मुक्तिदाता आपको छोड़ देनेकी चेष्टा करने लगा; परंतु जब आपने उसके गलेको नहीं छोड़ा, तब वह दीन होकर आकाशप्रदेशसे भूतलपर गिर पड़ा॥ ५॥

रोदाकुलास्तदनु गोपगणा बहिष्ठ-
पाषाणपृष्ठभुवि देहमतिस्थविष्ठम्।
प्रैक्षन्त हन्त निपतन्तममुष्य वक्ष-
स्यक्षीणमेव च भवन्तमलं हसन्तम्॥ ६॥

तत्पश्चात् रोनेसे विह्वल हुए गोपोंने गोष्ठके बाहर स्थित शिलाकी पृष्ठभूमिपर गिरते हुए एक अत्यन्त स्थूल शरीरको देखा तथा उसके वक्षःस्थलपर किलकारी मारकर हँसते हुए एवं अक्षत शरीरवाले आपको भी देखा॥ ६॥

ग्रावप्रपातपरिपिष्टगरिष्ठदेह-
भ्रष्टासुदुष्टदनुजोपरि धृष्टहासम्।
आघ्नानमम्बुजकरेण भवन्तमेत्य
गोपा दधुर्गिरिवरादिव नीलरत्नम्॥ ७॥

तब शिलापृष्ठपर गिरनेसे चूर्ण हुए उस भारी-भरकम शरीरसे जिसके प्राण निकल गये थे, उस दुष्ट दानवके वक्षःस्थलपर अपने कमल-सदृश हाथोंसे पीटते और उन्मुक्त हास करते हुए आपके निकट जाकर गोपोंने आपको उसी प्रकार उठाया मानो किसी गिरिवरसे नीलरत्न उठा लिया गया हो॥ ७॥

एकैकमाशु परिगृह्य निकामनन्दं
नन्दादिगोपपरिरब्धविचुम्बिताङ्गम् ।
आदातुकामपरिशङ्कितगोपनारी-
हस्ताम्बुजप्रपतितं प्रणुमो भवन्तम्॥ ८ ॥

तदनन्तर शीघ्र ही परमानन्दमय आपके एक-एक अङ्गको पकड़कर नन्दादि गोपोंद्वारा एक ही साथ जिनके समस्त अङ्गोंका परिचुम्बन हो रहा था तथा जो 'यह मुझे गोदमें लेनेके लिये उत्सुक हैं'—ऐसी आशङ्कासे गोपिकाओंके कर-कमलोंपर स्वयं टूट पड़ते थे, उन आपका हमलोग स्तवन करते हैं॥ ८॥

भूयोऽपि किं नु कृणुमः प्रणतार्तिहारी
गोविन्द एव परिपालयतात् सुतं नः।
इत्यादि मातरपितृप्रमुखैस्तदानीं
सम्प्रार्थितस्त्वदवनाय विभो त्वमेव॥ ९ ॥

विभो! उस समय फिर भी 'भला, हमलोग क्या कर सकते हैं, ऐसे संकटके अवसरपर प्रणतजनोंके दुःखनाशक गोविन्द ही मेरे पुत्रकी रक्षा करें।'—इत्यादि रूपसे आपके ही माता-पिता, ताऊ आदि गोप आपकी सुरक्षाके लिये आपसे ही प्रार्थना करने लगे॥ ९॥

वातात्मकं दनुजमेवमयि प्रधुन्वन्
वातोद्भवान् मम गदान् किमु नो धुनोषि।
किं वा करोमि पुनरप्यनिलालयेश
निश्शेषरोगशमनं मुहुरर्थये त्वाम्॥ १०॥

अयि अनिलालयेश! इस प्रकार वायु-रूपधारी दानव तृणावर्तका तो आपने संहार कर डाला; परंतु वायुसे उत्पन्न हुए मेरे रोगोंको क्यों नहीं नष्ट कर देते? मैं अपने सम्पूर्ण रोगोंकी शान्तिके लिये आपसे बार-बार प्रार्थना करता हूँ। मैं इसके अतिरिक्त और कर ही क्या सकता हूँ॥ १०॥

॥ इति तृणावर्तवधवर्णनं त्रयश्चत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमदशकम्

श्रीकृष्णके जातकर्म आदि संस्कारका वर्णन

गूढं वसुदेवगिरा कर्तुं ते निष्क्रियस्य संस्कारान्।
हृद्गतहोरातत्त्वो गर्गमुनिस्त्वद्गृहं विभो गतवान्॥ १॥

विभो! जिन्हें ज्यौतिष शास्त्रका यथार्थ तत्त्व सम्यक् प्रकारसे विदित था, वे मुनि गर्गाचार्य वसुदेवजीके कहनेसे गुप्तरूपसे आप निष्क्रियका नामकरणादि संस्कार करनेके लिये आपके घरपर पधारे॥ १॥

नन्दोऽथ नन्दितात्मा वृन्दिष्ठं मानयन्नमुं यमिनाम्।
मन्दस्मितार्द्रमूचे त्वत्संस्कारान् विधातुमुत्सुकधीः॥ २॥

उन्हें देखकर नन्दजीका हृदय आह्लादित हो उठा। उन्होंने संयमशीलोंमें देवतुल्य वन्दनीय गर्गमुनिका यथाविधि आदर-सत्कार किया। तदनन्तर उत्सुकचित्त होकर मन्द मुसकराहटसे आर्द्र वाणीमें उन्होंने मुनिसे आपके संस्कार करनेके लिये कहा॥ २॥

यदुवंशाचार्यत्वात् सुनिभृतमिदमार्य कार्यमिति कथयन्।
गर्गो निर्गतपुलकश्चक्रे तव साग्रजस्य नामानि॥ ३॥

तब गर्गाचार्यजीने यों उत्तर दिया—'आर्य! मैं यदुवंशका आचार्य हूँ, अतः यह कार्य अत्यन्त गुप्तरूपसे सम्पन्न होना चाहिये। (क्योंकि मेरे संस्कार करनेसे कहीं कंसको शङ्का न हो जाय कि यह यदुकुमार है।)' तदनन्तर आपके स्पर्शसे पुलकित शरीरवाले गर्गमुनि अग्रजसहित आपका नामकरण करनेको उद्यत हुए॥ ३॥

कथमस्य नाम कुर्वे सहस्रनाम्नो ह्यनन्तनाम्नो वा।
इति नूनं गर्गमुनिश्चक्रे तव नाम नाम रहसि विभो॥ ४॥

उस समय मुनि 'भला, जिसके हजारों अथवा अनन्त नाम हैं, उसका नामकरण मैं कैसे करूँ?' निश्चय ही इस विचारमें डूब गये। विभो! तत्पश्चात् एकान्तमें गर्गाचार्यने आपका नामकरण किया॥ ४॥

कृषिधातुणकाराभ्यां सत्तानन्दात्मतां किलाभिलपत्।
जगदघकर्षित्वं वाऽकथयदृषिः कृष्णनाम ते व्यतनोत्॥ ५॥

ऋषिने कृषिधातु और णकारसे, जो क्रमशः सत्ता और आनन्दके वाचक हैं, आपकी सत्तानन्दस्वरूपता बतायी अथवा जगत्के पापका कर्षण करना—यह आपका स्वभाव बताया और इसी तात्पर्यसे आपका नाम 'कृष्ण' रख दिया॥ ५॥

अन्यांश्च नामभेदान् व्याकुर्वन्नग्रजे च रामादीन्।
अतिमानुषानुभावं न्यगदत्त्वामप्रकाशयन् पित्रे॥ ६॥

पुनः आपके अन्य विभिन्न नामोंकी व्याख्या करते हुए उन्होंने आपके

अग्रजका 'राम' आदि नाम रखा। तदनन्तर आपको (विष्णु हैं—यों) प्रकट न करते हुए उन्होंने नन्दबाबासे आपका प्रभाव अलौकिक बताया॥ ६॥

स्निह्यति यस्तव पुत्रे मुह्यति स न मायिकैः पुनः शोकैः।
द्रुह्यति यः स तु नश्येदित्यवदत्ते महत्त्वमृषिवर्यः॥ ७॥

'जो आपके पुत्रसे स्नेह करेगा अर्थात् कृष्णभक्त होगा, वह पुनः मायिक शोकोंसे मोहित नहीं होगा—उसे जनन-मरणादिके दुःखका अनुभव नहीं करना पड़ेगा। किंतु जो आपके पुत्रसे द्रोह करेगा अर्थात् कृष्णविमुख होगा, वह नष्ट हो जायगा।' इस प्रकार उन ऋषिश्रेष्ठने आपके महत्त्वका वर्णन किया॥ ७॥

जेष्यति बहुतरदैत्यान् नेष्यति निजबन्धुलोकममलपदम्।
श्रोष्यति सुविमलकीर्तीरस्येति भवद्विभूतिमृषिरूचे॥ ८॥

'यह बहुत-से दैत्योंको जीत लेगा, अपने बन्धुसमुदायको अमल पदकी प्राप्ति करायेगा और अपनी अत्यन्त निर्मल कीर्तिका श्रवण करेगा।'—यों ऋषिने आपके ऐश्वर्यका कथन किया॥ ८॥

अमुनैव सर्वदुर्गं तरितास्थ कृतास्थमत्र तिष्ठध्वम्।
हरिरेवेत्यनभिलपन्नित्यादि त्वामवर्णयत् स मुनिः॥ ९॥

'इसी पुत्रके द्वारा तुमलोग समस्त संकटोंसे पार हो जाओगे, अतः इस पुत्रमें तुमलोग आस्था बनाये रहो।' इस प्रकार 'ये विष्णु हैं' इतना ही मात्र न कहकर आपके कृष्णावतारके शेष सारे कर्मोंका गर्गमुनिने वर्णन कर दिया॥ ९॥

गर्गेऽथ निर्गतेऽस्मिन् नन्दितनन्दादिनन्द्यमानस्त्वम्।
मद्गदमुद्गतकरुणो निर्गमय श्रीमरुत्पुराधीश॥ १०॥

यों कार्य सम्पन्न करके गर्गमुनि वहाँसे चले गये। तदनन्तर आनन्दित हुए नन्द आदि गोप बड़े लाड़-प्यारसे आपका लालन-पालन करने लगे। श्रीमरुत्पुराधीश! आप मुझपर कृपा करके मेरे रोगोंका निराकरण कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति नामकरणवर्णनं चतुश्चत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमदशकम्

श्रीकृष्णकी बालक्रीड़ा

अयि सबल मुरारे पाणिजानुप्रचारैः
किमपि भवनभागान् भूषयन्तौ भवन्तौ।
चलितचरणकञ्जौ मञ्जुमञ्जीरशिञ्जा-
श्रवणकुतुकभाजौ चेरतुश्चारुवेगात्॥ १॥

हे बलरामसहित मुरारि श्रीकृष्ण! अब आप दोनों घुटनों और हाथोंके बल बकैयाँ चलते हुए भवनके विभिन्न भागोंको सुशोभित करने लगे। उस समय चरणकमलके हिलनेसे नूपुरकी बड़ी मधुर झनकार होती थी, जिसे सुननेसे कौतुकवश आप दोनों बड़े सुन्दर ढंगसे वेगपूर्वक विचरने लगते थे॥ १॥

मृदु मृदु विहसन्तावुन्मिषद्दन्तवन्तौ
वदनपतितकेशौ दृश्यपादाब्जदेशौ।
भुजगलितकरान्तव्यालगत्कङ्कणाङ्कौ
मतिमहरतमुच्चैः पश्यतां विश्वनृणाम्॥ २॥

बीच-बीचमें मन्द-मन्द मुसकरा देते थे, जिससे नयी-नयी निकलती आपकी दँतुलियाँ दीख पड़ती थीं। भागनेके कारण आपके मुखपर घुँघराली अलकें बिखर जाती थीं। घुटनेके बल चलनेसे आपके चरणकमलके तलवे स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते थे। भुजाओंके ऊपरी भागसे खिसककर मणिबन्धमें सटे हुए कङ्कणोंसे आपकी अनोखी शोभा हो रही थी। इस प्रकार आप दोनों अपनेको निहारनेवाले सभी मनुष्योंके मनको हठात् हर लेते थे॥ २॥

अनुसरति जनौघे कौतुकव्याकुलाक्षे
किमपि कृतनिनादं व्याहसन्तौ द्रवन्तौ।
वलितवदनपद्मं पृष्ठतो दत्तदृष्टी
किमिव न विदधाथे कौतुकं वासुदेव॥ ३॥

जब कुछ लोग आपके पीछे चलने लगते तब आपके नेत्र कौतुकवश चञ्चल हो जाते और आप दोनों अद्भुत किलकारीके साथ हँसते हुए भागने लगते। पुनः मुखकमलको तिरछा करके पीछेकी ओर देखने लगते। वासुदेव! इस प्रकार आप दोनों कौन-सा कौतुक नहीं करते थे॥ ३॥

द्रुतगतिषु पतन्तावुत्थितौ लिप्तपङ्कौ
दिवि मुनिभिरपङ्कैः सस्मितं वन्द्यमानौ।
द्रुतमथ जननीभ्यां सानुकम्पं गृहीतौ
मुहुरपि परिरब्धौ द्राग्युवां चुम्बितौ च॥ ४॥

कभी-कभी वेगसे भागते समय आप दोनों व्रजकी कीचमें गिर पड़ते, फिर पङ्कलिप्त शरीरसे ही उठ जाते थे। उस समय आकाशमें देखनेके लिये आये हुए पाप-पङ्करहित मुनिगण मुसकराते हुए आप दोनोंकी वन्दना करने लगते। तदनन्तर दोनों माताएँ यशोदा और रोहिणी दयापरवश हो शीघ्र ही दौड़कर आप दोनोंको गोदमें उठा लेतीं, बारंबार हृदयसे लगातीं और चुम्बन करने लगतीं॥ ४॥

स्नुतकुचभरमङ्के धारयन्ती भवन्तं
तरलमति यशोदा स्तन्यदा धन्यधन्या।
कपटपशुप मध्ये मुग्धहासाङ्कुरं ते
दशनमुकुलहृद्यं वीक्ष्य वक्त्रं जहर्ष॥ ५॥

आपको स्तन्य पान करानेवाली कृपाकुला माता यशोदाके स्तनोंसे दूध झरने लगता और वे आपको अङ्कमें लेकर धन्य-धन्य हो जाती थीं। मायामय गोपरूपधारी भगवन्! स्तनपान करते समय बीच-बीचमें आप हँस देते थे, जिससे आपकी छोटी-छोटी दँतुलियोंके दीखनेसे हृदयहारी आपके मुखको देखकर यशोदा हर्ष-समुद्रमें हिलोरें लेने लगतीं॥ ५॥

तदनु चरणचारी दारकैः साकमारा-
न्निलयततिषु खेलन् बालचापल्यशाली।

भवनशुकविडालान् वत्सकांश्चानुधावन्
कथमपि कृतहासैर्गोपकैर्वारितोऽभूः ॥ ६ ॥

कुछ ही दिनोंमें आप पैरोंके बल खड़े होकर चलने लगे। तब बाल-चपलतावश समवयस्क ग्वालबालोंके साथ समीपस्थ पड़ोसियोंके घरोंमें खेलने जाने लगे। वहाँ जब घरके पालतू शुक, बिलाव तथा बछड़ोंके पीछे दौड़ने लगते, तब हँसते हुए गोप बड़ी कठिनतासे आपको रोक पाते थे॥ ६ ॥

हलधरसहितस्त्वं यत्र यत्रोपयातो
विवशपतितनेत्रास्तत्र तत्रैव गोप्यः।
विगलितगृहकृत्या विस्मृतापत्यभृत्या
मुरहर मुहुरत्यन्ताकुला नित्यमासन्॥ ७ ॥

मुरारे! हलधरके साथ आप जहाँ-जहाँ जाते, वहीं-वहीं गोपियोंके नेत्र विवश होकर आपके ऊपर पड़ते। उनके गृहकार्य पड़े ही रह जाते। यहाँतक कि उन्हें अपने शिशुओं तथा नौकरों-चाकरोंका भी स्मरण नहीं रहता। इस प्रकार वे प्रतिदिन आपकी बाललीला देखनेमें ही व्यग्र रहती थीं॥ ७ ॥

प्रतिनवनवनीतं गोपिकादत्तमिच्छन्
कलपदमुपगायन् कोमलं क्वापि नृत्यन्।
सदययुवतिलोकैरर्पितं सर्पिरश्नन्
क्वचन नवविपक्वं दुग्धमप्यापिबस्त्वम्॥ ८ ॥

गोपिकाएँ मुझे सद्यः निकाला हुआ ताजा मक्खन दें—इस इच्छासे आप कहीं तो मीठे सुरीले पद गाते थे और कहीं-कहीं ठुमुक-ठुमुककर नाचते थे। तब दयालु युवतियाँ आपको मक्खन देती थीं। इस प्रकार आप कहीं सद लोना मक्खन खाते थे और कहीं गरमागरम ताजा दूध पीते थे॥ ८ ॥

मम खलु बलिगेहे याचनं जातमास्ता-
मिह पुनरबलानामग्रतो नैव कुर्वे।

इति विहितमतिः किं देव संत्यज्य याच्ञां
दधिघृतमहरस्त्वं चारुणा चोरणेन॥ ९॥

'पूर्वकालमें मैंने बलिके घर जाकर याचना की थी, सो वह याचना वहीं रह जाय; अब मैं पुनः इन अबलाओंके आगे याचना-कर्म नहीं करूँगा।' देव! क्या मनमें ऐसा ही विचार करके आप माँगना छोड़कर मधुर मनोहर चोरी-लीलाद्वारा दही-मक्खन चुराने लगे थे?॥ ९॥

तव दधिघृतमोषे घोषयोषाजनाना-
मभजत हृदि रोषो नावकाशं न शोकः।
हृदयमपि मुषित्वा हर्षसिन्धौ न्यधास्त्वं
स मम शमय रोगान् वातगेहाधिनाथ॥ १०॥

आपके दही-माखन चुरानेपर गोपाङ्गनाओंके हृदयमें क्रोध और शोकको प्रवेश करनेका अवकाश ही नहीं मिलता, उलटे उन्हें हर्ष होता था; क्योंकि आप उनके हृदयको भी चुराकर हर्ष-सिन्धुमें निमग्न कर देते थे। हे वातगेहाधिनाथ! ऐसे आप मेरे रोगोंको शान्त कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति बालक्रीडावर्णनं पञ्चचत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

षट्चत्वारिंशत्तमदशकम्

विश्वरूप-प्रदर्शन

अयि देव पुरा किल त्वयि स्वयमुत्तानशये स्तनन्धये।
परिजृम्भणतो व्यपावृते वदने विश्वमचष्ट वल्लवी॥ १॥

अयि देव! शैशवावस्थामें एक बार स्वयं आप माताकी गोदमें उत्तान लेटे हुए दूध पी रहे थे। उसी समय जँभाई आनेके कारण आपने अपना मुख खोल दिया। उस मुखमें गोपी यशोदाको सारा विश्व दिखायी पड़ा॥ १॥

पुनरप्यथ बालकैः समं त्वयि लीलानिरते जगत्पते।
फलसञ्चयवञ्चनक्रुधा तव मृद्भोजनमूचुरर्भकाः॥ २॥

जगदीश्वर! पुनः कुछ वयस्क होनेपर जब आप बालकोंके साथ खेलमें तल्लीन थे, तब फल-संग्रहसे वञ्चित किये जानेके कारण क्रुद्ध हुए ग्वालबालोंने माता यशोदासे कहा कि 'कृष्णने मिट्टी खायी है'॥ २॥

अयि ते प्रलयावधौ विभो क्षितितोयादिसमस्तभक्षिणः।
मृदुपाशनतो रुजा भवेदिति भीता जननी चुकोप सा॥ ३॥

अयि विभो! प्रत्येक प्रलयके अवसरपर जो पृथ्वी, जल आदि समस्त प्रपञ्चको भक्षण कर लेनेवाले हैं, ऐसे आपको थोड़ी-सी मिट्टी खा लेनेसे रोग हो जायगा—इस भयसे भीत हुई माता यशोदा आपपर कुपित हो उठीं और पूछने लगीं॥ ३॥

अयि दुर्विनयात्मक त्वया किमु मृत्स्ना बत वत्स भक्षिता।
इति मातृगिरं चिरं विभो वितथां त्वं प्रतिजज्ञिषे हसन्॥ ४॥

'क्यों रे नटखट बच्चे! तूने मिट्टी क्यों खायी है?' यों बड़ी देरतक माता डाँटती रहीं। विभो! तब आपने हँसते हुए माताके कथनको असत्य बताया कि 'माँ! मैंने मिट्टी नहीं खायी है'॥ ४॥

अयि ते सकलैर्विनिश्चिते विमतिश्चेद्वदनं विदार्यताम्।
इति मातृविभर्त्सितो मुखं विकसत्पद्मनिभं व्यदारयः॥ ५॥

तब माताने कहा—'अरे! तेरे ये सखा और बलदाऊ—सभी तो तेरे मिट्टी खानेकी बात निश्चित बता रहे हैं। यदि इनकी बातसे तू सहमत नहीं है तो अपना मुख खोल।' यों माताके भर्त्सना करनेपर आपने अपने खिले हुए कमल-सदृश मुखको खोल दिया॥ ५॥

अपि मृल्लवदर्शनोत्सुकां जननीं तां बहु तर्पयन्निव।
पृथिवीं निखिलां न केवलं भुवनान्यप्यखिलान्यदीदृशः॥ ६॥

माता उस मुखमें मृत्कणको ही देखनेके लिये उत्सुक थीं, किंतु आपने उन्हें अतिशय परितृप्त करते हुए-से केवल सम्पूर्ण पृथ्वी ही नहीं, समस्त भुवनोंको भी दिखलाया॥ ६॥

कुहचिद् वनमम्बुधिः क्वचित् क्वचिदभ्रं कुहचिद् रसातलम्।
मनुजा दनुजाः क्वचित्सुरा ददृशे किन्न तदा त्वदानने॥ ७॥

उस समय माताने आपके मुखके भीतर कहीं वन, कहीं सागर, कहीं आकाश, कहीं रसातल, कहीं मानव, दानव और देवता—इस प्रकार क्या-क्या नहीं देखा? अर्थात् सारा ब्रह्माण्ड देख लिया॥ ७॥

कलशाम्बुधिशायिनं पुनः परवैकुण्ठपदाधिवासिनम्।
स्वपुरश्च निजार्भकात्मकं कतिधा त्वां न ददर्श सा मुखे॥ ८॥

उसने उस मुखमें आपको कलशाम्बुधि—क्षीरसागरमें शेष-शय्यापर शयन करते, पुनः परमपद वैकुण्ठमें निवास करते हुए और फिर अपने आगे अपने पुत्ररूपमें—यों किस-किस रूपमें नहीं देखा? अर्थात् आपके विभिन्न रूप देखे॥ ८॥

विकसद्भुवने मुखोदरे ननु भूयोऽपि तथाविधाननः।
अनया स्फुटमीक्षितो भवाननवस्थां जगतां बतातनोत्॥ ९॥

जिसमें सारा ब्रह्माण्ड दीख रहा था उस मुखके भीतर यशोदाने स्पष्टरूपसे पुनः उसी प्रकारके मुखवाले अपने पुत्रको देखा—अर्थात् यशोदाने सामने खड़े हुए अपने पुत्रके मुखमें जगत् और अपने पुत्रको देखा। पुनः उस दीखते हुए पुत्रके मुखमें जगत् और अपने पुत्रको देखा। आगे भी वैसा ही दीखता गया। इस प्रकार आपने जगत्‌की अनवस्था—अनन्तताका विस्तार किया॥ ९॥

धृततत्त्वधियं तदा क्षणं जननीं तां प्रणयेन मोहयन्।
स्तनमम्ब दिशेत्युपासजन् भगवन्नद्भुतबाल पाहि माम्॥ १०॥

उस समय क्षणभरके लिये जिसे 'सच्चिदानन्द ब्रह्म ही योगैश्वर्यसे मेरा पुत्र हुआ है'। इस प्रकारका तत्त्वज्ञान हो आया था, उस माता यशोदाको आपने पुनः वात्सल्यस्नेहसे मोहित करते हुए कहा—'माँ! दूध पिला दे।' यों कहते हुए गोदमें चढ़नेके लिये आतुर हो उठे। ऐसे अद्भुत बालरूपधारी भगवन्! मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति विश्वरूपप्रदर्शनवर्णनं षट्‌चत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

सप्तचत्वारिंशत्तमदशकम्

श्रीकृष्णका ओखलीसे बाँधा जाना

एकदा दधिविमाथकारिणीं मातरं समुपसेदिवान् भवान्।
स्तन्यलोलुपतया निवारयन्नङ्कमेत्य पपिवान् पयोधरौ॥ १॥

एक समयकी बात है, माता यशोदा दही मथ रही थीं, उसी समय आप उनके निकट जा पहुँचे। तब दूध पीनेकी लालसासे दहीका मथना रोककर उनकी गोदमें चढ़ गये और स्तनोंको पकड़कर दूध पीने लगे॥ १॥

अर्धपीतकुचकुड्मले त्वयि स्निग्धहासमधुराननाम्बुजे।
दुग्धमीश दहने परिस्रुतं धर्तुमाशु जननी जगाम ते॥ २॥

उस समय आप बीच-बीचमें मन्द-मन्द मुसकुरा देते थे, जिससे आपका मुखकमल बड़ा मनोहर लग रहा था। अभी आप आधा ही दूध पी पाये थे अर्थात् तृप्त नहीं हुए थे तबतक आगपर चढ़ाये हुए दूधमें उफान आया। आपकी माता उसे रखनेके लिये तुरंत ही (आपको गोदसे उतारकर) चली गयीं॥ २॥

सामिपीतरसभङ्गसङ्गतक्रोधभारपरिभूतचेतसा।
मन्थदण्डमुपगृह्य पाटितं हन्त देव दधिभाजनं त्वया॥ ३॥

देव! तब अर्धपीत दुग्ध-रसके पानमें विघ्न पड़ जानेके कारण उत्पन्न हुए क्रोधके भारसे आपका चित्त परिभूत हो गया। फिर तो आपने मन्थन-काष्ठ—मथानीको उठाकर उस दहीके मटकेको फोड़ दिया (और आप वहाँसे चलते बने।)॥ ३॥

उच्चलध्वनितमुच्चकैस्तदा संनिशम्य जननी समाद्रुता।
त्वद्यशोविसरवद् ददर्श सा सद्य एव दधि विस्तृतं क्षितौ॥ ४॥

तब बड़े वेगसे मटकेसे बाहर निकलते हुए दहीके शब्दको सुनकर माता यशोदा बड़ी उतावलीमें दौड़कर वहाँ आयीं तो देखा कि आपके यशोविस्तारकी भाँति सारा दही तुरंत ही धरतीपर बिखर गया है॥ ४॥

वेदमार्गपरिमार्गितं रुषा त्वामवीक्ष्य परिमार्गयन्त्यसौ।
संददर्श सुकृतिन्युलूखले दीयमाननवनीतमोतवे॥ ५॥

तदनन्तर मुनिगण वेदमार्गका अनुसरण करके जिनका परिमार्गण करते रहते हैं, (परंतु आप दृष्टिगोचर नहीं होते) उन्हीं आपको वहाँ न देखकर यशोदा क्रुद्ध होकर आपका अन्वेषण करने लगीं। तब उस पुण्यशालिनीने देखा कि आप ओखलीपर चढ़कर छीकेपर रखा हुआ माखन बिलावोंको लुटा रहे हैं॥ ५॥

त्वां प्रगृह्य बत भीतिभावनाभासुराननसरोजमाशु सा।
रोषरूषितमुखी सखीपुरो बन्धनाय रशनामुपाददे॥ ६॥

तब क्रोधके कारण रूखे मुखवाली यशोदाने भयकी भावनासे जिसके मुखकमलकी विलक्षण झाँकी हो रही थी, ऐसे आपको शीघ्र ही पकड़कर सखियोंके सामने ही बाँधनेके लिये रस्सी हाथमें ली॥ ६॥

बन्धुमिच्छति यमेव सज्जनस्तं भवन्तमयि बन्धुमिच्छती।
सा नियुज्य रशनागुणान् बहून् द्व्यङ्गुलोनमखिलं किलैक्षत॥ ७ ॥

अयि भगवन्! सज्जन—मोक्षार्थी जिन्हें (शरणागतिद्वारा) बाँधनेकी इच्छा करता है, उन्हीं आपको यशोदा रस्सीद्वारा बाँधना चाहती हैं। उन्होंने आपके शरीरपर बहुत-सी रस्सियोंको लगाया, परंतु अन्तमें वे देखती क्या हैं कि सभी रस्सियाँ दो अंगुल छोटी पड़ जाती हैं॥ ७॥

विस्मितोत्स्मितसखीजनेक्षितां स्विन्नसन्नवपुषं निरीक्ष्य ताम्।
नित्यमुक्तवपुरप्यहो हरे बन्धमेव कृपयान्वमन्यथाः॥ ८ ॥

अहो हरे! यह देखकर सखियाँ आश्चर्यचकित होकर मन्द-मन्द हँसती हुई जिनकी ओर निहार रही थीं तथा जिनका शरीर पसीनेसे लथपथ एवं श्रान्त हो रहा था, उन यशोदाकी ओर देखकर नित्यमुक्त शरीरवाले होकर भी आपने कृपापरवश हो बन्धन ही स्वीकार कर लिया॥ ८॥

स्थीयतां चिरमुलूखले खलेत्यागता भवनमेव सा यदा।
प्रागुलूखलबिलान्तरे तदा सर्पिरर्पितमदन्नवास्थिथाः॥ ९ ॥

आपको बाँधकर 'अरे नटखट! अब देरतक इस ओखलीमें बँधा पड़ा रह।' यों कहकर जब यशोदा घरके भीतर चली गयीं, तब माखन लुटाते समय ओखलीके खोखलेमें रखे हुए माखनको खाते हुए आप वहाँ बैठ गये॥ ९॥

यद्यपाशसुगमो विभो भवान् संयतः किमु सपाशयानया।
एवमादि दिविजैरभिष्टुतो वातनाथ परिपाहि मां गदात्॥ १०॥

तब देवगण 'विभो! यदि आप अपाश—विषय-वासनारहित लोगोंके लिये सुगम हैं तो सपाश—पाशवाली यशोदाके द्वारा कैसे बँध गये?' इस प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा आपका स्तवन करने लगे। हे वातनाथ! रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति उलूखलबन्धनवर्णनं सप्तचत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

अष्टचत्वारिंशत्तमदशकम्

यमलार्जुन-उद्धार

मुदा सुरौघैस्त्वमुदारसम्मदैरुदीर्य दामोदर इत्यभिष्टुतः।
मृदूदरः स्वैरमुलूखले लगन्नदूरतो द्वौ ककुभावुदैक्षथाः॥ १॥

तदनन्तर अतिशय संतुष्ट हुए देवगण हर्षपूर्वक आपका 'दामोदर' नामसे स्तवन करके अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर सुखपूर्वक ओखलीमें बँधे हुए कोमल उदरवाले आपने समीपमें ही स्थित दो अर्जुन-वृक्षोंको देखा॥ १॥

कुबेरसूनुर्नलकूबराभिधः परो मणिग्रीव इति प्रथां गतः।
महेशसेवाधिगतश्रियोन्मदौ चिरं किल त्वद्विमुखावखेलताम्॥ २॥

कुबेरका पुत्र जिसका नाम नलकूबर था और दूसरा मणिग्रीव नामसे प्रसिद्ध था—ये दोनों शंकरजीकी उपासनासे प्राप्त हुई लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त होकर चिरकालतक आपसे विमुख हो क्रीड़ा-विलासमें संलग्न रहे॥ २॥

सुरापगायां किल तौ मदोत्कटौ सुरापगायद्बहुयौवतावृतौ।
विवाससौ केलिपरौ स नारदो भवत्पदैकप्रवणो निरैक्षत॥ ३॥

एक बार वे दोनों मदोन्मत्त होकर गङ्गाजीमें विहार कर रहे थे। उस समय उनके शरीरपर वस्त्र नहीं थे और वे सुरापान करके गाती हुई बहुत-सी युवतियोंसे घिरे हुए थे। इसी अवस्थामें उनको एकमात्र आपके ही चरणोंमें दत्तचित्त रहनेवाले नारदमुनिने देख लिया॥ ३॥

भिया प्रियालोकमुपात्तवाससं पुरो निरीक्ष्यापि मदान्धचेतसौ।
इमौ भवद्भक्त्युपशान्तिसिद्धये मुनिर्जगौ शान्तिमृते कुतः सुखम्॥ ४॥

नारदजीको देखकर युवतियोंने शापभयसे डरकर तुरंत ही अपना-अपना वस्त्र धारण कर लिया; परंतु इन दोनोंका चित्त तो मदसे अंधा हो गया था, अतः मुनिको सामने देखकर भी इन्होंने अपने कपड़े नहीं पहने। तब नारदमुनिने भगवद्भक्ति तथा उपशान्तिकी सिद्धिके लिये उन्हें शाप दे दिया; क्योंकि शान्तिके बिना सुख कहाँ?॥ ४॥

युवामवाप्तौ ककुभात्मतां चिरं हरिं निरीक्ष्याथ पदं स्वमाप्नुतम्।
इतीरितौ तौ भवदीक्षणस्पृहां गतौ व्रजान्ते ककुभौ बभूवतुः॥ ५॥

'तुम दोनों चिरकालके लिये अर्जुन-वृक्षका रूप धारण करो। तत्पश्चात् श्रीकृष्णका दर्शन करके मुक्त हो पुनः अपने स्थानको प्राप्त करोगे।' यों नारदद्वारा शापित हुए वे दोनों आपके दर्शनकी स्पृहासे व्रजमें जाकर यमलार्जुनके रूपमें उत्पन्न हुए॥ ५॥

अतन्द्रमिन्द्रद्रुयुगं तथाविधं समेयुषा मन्थरगामिना त्वया।
तिरायितोलूखलरोधनिर्धुतौ चिराय जीर्णौ परिपातितौ तरू॥ ६॥

ऐसे यमलार्जुन-वृक्षोंके निकट आप उत्साहपूर्वक धीरे-धीरे ओखलीको खींचते हुए जा पहुँचे। ओखली तिरछी होकर दोनों वृक्षोंके मध्यमें जा फँसी। तब उसे वेगपूर्वक खींचनेसे आपने बहुत दिनोंके पुराने उन दोनों वृक्षोंको जड़सहित उखाड़कर धराशायी कर दिया॥ ६॥

अभाजि शाखिद्वितयं यदा त्वया तदैव तद्गर्भतलान्निरेयुषा।
महात्विषा यक्षयुगेन तत्क्षणादभाजि गोविन्द भवानपि स्तवैः॥ ७॥

गोविन्द! जब आपने उन दोनों वृक्षोंको उखाड़ दिया, तब उन वृक्षोंके मध्यभागसे दो महान् कान्तिमान् यक्ष प्रकट हुए। वे उसी क्षण स्तुतियोंद्वारा आपका स्तवन करने लगे॥ ७॥

इहान्यभक्तोऽपि समेष्यति क्रमाद् भवन्तमेतौ खलु रुद्रसेवकौ।
मुनिप्रसादाद्भवदङ्घ्रिमागतौ गतौ वृणानौ खलु भक्तिमुत्तमाम्॥ ८॥

भगवन्! इससे आपने निश्चित कर दिया कि जगत्में ब्रह्मा-शिव आदि अन्य देवोंके भक्त भी अधिकार-क्रमसे आपके भजनाधिकारी होते हैं; क्योंकि ये दोनों नलकूबर और मणिग्रीव रुद्रके सेवक थे। ये नारदमुनिकी कृपासे आपकी चरण-शरणमें आये और उत्तम भक्तिका वरदान प्राप्त करके पुनः अपने स्थानको चले गये॥ ८॥

ततस्तरूद्दारणदारुणारवप्रकम्पिसम्पातिनि गोपमण्डले।
विलज्जितत्वज्जननीमुखेक्षिणा व्यमोक्षि नन्देन भवान्विमोक्षदः॥ ९ ॥

तदनन्तर उन वृक्षोंके उखड़नेसे उत्पन्न हुए भयंकर शब्दके सुननेसे सम्भ्रान्त हुए झुंड-के-झुंड गोप वहाँ आ पहुँचे। तब आपको बाँधनेके कारण जो विशेषरूपसे लजायी हुई थीं, उन आपकी माता यशोदाके मुखकी ओर देखते हुए नन्द बाबाने मुक्तिदाता आपको बन्धनसे मुक्त कर दिया॥ ९॥

महीरुहोर्मध्यगतो बतार्भको हरेः प्रभावादपरिक्षतोऽधुना।
इति ब्रुवाणैर्गमितो गृहं भवान् मरुत्पुराधीश्वर पाहि मां गदात्॥ १०॥

तब नन्दादि गोप 'अहो! कैसा आश्चर्य है! इस समय यह बालक दोनों वृक्षोंके बीचमें पड़ गया था, परंतु इसे कोई चोट नहीं लगी— यह श्रीहरिकी ही कृपा है।' यों कहते हुए आपको घर ले गये। मरुत्पुराधीश्वर! रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति यमलार्जुनभञ्जनमष्टचत्वारिंशत्तमदशकं समाप्तम्॥

एकोनपञ्चाशत्तमदशकम्

वृन्दावन-गमन

भवत्प्रभावाविदुरा हि गोपास्तरुप्रपातादिकमत्र गोष्ठे।
अहेतुमुत्पातगणं विशङ्क्य प्रयातुमन्यत्र मनो वितेनुः॥ १॥

भगवन्! आपके प्रभावसे अनभिज्ञ गोपगण यहाँ व्रजमें अकारण ही तरु-प्रपात आदि बहुत-से उपद्रवोंको देखकर शङ्कित हो उठे। तब वे कहीं अन्यत्र जानेके लिये विचार-विमर्श करने लगे॥ १॥

तत्रोपनन्दाभिधगोपवर्यो जगौ भवत्प्रेरणयैव नूनम्।
इतः प्रतीच्यां विपिनं मनोज्ञं वृन्दावनं नाम विराजतीति॥ २॥

उन गोपोंमें उपनन्द नामक एक श्रेष्ठ गोप थे। उन्होंने अवश्यमेव आपकी ही प्रेरणासे बतलाया कि 'यहाँसे पश्चिम दिशामें वृन्दावन नामका एक परम मनोहर वन सुशोभित है (वहीं चलना चाहिये)'॥ २॥

बृहद्वनं तत्खलु नन्दमुख्या विधाय गौष्ठीनमथ क्षणेन।
त्वदन्वितत्वज्जननीनिविष्टगरिष्ठयानानुगता विचेलुः॥ ३॥

तदनन्तर उसी क्षण नन्द आदि गोप उस बृहद्वनको पुराना गोकुल बनाकर वहाँसे वृन्दावनके लिये चल पड़े। उस समय आपको लिये हुए आपकी माता—यशोदा जिसमें बैठी थीं, उस भारी एवं विशाल छकड़ेके पीछे-पीछे वे गोप चल रहे थे॥ ३॥

अनोमनोज्ञध्वनिधेनुपालीखुरप्रणादान्तरतो वधूभिः।
भवद्विनोदालपिताक्षराणि प्रपीय नाज्ञायत मार्गदैर्घ्यम्॥ ४॥

उस समय छकड़ोंकी मनोहर ध्वनि और धेनु-समूहोंके खुरोंसे उठे हुए शब्दोंके बीच आपके विनोदमय मधुर आलापोंके अमृतमय अक्षरोंका पान करनेसे गोपाङ्गनाओंको मार्गकी दूरीका पता नहीं चला॥ ४॥

निरीक्ष्य वृन्दावनमीश नन्दत्प्रसूनकुन्दप्रमुखद्रुमौघम्।
अमोदथाः शाद्वलसान्द्रलक्ष्म्या हरिन्मणीकुट्टिमपुष्टशोभम्॥ ५॥

ईश! जो खिले हुए पुष्पों तथा कुन्द आदि तरुसमूहोंसे परिपूर्ण था तथा जिसमें हरी-हरी घनी घास इन्द्रनीलमणिकी फर्श-सी जान पड़ती थी और उसकी शोभा-सम्पत्तिसे जिसको अत्यन्त परिपुष्ट शोभा प्राप्त हो रही थी, उस वृन्दावनको देखकर आपको परम हर्ष हुआ॥ ५॥

नवीननिर्व्यूढनिवासभेदेष्वशेषगोपेषु सुखासितेषु।
वनश्रियं गोपकिशोरपालीविमिश्रितः पर्यवलोकथास्त्वम्॥ ६॥

जब समस्त गोप नये रचे गये विभिन्न भवनोंमें सुखपूर्वक बस गये, तब आप ग्वालबालोंको साथ लेकर चारों ओर घूम-घूमकर वनकी शोभा देखने लगे॥ ६॥

अरालमार्गागतनिर्मलापां मरालकूजाकृतनर्मलापाम्।
निरन्तरस्मेरसरोजवक्त्रां कलिन्दकन्यां समलोकयस्त्वम्॥ ७॥

उस समय आपने कलिन्दनन्दिनी यमुनाका अवलोकन किया, जिसमें कुटिल मार्गसे आगत निर्मल जल प्रवाहित हो रहा था, कलहंसोंके कूजनेसे जो ऐसी प्रतीत होती थी मानो सरस परिहासपूर्ण नर्म-वचन बोल रही है तथा निरन्तर खिले हुए कमल-पुष्प ही जिसके मन्द मुसकानयुक्त मुख थे॥ ७॥

मयूरकेकाशतलोभनीयं मयूखमालाशबलं मणीनाम्।
विरिञ्चलोकस्पृशमुच्चशृङ्गैर्गिरिं च गोवर्धनमैक्षथास्त्वम्॥ ८॥

तत्पश्चात् आपकी दृष्टि गोवर्धन पर्वतपर गयी, जो मयूरोंकी शत-शत केकाओं (कलरवों)-से मनको लुभाये लेता था, मणियोंके किरणजालसे चित्र-विचित्र जान पड़ता था तथा अपने ऊँचे शिखरोंसे मानो ब्रह्मलोकका स्पर्श कर रहा था॥ ८॥

समन्ततो गोपकुमारकैस्त्वं समन्ततो यत्र वनान्तमागाः।
ततस्ततस्तां कुटिलामपश्यः कलिन्दजां रागवतीमिवैकाम्॥ ९॥

ग्वालबालोंके साथ आप चारों ओर वनके प्रान्तभागमें जहाँ-जहाँ गये, वहीं-वहीं टेढ़े मार्गसे बहती हुई एकमात्र कालिन्दीको ही देखा, मानो वह आपके प्रति एकमात्र अनुरागिणी हो॥ ९॥

तथाविधेऽस्मिन् विपिने पशव्ये समुत्सुको वत्सगणप्रचारे।
चरन् सरामोऽथ कुमारकैस्त्वं समीरगेहाधिप पाहि रोगात्॥ १०॥

ऐसे पशुओंके लिये हितकारी सुन्दर वृन्दावनमें बछड़ोंको चरानेके लिये समुत्सुक होकर आप बलराम तथा ग्वालबालोंके साथ विचरण करने लगे। समीरगेहाधिप हरे! रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति वृन्दावनगमनवर्णनमेकोनपञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चाशत्तमदशकम्

वत्सासुर तथा बकासुरका वध

तरलमधुकृद्वृन्दे वृन्दावनेऽथ मनोहरे
पशुपशिशुभिः साकं वत्सानुपालनलोलुपः।
हलधरसखो देव श्रीमन्विचेरिथ धारयन्
गवलमुरलीवेत्रं नेत्राभिरामतनुद्युतिः॥ १॥

श्रीमन्! देव! तदनन्तर जिसमें झुंड-के-झुंड भौंरे फूलोंपर मँडरा रहे थे, उस मनोहर वृन्दावनमें आप बछड़ोंको चरानेके लिये समुत्सुक होकर हलधर तथा ग्वालबालोंके साथ शृङ्गीवाद्य, मुरली और बेंत धारण करके विचरने लगे। आपके शरीरकी कान्ति नेत्रोंको मोह लेनेवाली थी॥ १॥

विहितजगतीरक्षं लक्ष्मीकराम्बुजलालितं
ददति चरणद्वन्द्वं वृन्दावने त्वयि पावने।
किमिव न बभौ सम्पत्सम्पूरितं तरुवल्लरी-
सलिलधरणीगोत्रक्षेत्रादिकं कमलापते॥ २॥

कमलापते! जबसे आपने भूमिकी रक्षा करनेवाले तथा लक्ष्मीके करकमलोंद्वारा लालित अपने पावन चरणयुगलको वृन्दावनकी पावन भूमिपर रखा, तबसे वहाँ वृक्ष, लता, जलाशय, धरती, पर्वत और क्षेत्र आदि कौन-सी ऐसी वस्तु थी, जो अपनी-अपनी सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण हो अद्भुत शोभा नहीं पा रही हो॥ २॥

विलसदुलपे कान्तारान्ते समीरणशीतले
विपुलयमुनातीरे गोवर्द्धनाचलमूर्द्धसु।
ललितमुरलीनादः सञ्चारयन् खलु वात्सकं
क्वचन दिवसे दैत्यं वत्साकृतिं त्वमुदैक्षथाः॥ ३॥

अब आप उलप—तृणविशेषसे सुशोभित वनप्रदेशमें, यमुना-जलका स्पर्श करके बहनेवाले शीतल वायुसे सेवित विस्तृत यमुना-तटपर तथा गिरिराज गोवर्धनकी चोटियोंपर मधुर मुरली-नाद करते हुए वत्ससमूहोंको चराने लगे। किसी दिन आपने एक दैत्यको देखा, जो बछड़ेका रूप धारण किये हुए था॥ ३॥

रभसविलसत्पुच्छं विच्छायतोऽस्य विलोकयन्
किमपि वलितस्कन्धं रन्ध्रप्रतीक्षमुदीक्षितम्।
तमथ चरणे बिभ्रद्विभ्रामयन् मुहुरुच्चकैः
कुहचन महावृक्षे चिक्षेपिथ क्षतजीवितम्॥ ४॥

वह वत्सासुर बड़े वेगसे अपनी पूँछको इधर-उधर घुमा रहा था। बछड़ोंके मध्य विचरता हुआ वह अपनी गरदनको थोड़ी तिरछी करके पीछेकी ओर देख लेता था और अवसरकी प्रतीक्षामें था। उसके इस प्रकार देखनेके अभिप्रायको आपने भाँप लिया। फिर तो उसकी पिछली टाँगें पकड़कर आप उसे वेगपूर्वक बारंबार घुमाने लगे। घुमाते समय ही उसके प्राणपखेरू उड़ गये, तब आपने उसे किसी महान् वृक्षपर दे मारा॥ ४॥

निपतति महादैत्ये जात्या दुरात्मनि तत्क्षणं
निपतनजवक्षुण्णक्षोणीरुहक्षतकानने ।

दिवि परिमिलद्वृन्दा वृन्दारकाः कुसुमोत्करैः
शिरसि भवतो हर्षाद्वर्षन्ति नाम तदा हरे॥ ५॥

हरे! जब जन्मसे ही दुष्ट वह महान् दैत्य वत्सासुर अपने पतन-वेगसे वृक्षोंको छिन्न-भिन्न करके उस वनप्रदेशकी शोभा नष्ट करता हुआ धराशायी हो गया, तब आकाशमें यूथ-के-यूथ देवता संगठित होकर आये और हर्षपूर्वक आपके मस्तकपर पुष्प-समूहोंकी वृष्टि करने लगे॥ ५॥

सुरभिलतमा मूर्धन्यूर्ध्वं कुतः कुसुमावली
निपतति तवेत्युक्तो बालैः सहेलमुदैरयः।
झटिति दनुजक्षेपेणोर्ध्वं गतस्तरुमण्डलात्
कुसुमनिकरः सोऽयं नूनं समेति शनैरिति॥ ६॥

तब 'सखे! तुम्हारे मस्तकके ऊपर यह अतिशय सुगन्धयुक्त कुसुमावली कहाँसे गिर रही है?' बालकोंके यों पूछनेपर आपने लीलापूर्वक उत्तर दिया—'ऐसा प्रतीत होता है कि वत्सासुरके शरीरको वेगपूर्वक फेंकनेसे उसके साथ-ही-साथ कुछ पुष्प वृक्षमण्डलसे ऊपरको चले गये थे, वे ही अब धीरे-धीरे गिर रहे हैं'॥ ६॥

क्वचन दिवसे भूयो भूयस्तरे परुषातपे
तपनतनयापाथः पातुं गता भवदादयः।
चलितगरुतं प्रेक्षामासुर्बकं खलु विस्मृतं
क्षितिधरगरुच्छेदे कैलासशैलमिवापरम्॥ ७॥

पुनः किसी दिन, जब बड़ी कड़ी धूप तप रही थी, आप सभी ग्वालबाल सूर्यपुत्री यमुनामें जल पीनेके लिये गये। वहाँ आपलोगोंने एक बकुलेको देखा, जो अपने पंख फड़फड़ा रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो इन्द्रद्वारा पर्वतोंके पक्षच्छेदके समय उसका पंख काटना वे भूल गये थे, जिससे वह दूसरे कैलास पर्वतके सदृश लग रहा था॥ ७॥

पिबति सलिलं गोपव्राते भवन्तमभिद्रुतः
स किल निगिलन्नग्निप्रख्यं पुनर्द्रुतमुद्वमन्।

दलयितुमगात् त्रोट्याः कोट्या तदाशु भवान्विभो
खलजनभिदाचुञ्चुश्चञ्चू प्रगृह्य ददार तम्॥ ८॥

विभो! अभी ग्वालबाल जल पी ही रहे थे तबतक उस बकासुरने झपटकर आपको निगल लिया; परंतु जब आप उसके तालुको अग्निकी भाँति जलाने लगे, तब उसने तुरंत ही आपको उगल दिया। पुनः चोंचके अग्रभागसे विदीर्ण करनेके लिये आपपर धावा किया, तब दुष्ट-दलन-कार्यमें विख्यात कीर्तिवाले आपने ऊपर-नीचेकी दोनों चोचोंको पकड़कर उसे बीचसे ही फाड़ डाला॥ ८॥

सपदि सहजां संद्रष्टुं वा मृतां खलु पूतना-
मनुजमघमप्यग्रे गत्वा प्रतीक्षितुमेव वा।
शमननिलयं याते तस्मिन् बके सुमनोगणे
किरति सुमनोवृन्दं वृन्दावनाद् गृहमैयथाः॥ ९ ॥

मरी हुई अपनी सहोदरा बहिन पूतनाको देखनेके लिये अथवा पहले ही स्वर्गमें जाकर अपने छोटे भाई अघासुरकी प्रतीक्षा करनेके लिये जब वह बकासुर यमलोकको चला गया, तब देवगण आपपर पुष्पसमूहकी वर्षा करने लगे। तत्पश्चात् आप वृन्दावनसे घरको लौट आये॥ ९॥

ललितमुरलीनादं दूरान्निशम्य वधूजनै-
स्त्वरितमुपगम्यारादारूढमोदमुदीक्षितः ।
जनितजननीनन्दानन्दः समीरणमन्दिर-
प्रथितवसते शौरे दूरीकुरुष्व ममामयान्॥ १०॥

आपके अतिशय सुन्दर वेणुनादको दूरसे ही सुनकर गोपियाँ शीघ्र ही निकट जाकर समीपमें अङ्ग-प्रत्यङ्गके दर्शनसे आनन्दित होकर आपका अवलोकन करने लगीं। इस प्रकार आप माता यशोदा तथा नन्द बाबाको आनन्दित करने लगे। वायु-मन्दिरके सुप्रसिद्ध निवासी श्रीकृष्ण! मेरे रोगोंको दूर कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति वत्सासुरवधवर्णनं बकासुरवधवर्णनं च पञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

एकपञ्चाशत्तमदशकम्

अघासुर-वध

कदाचन व्रजशिशुभिः समं भवान् वनाशने विहितमतिः प्रगेतराम्।
समावृतो बहुतरवत्समण्डलैः सतेमनैर्निरगमदीश जेमनैः॥ १॥

ईश! एक बार आपने ऐसा निश्चय किया कि आजका कलेवा व्रज-बालकोंके साथ वनमें ही किया जाय। इसलिये बड़े ही तड़के उठकर बहुत-से वत्ससमूहोंसे घिरे हुए आप व्यञ्जनयुक्त भोजन-सामग्री लेकर वनको चल दिये॥ १॥

विनिर्यतस्तव चरणाम्बुजद्वया-
दुदञ्चितं त्रिभुवनपावनं रजः।
महर्षयः पुलकधरैः कलेवरै-
रुदूहिरे धृतभवदीक्षणोत्सवाः॥ २॥

वन जाते हुए आपके दोनों चरणकमलोंसे उठी हुई त्रिलोक-पावनी धूलको महर्षियोंने अपने पुलकित शरीरोंपर धारण कर लिया। उस समय वे आपके दर्शनोत्सवकी लालसासे आये हुए थे॥ २॥

प्रचारयत्यविरलशाद्वले तले
पशून् विभो भवति समं कुमारकैः।
अघासुरो न्यरुणदघाय वर्तनीं
भयानकः सपदि शयानकाकृतिः॥ ३॥

विभो! जब आप ग्वालबालोंके साथ प्रचुर घासवाले भूतलपर बछड़ोंको चरा रहे थे, उसी समय भयानक अघासुर पाप-कर्म करनेके लिये अजगरका रूप धारण करके मार्गको रोककर बैठ गया॥ ३॥

महाचलप्रतिमतनोर्गुहानिभ-
प्रसारितप्रथितमुखस्य कानने।
मुखोदरं विहरणकौतुकाद् गताः
कुमारकाः किमपि विदूरगे त्वयि॥ ४॥

उसका शरीर एक महान् पर्वतके समान था। उसने अपने गुहा-

सदृश स्थूल मुखको भलीभाँति फैला रखा था। तब आपके कुछ दूर रह जानेपर वे सभी बालक पर्वत-कन्दरामें विहार करनेके कुतूहलवश उसके मुखमें प्रविष्ट हो गये॥ ४॥

प्रमादतः प्रविशति पन्नगोदरं
क्वथत्तनौ पशुपकुले सवात्सके।
विदन्निदं त्वमपि विवेशिथ प्रभो
सुहृज्जनं विशरणमाशु रक्षितुम्॥ ५॥

प्रमादवश अजगरके पेटमें प्रवेश करते ही वत्स-समूहसहित ग्वालबालोंके शरीर विषाग्निसे क्वाथकी तरह तप्त होने लगे। प्रभो! तब आप भी अघासुरकी चेष्टा जानकर अशरण-सुहृज्जनोंकी रक्षा करनेके लिये शीघ्र ही उसके भीतर चले गये॥ ५॥

गलोदरे विपुलितवर्ष्मणा त्वया
महोरगे लुठति निरुद्धमारुते।
द्रुतं भवान् विदलितकण्ठमण्डलो
विमोचयन् पशुपपशून् विनिर्ययौ॥ ६॥

उसके कण्ठ और पेटमें पहुँचकर आपने अपना शरीर बढ़ा लिया, जिससे उसकी प्राणवायु रुक गयी। प्राणवायुके निरोधसे वह विशाल अजगर छटपटाने लगा। तब आप शीघ्र ही उसके ग्रीवामण्डलको विदीर्ण कर ग्वालबालों तथा वत्सोंको संकटसे छुड़ाते हुए बाहर निकल आये॥ ६॥

क्षणं दिवि त्वदुपगमार्थमास्थितं
महासुरप्रभवमहो महो महत्।
विनिर्गते त्वयि तु निलीनमञ्जसा
नभःस्थले ननृतुरथो जगुः सुराः॥ ७॥

अहो! अघासुरके शरीरसे निकला हुआ महान् तेजःपुञ्ज आपमें प्रविष्ट होनेके लिये क्षणभरतक आकाशमें स्थित रहा। आपके बाहर निकलनेपर वह तुरंत ही आपमें विलीन हो गया। यह देखकर आकाशमें स्थित देवगण नाचने-गाने लगे॥ ७॥

सविस्मयैः कमलभवादिभिः सुरै-
रनुद्रुतस्तदनुगतः कुमारकैः।
दिने पुनस्तरुणदशामुपेयुषि
स्वकैर्भवानतनुत भोजनोत्सवम्॥ ८॥

आकाशमार्गसे आश्चर्यचकित हुए ब्रह्मा आदि देवता आपके पीछे-पीछे चल रहे थे तथा भूतलपर ग्वालबाल आपका अनुगमन कर रहे थे। पुनः दिनके तरुणदशाको प्राप्त होनेपर अर्थात् मध्याह्न-काल उपस्थित होनेपर आपने अपने सखाओंके साथ विस्तारपूर्वक वनभोजनोत्सव प्रारम्भ किया॥ ८॥

विषाणिकामपि मुरलीं नितम्बके
निवेशयन् कवलधरः कराम्बुजे।
प्रहासयन् कलवचनैः कुमारकान्
बुभोजिथ त्रिदशगणैर्मुदा नुतः॥ ९॥

उस समय आपने सींग और मुरलीको तो कटिप्रदेशमें बँधे हुए पीताम्बरकी फेंटमें खोंस लिया और करकमलमें ग्रास धारण करके मधुर परिहासद्वारा ग्वालबालोंको हँसाते हुए स्वयं भोजन करने लगे। उस समय देवगण हर्षपूर्वक आपकी स्तुति कर रहे थे॥ ९॥

सुखाशनं त्विह तव गोपमण्डले
मखाशनात्प्रियमिव देवमण्डले।
इति स्तुतस्त्रिदशवरैर्जगत्पते
मरुत्पुरीनिलय गदात्प्रपाहि माम्॥ १०॥

'जगदीश्वर! यहाँ गोपसमूहमें स्थित होकर सुखपूर्वक भोजन करना आपको देवमण्डलमें यज्ञभागके भोजनसे भी अधिक प्रिय है।' यों ब्रह्मादि देवगण स्तवन कर रहे थे। मरुत्पुरीनिलय! रोगोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इत्यघासुरवधवर्णनमेकपञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

द्विपञ्चाशत्तमदशकम्

ब्रह्माका मोह

अन्यावतारनिकरेष्वनिरीक्षितं ते
भूमातिरेकमभिवीक्ष्य तदाघमोक्षे।
ब्रह्मा परीक्षितुमनाः स परोक्षभावं
निन्येऽथ वत्सकगणान् प्रवितत्य मायाम्॥ १॥

भगवन्! अन्यान्य विभिन्न अवतारोंमें आपका जो ऐश्वर्यातिशय नहीं देखा गया था, उसे अघासुर-उद्धारके अवसरपर देखकर ब्रह्माजीके मनमें आपकी परीक्षा लेनेकी इच्छा जाग्रत् हो उठी। तब उन्होंने मायाका प्रयोग करके समस्त बछड़ोंको अन्तर्हित कर लिया॥ १॥

वत्सानवीक्ष्य विवशे पशुपोत्करे ता-
नानेतुकाम इव धातृमतानुवर्ती।
त्वं सामिभुक्तकवलो गतवांस्तदानीं
भुक्तांस्तिरोऽधित सरोजभवः कुमारान्॥ २॥

जब बछड़ोंको न देखकर सारे ग्वाल-बाल व्याकुल हो उठे, तब आप ब्रह्माके मतका अनुवर्तन करते हुए-से आधा खाया हुआ ग्रास हाथमें लेकर बछड़ोंको लौटा लानेके लिये चल दिये। आपके चले जानेपर ब्रह्माने भोजन करते हुए बालकोंको भी छिपा लिया॥ २॥

वत्सायितस्तदनु गोपगणायितस्त्वं
शिक्यादिभाण्डमुरलीगवलादिरूपः ।
प्राग्वद्विहृत्य विपिनेषु चिराय सायं
त्वं माययाथ बहुधा व्रजमाययाथ॥ ३॥

इस प्रकार ब्रह्माद्वारा बछड़ों तथा बालकोंके तिरोहित कर लिये जानेपर आपने मायाका आश्रय लेकर अपनेको बहुत रूपोंमें प्रकट किया। आप ही बछड़े तथा ग्वालबाल बन गये और आपने ही छींके, भोजन-पात्र, मुरली और सींग आदिका भी रूप धारण कर लिया।

तत्पश्चात् चिरकालतक पूर्ववत् वनमें विहार करके संध्यासमय व्रजमें लौट आये॥ ३॥

त्वामेव शिक्यगवलादिमयं दधानो
भूयस्त्वमेव पशुवत्सकबालरूपः।
गोरूपिणीभिरपि गोपवधूमयीभि-
रासादितोऽसि जननीभिरतिप्रहर्षात्॥ ४॥

आप ही बछड़े तथा बालकरूपमें थे, पुनः आपने ही छींके और सींग आदिका रूप धारण किया था। ऐसे आपको गोरूपिणी माताएँ वत्सरूपमें और गोपाङ्गनामयी माताएँ बालकरूपमें पाकर अतिशय उल्लास एवं वात्सल्यस्नेहसे लाड़-प्यार करने लगीं॥ ४॥

जीवं हि कञ्चिदभिमानवशात्स्वकीयं
मत्वा तनूज इति रागभरं वहन्त्यः।
आत्मानमेव तु भवन्तमवाप्य सूनुं
प्रीतिं ययुर्न कियतीं वनिताश्च गावः॥ ५॥

भला, जब किसी भी जीवको ममत्वारोपके कारण 'मेरा पुत्र है', यों अपना मानकर उनकी माताएँ स्नेहविह्वल हो जाती हैं, तब सर्वात्मस्वरूप आपको ही पुत्ररूपमें पाकर गोपियों तथा गौओंको कितनी प्रसन्नता नहीं हुई? अर्थात् वे परम आनन्दित हुईं॥ ५॥

एवं प्रतिक्षणविजृम्भितहर्षभार-
निश्शेषगोपगणलालितभूरिमूर्त्तिम्।
त्वामग्रजोऽपि बुबुधे किल वत्सरान्ते
ब्रह्मात्मनोरपि महान् युवयोर्विशेषः॥ ६॥

इस प्रकार प्रतिक्षण वर्धमान हर्षातिरेकसे युक्त समस्त गोपगणोंद्वारा जिनकी अनेक मूर्तियोंका लालन-पालन हो रहा था ऐसे आपको बलरामजी भी वर्षान्तमें ही जान पाये; क्योंकि यद्यपि आप दोनों ब्रह्मस्वरूप हैं तथापि आपमें महान् अन्तर है (आप निष्कल ब्रह्म हैं और बलरामजी सकल ब्रह्म हैं)॥ ६॥

वर्षावधौ नवपुरातनवत्सपालान्
दृष्ट्वा विवेकमसृणे द्रुहिणे विमूढे।
प्रादीदृशः प्रतिनवान्मकुटाङ्गदादि-
भूषांश्चतुर्भुजयुजस्सजलाम्बुदाभान् ॥ ७॥

एक वर्षका समय व्यतीत हो जानेपर जब नये (श्रीकृष्णमय) और पुराने (अपने द्वारा छिपाये हुए) बछड़ों तथा ग्वाल-बालोंको देखकर ब्रह्माको विमोह हो गया और वे सत्यासत्यका विचार करनेमें असमर्थ हो गये, तब आपने उन्हें प्रत्येक नूतन बछड़ों तथा बालकोंको दिखाया। वे सभी सजल जलधरके-से श्याम वर्ण-वाले थे, सबके चार भुजाएँ थीं और सभी मुकुट, बाजूबंद आदि भूषणोंसे विभूषित थे॥ ७॥

प्रत्येकमेव कमलापरिलालिताङ्गान्
भोगीन्द्रभोगशयनान्नयनाभिरामान् ।
लीलानिमीलितदृशः सनकादियोगि-
व्यासेवितान् कमलभूर्भवतो ददर्श॥ ८॥

उन सबके रूप नयनाभिराम थे। सभी पृथक्-पृथक् योगनिद्राका आश्रय लेकर शेषशय्यापर शयन कर रहे थे। लक्ष्मी प्रत्येकके निकट स्थित हो उनके अङ्गोंकी सेवा कर रही थीं और सनकादि योगीश्वर उनकी उपासनामें तत्पर थे। ऐसे आपके स्वरूपभूत उन सबको ब्रह्माने देखा॥ ८॥

नारायणाकृतिमसंख्यतमां निरीक्ष्य
सर्वत्र सेवकमपि स्वमवेक्ष्य धाता।
मायानिमग्नहृदयो विमुमोह याव-
देको बभूविथ तदा कवलार्धपाणिः॥ ९॥

इस प्रकार जब असंख्य नारायणस्वरूप देखकर और सर्वत्र अपनेको ही सेवकरूपमें पाकर ब्रह्माका हृदय मायामें निमग्न हो गया और वे विशेषरूपसे मोहित हो गये, तब आप सभी रूपोंको समेटकर अकेले श्रीकृष्णरूपमें आधा ग्रास हाथमें लिये बछड़े खोजते हुए प्रकट हो गये॥ ९॥

नश्यन्मदे तदनु विश्वपतिं मुहुस्त्वां
नत्वा च नूतवति धातरि धाम याते।
पोतैः समं प्रमुदितैः प्रविशन्निकेतं
वातालयाधिप विभो परिपाहि रोगात्॥ १०॥

विभो! तदनन्तर जब ब्रह्माका मोह नष्ट हो गया और वे आप जगदीश्वरका बारंबार नमस्कारपूर्वक स्तवन करके अपने धाम–सत्यलोकको चले गये, तब प्रमुदित हुए ग्वालबालोंके साथ आपने भी घरमें प्रवेश किया। वातालयाधिप! रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति वत्सापहारवर्णनं द्विपञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

त्रिपञ्चाशत्तमदशकम्

धेनुकासुर–वध

अतीत्य बाल्यं जगतां पते त्वमुपेत्य पौगण्डवयो मनोज्ञम्।
उपेक्ष्य वत्सावनमुत्सवेन प्रावर्तथा गोगणपालनायाम्॥ १॥

जगदीश्वर! जब आप बाल्यावस्थाको पार करके मनोहर पौगण्ड-अवस्थाको प्राप्त हुए, तब बछड़े चराना छोड़कर उत्सवपूर्वक गोचारणमें प्रवृत्त हुए॥ १॥

उपक्रमस्यानुगुणैव सेयं मरुत्पुराधीश तव प्रवृत्तिः।
गोत्रापरित्राणकृतेऽवतीर्णस्तदेव देवारभथास्तदा यत्॥ २॥

मरुत्पुराधीश! आपकी वह प्रवृत्ति कार्यारम्भके अनुरूप ही थी; क्योंकि आप पृथ्वीकी रक्षारूप कार्यके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। भगवन्! उस समय आपने वही कार्य (गौ—पृथिवीका पालन) आरम्भ किया॥ २॥

कदापि रामेण समं वनान्ते वनश्रियं वीक्ष्य चरन् सुखेन।
श्रीदामनाम्नः स्वसखस्य वाचा मोदादगा धेनुककाननं त्वम्॥ ३॥

एक बार आप बलरामजीके साथ वनके भीतर वनकी शोभा

निहारते हुए सुखपूर्वक विचर रहे थे। उसी समय श्रीदामा नामवाले अपने सखाके कहनेसे हर्षित होकर आप धेनुकासुरके निवासभूत तालवनको गये॥ ३॥

उत्तालतालीनिवहे त्वदुक्त्या बलेन धूतेऽथ बलेन दोर्भ्याम्।
मृदुः खरश्चाभ्यपतत्पुरस्तात् फलोत्करो धेनुकदानवोऽपि॥ ४॥

वह वन ऊँचे-ऊँचे ताल-वृक्षोंसे परिपूर्ण था। वहाँ पहुँचनेपर आपकी आज्ञासे बलरामजीने बलपूर्वक दोनों हाथोंसे वृक्षोंको पकड़कर हिला दिया। फिर तो ढेर-के-ढेर मीठे तालफल सामने गिर पड़े। उसी समय खर-रूपधारी धेनुकासुर भी वहाँ आ पहुँचा॥ ४॥

समुद्यतो धैनुकपालनेऽहं कथं वधं धैनुकमद्य कुर्वे।
इतीव मत्वा ध्रुवमग्रजेन सुरौघयोद्धारमजीघनस्त्वम्॥ ५॥

'मैं धेनुसमूहोंका पालन करनेके लिये समुद्यत रहता हूँ, तब भला, आज इस धेनुकका वध कैसे कर सकता हूँ।' अवश्य यही सोचकर आपने बलरामजीद्वारा उस देवद्रोहीका वध कराया॥ ५॥

तदीयभृत्यानपि जम्बुकत्वेनोपागतानग्रजसंयुतस्त्वम्।
जम्बूफलानीव तदा निरास्थस्तालेषु खेलन् भगवन्निरास्थः॥ ६॥

भगवन्! तब जम्बुकरूपमें आये हुए उसके भृत्योंको भी बलरामसहित आपने तालवनमें खेलते हुए उनके प्रति आस्थारहित हो जम्बूफलकी तरह मार गिराया॥ ६॥

विनिघ्नति त्वय्यथ जम्बुकौघं सनामकत्वाद्वरुणस्तदानीम्।
भयाकुलो जम्बुकनामधेयं श्रुतिप्रसिद्धं व्यधितेति मन्ये॥ ७॥

जब आप जम्बुक-दलका विनाश कर रहे थे, उस समय समान नाम होनेके कारण* वरुण भयसे व्याकुल हो उठे। मैं समझता हूँ, इसी कारणसे उन्होंने अपने 'जम्बुक' नामको केवल वेदमें ही विख्यात रखा। उसे लोकमें नहीं प्रसिद्ध होने दिया॥ ७॥

तवावतारस्य फलं मुरारे सञ्जातमद्येति सुरैर्नुतस्त्वम्।
सत्यं फलं जातमिहेति हासी बालैः समं तालफलान्यभुङ्क्थाः॥ ८॥

* वरुणका भी एक नाम जम्बुक है।

'मुरारे! आपके अवतारका फल आज प्राप्त हो गया', ऐसा कहते हुए देवताओंने जब आपकी स्तुति की, तब आप बोले—'हाँ! सचमुच हमें यहाँ फल प्राप्त हो गया।' ऐसा कहकर हँसते हुए आप ग्वालबालोंके साथ तालफल खाने लगे॥ ८॥

मधुद्रवस्रुन्ति बृहन्ति तानि फलानि मेदोभरभृन्ति भुक्त्वा।
तृप्तैश्च दृप्तैर्भवनं फलौघं वहद्भिरागाः खलु बालकैस्त्वम्॥ ९ ॥

वे तालके फल बहुत बड़े-बड़े थे और गूदेसे भरे थे। उनसे मीठा रस चू रहा था। उन्हें खाकर ग्वालबाल तृप्त हो गये और दर्पके साथ फलोंकी गठरी बाँधकर कंधेपर रख लिये। उन बालकोंके साथ आप घरपर आये॥ ९॥

हतो हतो धेनुक इत्युपेत्य फलान्यदद्भिर्मधुराणि लोकैः।
जयेति जीवेति नुतो विभो त्वं मरुत्पुराधीश्वर पाहि रोगात्॥ १०॥

विभो! तदनन्तर 'धेनुकासुर मारा गया, मारा गया' यह कहते हुए ताल-वनमें आकर लोग मीठे तालफलोंको खाते थे और 'श्रीकृष्णकी जय हो! श्रीकृष्ण चिरंजीवी हों!' यों आपकी मङ्गलकामना एवं स्तुति करते थे। मरुत्पुराधीश्वर! रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति धेनुकासुरवधवर्णनं त्रिपञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

चतुष्पञ्चाशत्तमदशकम्

कालियोपाख्यान

त्वत्सेवोत्कः सौभरिर्नाम पूर्वं
कालिन्द्यन्तर्द्वादशाब्दं तपस्यन्।
मीनव्राते स्नेहवान् भोगलोले
तार्क्ष्यं साक्षादैक्षताग्रे कदाचित्॥ १॥

पूर्वकालमें सौभरि नामक एक ऋषि थे, जो आपकी उपासनाके लिये समुत्सुक होकर बारह वर्षतक यमुनाके जलमें तपस्या करते रहे।

वहाँ भोग-सुखमें संलग्न चञ्चल मत्स्य-समुदायमें उनकी स्नेहासक्ति हो गयी। किसी समय उन्होंने साक्षात् गरुड़को अपने सामने उपस्थित देखा॥ १॥

त्वद्वाहं तं सक्षुधं तृक्षसूनुं
मीनं कञ्चिज्जक्षतं लक्षयन् सः।
तप्तश्चित्ते शप्तवानत्र चेत्त्वं
जन्तून् भोक्ता जीवितञ्चापि मोक्ता॥ २॥

आपके वाहनभूत गरुड़ भूखसे व्याकुल थे, अतः वे किसी मछलीको पकड़कर खाने लगे। उन्हें ऐसा करते देख मुनिका चित्त संतप्त हो उठा, वे गरुड़को शाप देते हुए बोले—'आजसे यदि तुम यहाँ मछलियोंका भक्षण करोगे तो तुम्हारी भी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी'॥ २॥

तस्मिन् काले कालियः क्ष्वेलदर्पात्
सर्पारातेः कल्पितं भागमश्नन्।
तेन क्रोधात्त्वत्पदाम्भोजभाजा
पक्षक्षिप्तस्तद्दुरापं पयोऽगात्॥ ३॥

उन्हीं दिनोंकी बात है, कालियनाग विषमदसे उन्मत्त होकर गरुड़के लिये कल्पित किये गये मासिक बलिको खा गया। इस कारण आपके चरणकमलके सेवी गरुड़ने क्रोधपूर्वक उसपर पंखोंसे प्रहार किया, जिससे विवश होकर वह नाग गरुड़के लिये अगम्य उस यमुना-ह्रदमें जा बसा॥ ३॥

घोरे तस्मिन् सूरजानीरवासे
तीरे वृक्षा विक्षताः क्ष्वेलवेगात्।
पक्षिव्राताः पेतुरभ्रे पतन्तः
कारुण्यार्द्रं त्वन्मनस्तेन जातम्॥ ४॥

उस क्रूरकर्मा कालियके यमुना-ह्रदमें निवास करते ही तटके सारे वृक्ष विषाग्निके वेगसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये और आकाशमें उड़नेवाले

पक्षिसमूह मरकर गिरने लगे। यह देखकर आपका मन करुणासे द्रवित हो उठा॥ ४॥

काले तस्मिन्नेकदा सीरपाणिं
मुक्त्वा याते यामुनं काननान्तम्।
त्वय्युद्दामग्रीष्मभीष्मोष्मतप्ता
गोगोपाला व्यापिबन् क्ष्वेलतोयम्॥ ५॥

उस समय एक बार आप हलधरको बिना साथ लिये ही यमुनातटवर्ती काननमें चले गये। वहाँ प्रचण्ड ग्रीष्मकालकी भीषण गर्मीसे संतप्त होकर गौओं तथा ग्वालबालोंने उस विषदूषित जलको भरपेट पी लिया॥ ५॥

नश्यज्जीवान् विच्युतान् क्ष्मातले तान्
विश्वान् पश्यन्नच्युत त्वं दयार्द्रः।
प्राप्योपान्तं जीवयामासिथ द्राक्
पीयूषाम्भोवर्षिभिः श्रीकटाक्षैः॥ ६॥

अच्युत! तब उन सभी जीवोंको मरकर भूतलपर गिरते हुए देखकर आप दयार्द्र हो उठे और शीघ्र ही निकट जाकर अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर उन्हें जीवित कर दिया॥ ६॥

किं किं जातो हर्षवर्षातिरेकः
सर्वाङ्गेष्वित्युत्थिता गोपसङ्घाः।
दृष्ट्वाग्रे त्वां त्वत्कृतं तद्विदन्त-
स्त्वामालिङ्गन् दृष्टनानाप्रभावाः॥ ७॥

'अहो! हमारे सर्वाङ्गोंमें यह आनन्दवर्षाकी अभिवृद्धि कैसे हो रही है?' यों कहते हुए गोपगण जीवित हो उठे और सामने आपको देखकर उन्होंने समझ लिया कि यह आपकी ही करतूत है; क्योंकि पहले भी वे आपके ऐसे अनेकों प्रभाव देख चुके थे, अतः वे आपका आलिङ्गन करने लगे॥ ७॥

गावश्चैवं लब्धजीवाः क्षणेन
स्फीतानन्दास्त्वां च दृष्ट्वा पुरस्तात्।
द्रागावव्रुः सर्वतो हर्षबाष्पं
व्यामुञ्चन्त्यो मन्दमुद्यन्निनादाः॥ ८॥

उसी क्षण जीवित होकर उठी हुई गायें आपको आगे देखकर आनन्दमग्न हो गयीं और तुरंत ही चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। उस समय उनके नेत्रोंसे हर्षके आँसू झर रहे थे और वे मन्द-मन्द हुङ्कार कर रही थीं॥ ८॥

रोमाञ्चोऽयं सर्वतो नः शरीरे
भूयस्यन्तः काचिदानन्दमूर्च्छा।
आश्चर्योऽयं क्ष्वेलवेगो मुकुन्दे-
त्युक्तो गोपैर्नन्दितो वन्दितोऽभूः॥ ९॥

'मुकुन्द! विषका यह वेग आश्चर्यजनक है, इससे हमारे सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो रहा है और हृदयमें आनन्दकी कोई अतिशय मूर्च्छा व्याप्त हो रही है।' यों कहकर गोपोंने आपका अभिनन्दन तथा वन्दन किया॥ ९॥

एवं भक्तान् मुक्तजीवानपि त्वं
मुग्धापाङ्गैरस्तरोगांस्तनोषि।
तादृग्भूतस्फीतकारुण्यभूमा
रोगात्पाया वायुगेहाधिनाथ॥ १०॥

इस प्रकार आप अपने भक्तोंको मृत्युग्रस्त होनेपर भी अपने मनोहर कटाक्षसे जीवित और रोग-शोकरहित कर देते हैं। वायुगेहाधिवास! आप इस प्रकारकी समृद्ध करुणासे सम्पन्न हैं, अतः मेरी रोगसे रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति कालियोपाख्याने गोगोपानामुज्जीवनवर्णनं चतुष्पञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चपञ्चाशत्तमदशकम्

कालियोपाख्यान

अथ वारिणि घोरतरं फणिनं प्रतिवारयितुं कृतधीर्भगवन्।
द्रुतमारिथ तीरगनीपतरुं विषमारुतशोषितपर्णचयम्॥ १॥

भगवन्! तदनन्तर आपने यमुना-जलमें प्रवेश करके उस भयंकर नागका निवारण करनेके लिये निश्चय किया। इस विचारसे आप शीघ्र ही एक तटवर्ती कदम्बवृक्षके निकट गये। उस वृक्षके सारे पत्ते विषयुक्त वायुके स्पर्शसे सूख गये थे॥ १॥

अधिरुह्य पदाम्बुरुहेण च तं नवपल्लवतुल्यमनोज्ञरुचा।
ह्रदवारिणि दूरतरं न्यपतः परिघूर्णितघोरतरङ्गगणे॥ २॥

तब आप नूतन पल्लवतुल्य मनोहर कान्तिवाले अपने चरणकमलोंद्वारा उस कदम्बवृक्षपर चढ़कर बड़ी ऊँचाईसे चक्राकार घूमती हुई भयंकर लहरोंसे व्याप्त उस कुण्डके जलमें कूद पड़े॥ २॥

भुवनत्रयभारभृतो भवतो गुरुभारविकम्पिविजृम्भिजला।
परिमज्जयति स्म धनुश्शतकं तटिनी झटिति स्फुटघोषवती॥ ३॥

उस समय त्रिलोकीका भार धारण करनेवाले आपके भारी भारसे जिसका जल विकम्पित तथा वृद्धिंगत हो उठा था और जिसमेंसे स्पष्ट महान् घोष प्रकट हो रहा था, उस यमुनाने तुरंत ही सौ धनुषतककी तटभूमिको जलमग्न कर दिया॥ ३॥

अथ दिक्षु विदिक्षु परिक्षुभितभ्रमितोदरवारिनिनादभरैः।
उदकादुदगादुरगाधिपतिस्त्वदुपान्तमशान्तरुषान्धमनाः ॥ ४॥

तत्पश्चात् कूदनेके कारण जिसका अन्तर्भाग परिक्षुब्ध एवं भँवरयुक्त हो रहा था, उस जलके निनादसे सारी दिशा-विदिशाएँ भर गयीं। तब अशान्त तथा क्रोधाभिभूत मनवाला नागराज कालिय जलसे ऊपर निकलकर आपके निकट गया॥ ४॥

फणशृङ्गसहस्रविनिस्सृमरज्वलदग्निकणोग्रविषाम्बुधरम् ।
पुरतः फणिनं समलोकयथा बहुशृङ्गिणमञ्जनशैलमिव ॥ ५ ॥

सहस्रों ऊँचे-ऊँचे फणोंसे निरन्तर झरनेवाले प्रज्वलित अग्निकणोंके कारण अत्यन्त उग्र विषद्रव धारण करनेवाले उस नागको आपने अपने सामने उपस्थित देखा। वह बहुत-से शिखरोंवाले कज्जलगिरिके समान जान पड़ता था॥ ५॥

ज्वलदक्षिपरिक्षरदुग्रविषश्वसनोष्मभरः स महाभुजगः ।
परिदश्य भवन्तमनन्तबलं परिवेष्टयदस्फुटचेष्टमहो ॥ ६ ॥

अहो! तब प्रज्वलित नेत्र तथा झरते हुए उग्र विषयुक्त श्वासवायुकी ऊष्मासे परिपूर्ण उस महानागने गुप्त चेष्टावाले एवं अनन्तबलशाली आपको डँसकर अपने शरीर-बन्धनसे जकड़ दिया॥ ६॥

अविलोक्य भवन्तमथाकुलिते तटगामिनि बालकधेनुगणे ।
व्रजगेहतलेऽप्यनिमित्तशतं समुदीक्ष्य गता यमुनां पशुपाः ॥ ७ ॥

आपको न देखनेके कारण तटपर स्थित बालकों तथा गौओंका समुदाय व्याकुल हो गया। उधर व्रजमें भी सैकड़ों अपशकुन होने लगे, जिन्हें देखकर नन्द आदि गोप यमुना-तटपर आ पहुँचे॥ ७॥

अखिलेषु विभो भवदीयदशामवलोक्य जिहासुषु जीवभरम् ।
फणिबन्धनमाशु विमुच्य जवादुदगम्यत हासजुषा भवता ॥ ८ ॥

विभो! जब आपकी दशा देखकर सारे व्रजवासी प्राण त्याग देनेके लिये उद्यत हो गये, तब आप शीघ्र ही नाग-बन्धनको तोड़कर हँसते हुए वेगपूर्वक जलसे ऊपर निकल आये॥ ८॥

अधिरुह्य ततः फणिराजफणान्ननृते भवता मृदुपादरुचा ।
कलशिञ्जितनूपुरमञ्जुमिलत्करकङ्कणसङ्कुलसंक्वणितम् ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् कोमल चरणकान्तिवाले आप नागराज कालियके फणोंपर चढ़कर नृत्य करने लगे। नाचते समय नूपुरोंकी मधुर झनकार हो रही थी और ताल लगानेके कारण मिले हुए हाथोंके कङ्कणोंका मनोहर शब्द हो रहा था॥ ९॥

जहृषुः पशुपास्तुतुषुर्मुनयो ववृषुः कुसुमानि सुरेन्द्रगणाः।
त्वयि नृत्यति मारुतगेहपते परिपाहि स मां त्वमदान्तगदात्॥ १०॥

आपके नृत्य करते समय गोपगण हर्षित हो रहे थे, मुनियोंको परम संतोष हो रहा था और इन्द्र आदि देवता पुष्पोंकी वृष्टि कर रहे थे। मारुतगेहपते! वही आप इस अदम्य रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति कालियोपाख्याने कालियमर्दने भगवन्नर्तनवर्णनं पञ्चपञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

षट्पञ्चाशत्तमदशकम्

कालियपर कृपा तथा श्रीकृष्णद्वारा दावानलका पान

रुचिरकम्पितकुण्डलमण्डलः सुचिरमीश ननर्तिथ पन्नगे।
अमरताडितदुन्दुभिसुन्दरं वियति गायति दैवतयौवते॥ १॥

ईश! इस प्रकार आप दीर्घकालतक कालियके फणोंपर नृत्य करते रहे। उस समय आपका कुण्डल-मण्डल सुन्दर ढंगसे हिल रहा था और देवाङ्गनाएँ आकाशमें देवोंद्वारा बजायी जाती हुई दुन्दुभियोंके मधुर स्वरके साथ सुन्दर गान कर रही थीं॥ १॥

नमति यद्यदमुष्य शिरो हरे परिविहाय तदुन्नतमुन्नतम्।
परिमथन् पदपङ्करुहा चिरं व्यहरथाः करतालमनोहरम्॥ २॥

हरे! उस नागका जो-जो फण झुक जाता था, उसे-उसे छोड़कर आप दूसरे ऊँचे-ऊँचे फणोंपर चढ़ जाते थे और अपने चरणकमलोंद्वारा उसे मथ डालते थे। इस प्रकार चिरकालतक आप क्रीड़ा करते रहे और अपने हाथोंपर ताल देते रहे, जिससे वह नृत्य हृदयको आकर्षित कर रहा था॥ २॥

त्वदवभग्नविभुग्नफणागणे गलितशोणितशोणितपाथसि।
फणिपताववसीदति सन्नतास्तदबलास्तव माधव पादयोः॥ ३॥

माधव! आपके चरण-प्रहारसे जिसके फणसमूह छिन्न-भिन्न हो गये थे और जिसके रक्त-वमन करनेसे यमुनाका जल लाल हो रहा

था, उस नागराज कालियके शिथिल पड़नेपर नागपत्नियाँ आपके चरणोंमें जा गिरीं॥ ३॥

अयि पुरैव चिराय परिश्रुतत्वदनुभावविलीनहृदो हि ताः।
मुनिभिरप्यनवाप्यपथैः स्तवैर्नुनुवुरीश भवन्तमयन्त्रितम्॥ ४॥

अयि ईश! पहले ही बहुत दिनोंसे जिन्होंने आपके माहात्म्यको सुन रखा था, अतएव आपमें ही अपने हृदयको विलीन कर दिया था, वे नागपत्नियाँ मुनियोंके लिये भी दुष्प्राप्य मार्गसे युक्त स्तोत्रोंद्वारा सर्वथा स्वतन्त्र आपकी स्तुति करने लगीं॥ ४॥

फणिवधूगणभक्तिविलोकनप्रविकसत्करुणाकुलचेतसा ।
फणिपतिर्भवताच्युत जीवितस्त्वयि समर्पितमूर्तिरवानमत्॥ ५॥

अच्युत! नागपत्नियोंकी भक्तिका अवलोकन करके आपका हृदय अतिशय करुणासे आकुल हो उठा। तब आपने नागराजको जीवित छोड़ दिया। उस समय वह अपने-आपको आपके चरणोंमें समर्पित करके नमस्कार करने लगा॥ ५॥

रमणकं व्रज वारिधिमध्यगं फणिरिपुर्न करोति विरोधिताम्।
इति भवद्वचनान्यतिमानयन् फणिपतिर्निरगादुरगैः समम्॥ ६॥

तब आपने कहा—'नागराज! अब तुम समुद्रके मध्यमें स्थित रमणक नामक द्वीपमें चले जाओ। वहाँ सर्पशत्रु गरुड़ तुम्हारा विरोध नहीं करेंगे।' आपके इस कथनका अत्यन्त आदर करता हुआ कालिय अन्य सर्पोंके साथ वहाँसे निकल गया॥ ६॥

फणिवधूजनदत्तमणिव्रजज्वलितहारदुकूलविभूषितः ।
तटगतैः प्रमदाश्रुविमिश्रितैः समगथाः स्वजनैर्दिवसावधौ॥ ७॥

तत्पश्चात् नागपत्नियोंद्वारा उपहाररूपमें दिये हुए मणिसमूहों तथा दीप्तिमान् हार और वस्त्रोंसे विभूषित हुए आप संध्यासमय तटपर खड़े हुए स्वजनोंसे आ मिले। उस समय उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु झर रहे थे॥ ७॥

निशि पुनस्तमसा व्रजमन्दिरं व्रजितुमक्षम एव जनोत्करे।
स्वपिति तत्र भवच्चरणाश्रये दवकृशानुररुन्ध समन्ततः॥ ८॥

तदनन्तर रात्रिके समय अन्धकारके कारण जब वह जन-समुदाय व्रज लौटनेमें असमर्थ हो गया, तब वहीं यमुना-तटपर आपके चरणोंका आश्रय लेकर सो गया। उस समय दावाग्निने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया॥ ८॥

प्रबुधितानथ पालय पालयेत्युदयदार्तरवान् पशुपालकान्।
अवितुमाशु पपाथ महानलं किमिह चित्रमयं खलु ते मुखम्॥ ९॥

अग्निकी ऊष्मासे जब गोपोंकी नींद उचट गयी, तब वे 'अरे बचाओ, बचाओ'—यों आर्त होकर चिल्लाने लगे। उनकी रक्षा करनेके लिये आपने तुरंत उस दावाग्निको पी लिया। इस दावाग्नि-पानमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि यह अग्नि तो आपका मुख ही है॥ ९॥

शिखिनि वर्णत एव हि पीतता परिलसत्यधुना क्रिययाप्यसौ।
इति नुतः पशुपैर्मुदितैर्विभो हर हरे दुरितैः सह मे गदान्॥ १०॥

'अग्निमें तो वर्णसे ही पीतता है, परंतु यह कृष्ण इस समय अग्नि-पानरूप कर्मसे भी पीत होकर सुशोभित हो रहा है।' विभो! इस प्रकार गोपगण हर्षोल्लसित होकर आपका स्तवन कर रहे थे। हरे! इसी प्रकार दुष्कर्मजन्य फलोंके साथ-साथ मेरे रोगोंको भी हर लीजिये॥ १०॥

॥ इति कालियोपाख्याने कालियमर्दने भगवदनुग्रहवर्णनं षट्पञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

सप्तपञ्चाशत्तमदशकम्

प्रलम्बासुरका वध

रामसखः क्वापि दिने कामद भगवन् गतो भवान् विपिनम्।
सूनुभिरपि गोपानां धेनुभिरभिसंवृतो लसद्वेषः॥ १॥

अभीष्टदाता भगवन्! एक दिन सुसज्जित वेषमें बलरामजीके साथ ग्वालबालों तथा गौओंसे घिरे हुए आप वनको गये॥ १॥

सन्दर्शयन् बलाय स्वैरं वृन्दावनश्रियं विमलाम्।
काण्डीरैः सह बालैर्भाण्डीरकमागतो वटं क्रीडन्॥ २॥

वहाँ बलरामजीको वृन्दावनकी निर्मल शोभा दिखाते हुए दण्ड-धारी बालकोंके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक क्रीडा करते हुए भाण्डीर-वटके निकट आये॥ २॥

तावत्तावकनिधनस्पृहयालुर्गोपमूर्तिरदयालुः।
दैत्यः प्रलम्बनामा प्रलम्बबाहुर्भवन्तमापेदे॥ ३॥

तबतक लंबी भुजाओंवाला प्रलम्ब नामक दैत्य, जो बड़ा ही क्रूर था, आपको मार डालनेकी इच्छासे गोपवेष धारण करके आपके पास आया॥ ३॥

जानन्नप्यविजानन्निव तेन समं निबद्धसौहार्दः।
वटनिकटे पटुपशुपव्याबद्धं द्वन्द्वयुद्धमारब्धाः॥ ४॥

'यह राक्षस है'—यों जानते हुए भी आपने अनजानकी तरह उसके साथ मित्रता कर ली। तब उस वटके निकट द्वन्द्वयुद्धकुशल दो-दो गोपोंमें निश्चित परस्पर द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ करवाया॥ ४॥

गोपान् विभज्य तन्वन् सङ्घं बलभद्रकं भवत्कमपि।
त्वद्बलभीरुं दैत्यं त्वद्बलगतमन्वमन्यथा भगवन्॥ ५॥

उस समय आपने गोपोंको दो दलोंमें बाँट दिया। एक दलके नायक बलरामजी तथा दूसरे दलके नायक आप हुए। भगवन्! प्रलम्बासुर पहलेसे ही आपके बलसे डरा हुआ था, अतः उसने आपके ही दलमें सम्मिलित होना चाहा, तब आपने उसे स्वीकृति दे दी॥ ५॥

कल्पितविजेतृवहने समरे परयूथगं स्वदयिततरम्।
श्रीदामानमधत्थाः पराजितो भक्तदासतां प्रथयन्॥ ६॥

उस युद्धमें यह शर्त रखी गयी कि पराजित दल विजेता दलको अपनी पीठपर चढ़ाकर नियत स्थानतक ले चलेगा। तब पराजित हुए आप अपनी भक्त-पराधीनताको प्रकट करते हुए अपने अतिशय प्रेमी श्रीदामाको पीठपर चढ़ाकर ले चले॥ ६॥

एवं बहुषु विभूमन् बालेषु वहत्सु वाह्यमानेषु।
रामविजितः प्रलम्बो जहार तं दूरतो भवद्भीत्या॥ ७॥

विभूमन्! इस प्रकार बहुत-से बालक परस्पर एक-दूसरेको वहन करते तथा वहन किये जा रहे थे। उसी बीचमें बलरामसे पराजित हुआ प्रलम्बासुर उन्हें पीठपर चढ़ाकर आपके भयसे नियत स्थानसे दूर जाकर ले भागा॥ ७॥

त्वद्दूरं गमयन्तं तं दृष्ट्वा हलिनि विहितगरिमभरे।
दैत्यः स्वरूपमागाद्यद्रूपात् स हि बलोऽपि चकितोऽभूत्॥ ८॥

आपके पाससे दूर ले जाते हुए उस दैत्यको देखकर बलरामजीने अपने शरीरके बोझको भारी कर दिया, जिसे वहन करनेमें असमर्थ होनेके कारण प्रलम्बासुर अपने असली स्वरूपमें प्रकट हो गया। उसके रूपको देखकर बलरामजी भी चकित हो गये॥ ८॥

उच्चतया दैत्यतनोस्त्वन्मुखमालोक्य दूरतो रामः।
विगतभयो दृढमुष्ट्या भृशदुष्टं सपदि पिष्टवानेनम्॥ ९ ॥

उस दैत्यके शरीरके ऊपरी भाग अर्थात् कंधेपर बैठे हुए बलरामजी दूरसे ही आपके मुखको देखकर निर्भय हो गये। तब उन्होंने तुरंत ही अपने सुदृढ़ मुक्केके प्रहारसे अतिशय दुष्ट प्रलम्बासुरके मस्तकको चूर-चूर कर दिया॥ ९॥

हत्वा दानववीरं प्राप्तं बलमालिलिङ्गिथ प्रेम्णा।
तावन्मिलतोर्युवयोः शिरसि कृता पुष्पवृष्टिरमरगणैः॥ १०॥

इस प्रकार उस दानववीर प्रलम्बका संहार करके लौटे हुए बलरामजीका आपने प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया। उस समय परस्पर मिलते हुए आप दोनोंके मस्तकपर देवगण पुष्पवर्षा करने लगे॥ १०॥

आलम्बो भुवनानां प्रालम्बं निधनमेवमारचयन्।
कालं विहाय सद्यो लोलम्बरुचे हरे हरेः क्लेशान्॥ ११॥

भुवनोंके आश्रयभूत आपने इस प्रकार प्रलम्बासुरका निधन कराया। लोलम्बरुचे! हरे! विलम्ब न करके शीघ्र ही मेरे क्लेशोंको हर लीजिये॥ ११॥

॥ इति प्रलम्बासुरवधवर्णनं सप्तपञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

अष्टपञ्चाशत्तमदशकम्

इषीक-वनमें गौओंका दावानलसे उद्धार

त्वयि विहरणलोले बालजालैः प्रलम्ब-
प्रमथनसविलम्बे धेनवः स्वैरचाराः।
तृणकुतुकनिविष्टा दूरदूरं चरन्त्यः
किमपि विपिनमैषीकाख्यमीषाम्बभूवुः॥ १॥

ग्वालबालोंके समुदायके साथ जब आप क्रीड़ा-विहारमें व्यग्र थे और प्रलम्बासुरके वधके कार्यमें आपको अधिक विलम्ब हो गया, तब स्वेच्छानुसार विचरनेवाली गौएँ नयी-नयी घासके लिये उत्सुक हो दूर-दूरतक चरती हुई किसी ऐषीक नामक वनमें जा पहुँचीं॥ १॥

अनधिगतनिदाघक्रौर्यवृन्दावनान्ताद्
बहिरिदमुपयाताः काननं धेनवस्ताः।
तव विरहविषण्णा ऊष्मलग्रीष्मताप-
प्रसरविसरदम्भस्याकुलाः स्तम्भमापुः॥ २॥

जहाँ निदाघ (ग्रीष्म)-की उग्रताका पता नहीं चलता है, उस वृन्दावनकी सीमासे बाहर निकलकर वे सारी धेनुएँ इस ऐषीकवन (अथवा मुञ्जाटवी) आ पहुँची थीं। एक तो वे आपके विरहसे व्याकुल थीं, दूसरे उष्णतासे पूर्ण ग्रीष्मऋतुके तापके प्रसारसे उनके सारे अङ्ग पसीनेमें डूब रहे थे। अतः उस वनमें वे स्तब्ध खड़ी रह गयीं॥ २॥

तदनु सह सहायैर्दूरमन्विष्य शौरे
गलितसरणि मुञ्जारण्यसञ्जातखेदम्।
पशुकुलमभिवीक्ष्य क्षिप्रमानेतुमारा-
त्त्वयि गतवति ही ही सर्वतोऽग्निर्जजृम्भे॥ ३॥

वसुदेवनन्दन! तदनन्तर आपने अपने सखाओंके साथ दूरतक पता लगाकर देखा कि पशुओंका समूह मार्गभ्रष्ट होकर मुञ्जारण्यमें जाकर अत्यन्त क्लेश उठा रहा है। यह देख उन गौओंको शीघ्र लौटा लानेके

लिये आप ज्यों ही निकट गये, त्यों ही, हाय-हाय! सब ओर दावानल फैल गया॥ ३॥

सकलहरिति दीप्ते घोरभाङ्कारभीमे
शिखिनि विहतमार्गा अर्धदग्धा इवार्ताः।
अहह भुवनबन्धो पाहि पाहीति सर्वे
शरणमुपगतास्त्वां तापहर्तारमेकम्॥ ४॥

सारी दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं। घोर भाङ्काररवसे युक्त आग बड़ी भयानक प्रतीत होने लगी। उसमें मार्ग भूल जानेके कारण आपके सखा और गौएँ अधजली-सी होकर आर्तनाद करने लगीं। 'अहह, भुवनबन्धो! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—ऐसा कहते हुए वे सब-के-सब एकमात्र तापहारी आप भगवान्‌की शरणमें गये॥ ४॥

अलमलमतिभीत्या सर्वतो मीलयध्वं
दृशमिति तव वाचा मीलिताक्षेषु तेषु।
क्व नु दवदहनोऽसौ कुत्र मुञ्जाटवी सा
सपदि ववृतिरे ते हन्त भाण्डीरदेशे॥ ५॥

तब आपने कहा—'अरे! अत्यन्त भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं, तुम डरो मत। सब ओरसे नेत्रोंको अच्छी तरह मूँद लो।' आपके इस आदेशसे जब सबने नेत्र बंद कर लिये, तब कहाँ रहा वह दावानल और कहाँ गयी वह मुञ्जाटवी? सब-के-सब उसी क्षण भाण्डीर-वटके समीप विद्यमान हो गये। यह कैसा आश्चर्य है॥ ५॥

जय जय तव माया केयमीशेति तेषां
नुतिभिरुदितहासो बद्धनानाविलासः।
पुनरपि विपिनान्ते प्राचरः पाटलादि-
प्रसवनिकरमात्रग्राह्यघर्मानुभावे ॥ ६॥

'हे ईश! आपकी जय हो, जय हो। आपकी यह कैसी माया है?' ग्वालबालोंके मुखसे इस प्रकार अपनी स्तुति सुनकर आप हँसने लगे और नाना प्रकारके लीला-विलासमें संलग्न हो गये। तत्पश्चात् जहाँ

पाड़र आदि वृक्षोंके पत्र-पुष्पादिके समुदायमात्रसे गृहीत ग्रीष्मके तापका अनुभव नहीं होने पाता था, उस वनप्रान्तमें आप पुनः विचरने लगे॥ ६॥

त्वयि विमुखमिवोच्चैस्तापभारं वहन्तं
तव भजनवदन्तःपङ्कमुच्छोषयन्तम्।
तव भुजवदुदञ्चद्भूरितेजःप्रवाहं
तपसमयमनैषीर्यामुनेषु स्थलेषु॥ ७॥

आपसे विमुख पुरुषकी भाँति जो भारी तापका भार वहन करता है, आपके भजनकी भाँति भीतरके पङ्कको सोख लेता है तथा आपकी भुजाओंके समान जिससे अत्यन्त तेजका प्रवाह उठता रहता है, उस तपन-समय (ग्रीष्म)-को आपने यमुना-तटवर्ती स्थलोंपर व्यतीत किया॥ ७॥

तदनु जलदजालैस्त्वद्वपुस्तुल्यभाभि-
र्विकसदमलविद्युत्पीतवासोविलासैः।
सकलभुवनभाजां हर्षदां वर्षवेलां
क्षितिधरकुहरेषु स्वैरवासी व्यनैषीः॥ ८॥

इसके बाद आपके श्रीअङ्गोंके समान कान्तिवाले मेघोंके समूहसे, जो विकसित निर्मल विद्युद्रूपी पीताम्बरसे विलसित हैं, समस्त भुवनवासियोंको हर्ष देनेवाली वर्षा-ऋतुकी वेलाको पर्वतकी कन्दराओंमें स्वच्छन्दतापूर्वक निवास करके बिताया॥ ८॥

कुहरतलनिविष्टं त्वां गरिष्ठं गिरीन्द्रः
शिखिकुलनवकेकाकाकुभिः स्तोत्रकारी।
स्फुटकुटजकदम्बस्तोमपुष्पाञ्जलिं च
प्रविदधदनुभेजे देव गोवर्धनोऽसौ॥ ९॥

देव! उस समय वह गिरिराज गोवर्धन अपनी गुफामें निवास करनेवाले अत्यन्त गौरवशाली आपका निरन्तर सेवन करता रहा। मयूरकुलकी नूतन केकावाणीद्वारा वह आपकी स्तुति करता था तथा

खिले हुए कुटज और कदम्बके पुष्प-समूहोंसे आपके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि चढ़ाता था॥ ९॥

अथ शरदमुपेतां तां भवद्भक्तचेतो-
विमलसलिलपूरां मानयन् काननेषु।
तृणममलवनान्ते चारु सञ्चारयन् गाः
पवनपुरपते त्वं देहि मे देहसौख्यम्॥ १०॥

तदनन्तर आपके भक्तोंके चित्तके समान निर्मल जल-प्रवाहसे सुशोभित शरद् ऋतु आ गयी। आप उसे सम्मान देते हुए विभिन्न काननोंके स्वच्छ वनप्रान्तमें गौओंको सुन्दर घास चराते हुए विचरने लगे। हे पवनपुराधीश्वर! मेरे शरीरके रोग दूर करके आप मुझे दैहिक सौख्य प्रदान करें॥ १०॥

॥ इति ग्रीष्मवर्षाशरद्वर्णनमष्टपञ्चाशत्तमदशकं समाप्तम्॥

एकोनषष्टितमदशकम्

वेणुगीत और गोपियोंका अनुराग

त्वद्वपुर्नवकलायकोमलं प्रेमदोहनमशेषमोहनम्।
ब्रह्मतत्त्वपरचिन्मुदात्मकं वीक्ष्य सम्मुमुहुरन्वहं स्त्रियः॥ १॥

प्रभो! आपका श्रीअङ्ग नये केरावके समान कोमल, प्रेमपूरक तथा सबके मनको मोह लेनेवाला है। वह ब्रह्मतत्त्वसे भी उत्कृष्ट एवं चिदानन्दमय है। उसका दर्शन करके व्रजाङ्गनाएँ प्रतिदिन मोहित रहती थीं॥ १॥

मन्मथोन्मथितमानसाः क्रमात्त्वद्विलोकनरतास्ततस्ततः।
गोपिकास्तव न सेहिरे हरे काननोपगतिमप्यहर्मुखे॥ २॥

हरे! गोपियोंके मनको आपके प्रति उत्पन्न अतिशय प्रीतिने मथ डाला था। वे क्रमशः जहाँ-तहाँ खड़ी होकर आपके दर्शनमें ही तत्पर रहती थीं। प्रातःकाल गोचारणके लिये आपका वनमें जाना भी वे सहन नहीं कर पाती थीं॥ २॥

निर्गते भवति दत्तदृष्टयस्त्वद्गतेन मनसा मृगेक्षणाः।
वेणुनादमुपकर्ण्य दूरतस्त्वद्विलासकथयाभिरेमिरे॥ ३॥

जब आप वनमें जानेके लिये घरसे निकलते, तब मृगनयनी गोप-सुन्दरियोंकी आँखें आपकी ओर ही लगी रहती थीं। उनका मन भी आपमें ही लगा होता था। वे दूरसे आपकी वंशीध्वनि सुनकर आपके लीला-विलासकी चर्चामें ही रत रहती थीं॥ ३॥

काननान्तमितवान् भवानपि स्निग्धपादपतले मनोरमे।
व्यत्ययाकलितपादमास्थितः प्रत्यपूरयत वेणुनालिकाम्॥ ४॥

वनमें पहुँचकर आप भी किसी घनी छायावाले मनोरम वृक्षके नीचे बायें पैरको दायें और दायें पैरको बायें करके खड़े हो वंशीके छिद्रोंमें स्वर भरने लगते थे॥ ४॥

मारबाणधुतखेचरीकुलं निर्विकारपशुपक्षिमण्डलम्।
द्रावणं च दृषदामपि प्रभो तावकं व्यजनि वेणुकूजितम्॥ ५॥

प्रभो! आपका वेणुनाद प्रकट हुआ। वह आकाशस्थित देवाङ्गनाओंको प्रेमबाणसे आहत एवं कम्पित किये देता था। उसे सुनकर पशु-पक्षियोंके समुदाय भी निर्विकारभावसे स्थिर हो जाते थे तथा वह वंशीरव पत्थरोंको भी पिघला देता था॥ ५॥

वेणुरन्ध्रतरलाङ्गुलीदलं तालसञ्चलितपादपल्लवम्।
तत्स्थितं तव परोक्षमप्यहो संविचिन्त्य मुमुहुर्व्रजाङ्गनाः॥ ६॥

आपके हाथोंकी अङ्गुलियाँ वंशीके छिद्रोंपर चञ्चलगतिसे फिर रही हैं। आपके चरण-पल्लव तालके अनुसार संचलित हो रहे हैं। इस प्रकार खड़े होकर आप मुरली बजा रहे हैं। यह बात यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं थी—परोक्षमें ही हो रही थी, तथापि मनसे इसका चिन्तन करके व्रजाङ्गनाएँ मोहित हो जाती थीं॥ ६॥

निर्विशङ्कभवदङ्गदर्शिनीः खेचरीः खगमृगान् पशूनपि।
त्वत्पदप्रणयि काननं च ताः धन्यधन्यमिति नन्वमानयन्॥ ७॥

आपके श्रीअङ्गोंका बेखटके दर्शन करनेवाली आकाशचारिणी

देव-सुन्दरियोंको, खग-मृग और पशुओंको तथा आपके चरणोंमें अनुरक्त उस काननको भी वे गोपाङ्गनाएँ 'धन्य-धन्य' मानती थीं॥ ७॥

आपिबेयमधरामृतं कदा वेणुभुक्तरसशेषमेकदा।
दूरतो बत कृतं दुराशयेत्याकुला मुहुरिमाः समामुहन्॥ ८॥

'मुरलीद्वारा आस्वादित रसका अवशिष्ट भाग जहाँ विद्यमान है, श्यामसुन्दरके उस अधरामृतका मैं कब एक बार पान करूँगी? हाय! दुराशाने मुझसे इस अमृतको दूर कर रखा है।' इस प्रकार बारंबार विचार करके व्याकुल हो ये गोपाङ्गनाएँ मोहित हो जाती थीं॥ ८॥

प्रत्यहं च पुनरित्थमङ्गनाश्चित्तयोनिजनितादनुग्रहात्।
बद्धरागविवशास्त्वयि प्रभो नित्यमापुरिह कृत्यमूढताम्॥ ९॥

प्रभो! इस प्रकार प्रतिदिन कामजनित अनुग्रहके कारण व्रजाङ्गनाएँ आपके प्रति सुदृढ़ अनुरागसे विवश हो नित्यप्रति किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती थीं॥ ९॥

रागस्तावज्जायते हि स्वभावान्-
मोक्षोपायो यत्नतः स्यान्न वा स्यात्।
तासां त्वेकं तद्द्वयं लब्धमासीद्
भाग्यं भाग्यं पाहि मां मारुतेश॥ १०॥

राग तो सबका स्वभावतः बढ़ता है, किंतु मोक्षका उपायभूत वैराग्य आदि साधन यत्न करनेपर भी किसीसे बने या न बने—इसमें संदेह है। परंतु उन गोपाङ्गनाओंको एकमात्र राग ही आपके प्रति अनुराग एवं (संसारसे वैराग्यरूप) मोक्षोपाय—दोनोंके रूपमें उपलब्ध था। उनका अहोभाग्य! अहोभाग्य!! वायुपुरके अधीश्वर! आप मेरी रक्षा करें॥ १०॥

॥ इति वेणुगानवर्णनम् एकोनषष्टितमदशकं समाप्तम्॥

षष्टितमदशकम्

चीरहरण-लीला

मदनातुरचेतसोऽन्वहं भवदङ्घ्रिद्वयदास्यकाम्यया।
यमुनातटसीम्नि सैकतीं तरलाक्ष्यो गिरिजां समार्चिचन्॥ १॥

आपके प्रति प्रेमसे आतुरचित्त हुई चञ्चल नेत्रोंवाली गोपकिशोरियाँ आपके चरणारविन्दोंकी दासी होनेकी कामना मनमें लेकर प्रतिदिन यमुना-तटकी सीमामें वालुकामयी गिरिजा (कात्यायनीदेवी)-की प्रतिमाका पूजन करने लगीं॥ १॥

तव नामकथारताः समं सुदृशः प्रातरुपागता नदीम्।
उपहारशतैरपूजयन् दयितो नन्दसुतो भवेदिति॥ २॥

आपके नामकीर्तनमें तत्पर रहकर सुलोचना गोपियाँ प्रातःकाल एक साथ यमुना-तटपर आतीं और सैकड़ों प्रकारके उपहार अर्पित करके देवीकी पूजा करती थीं। उस समय उन सबके मनमें एक ही संकल्प था कि 'नन्दनन्दन मेरे प्राणवल्लभ हों'॥ २॥

इति मासमुपाहितव्रतास्तरलाक्षीरभिवीक्ष्य ता भवान्।
करुणामृदुलो नदीतटं समयासीत्तदनुग्रहेच्छया॥ ३॥

इस प्रकार एक मासतक व्रतका पालन करनेवाली उन चञ्चलनयनी गोपकुमारियोंको देखकर आप करुणासे द्रवित हो गये और उनपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे यमुना-तटपर गये॥ ३॥

नियमावसितौ निजाम्बरं तटसीमन्यवमुच्य तास्तदा।
यमुनाजलखेलनाकुलाः पुरतस्त्वामवलोक्य लज्जिताः॥ ४॥

उस समय व्रतकी समाप्तिके दिन अपने वस्त्र उतार नदीके किनारे रखकर यमुना-जलमें स्नानके लिये प्रविष्ट हुईं वे गोप-किशोरियाँ जलक्रीड़ामें संलग्न हो गयीं। इतनेहीमें आपको सामने उपस्थित देख वे सब-की-सब बहुत लज्जित हुईं॥ ४॥

त्रपया नमिताननास्वथो वनितास्वम्बरजालमन्तिके।
निहितं परिगृह्य भूरुहो विटपं त्वं तरसाधिरूढवान्॥ ५॥

लज्जासे उन सभी गोपकुमारियोंके मुख नीचेको झुक गये। इसी समय पास ही रखे हुए उनके वस्त्र-समूहको लेकर आप बड़े वेगसे वृक्षकी शाखापर जा चढ़े॥ ५॥

इह तावदुपेत्य नीयतां वसनं वः सुदृशो यथायथम्।
इति नर्ममृदुस्मिते त्वयि ब्रुवति व्यामुमुहे वधूजनैः॥ ६॥

और बोले—'सुलोचनाओ! पहले एक-एक करके यहाँ मेरे पास आओ और यथावत्-रूपसे अपने-अपने वस्त्रको पहचानकर ले जाओ।' परिहासपूर्ण मृदुभाषामें ऐसा कहकर आप मुस्कराये। यह देख वे नववधुएँ (गोपकुमारियाँ) अत्यन्त मुग्ध हो गयीं॥ ६॥

अयि जीव चिरं किशोर नस्तव दासीरवशीकरोषि किम्।
प्रदिशाम्बरमम्बुजेक्षणेत्युदितस्त्वं स्मितमेव दत्तवान्॥ ७॥

फिर वे बोलीं—'नन्दकिशोर! तुम चिरजीवी होओ। हम सब तो तुम्हारी दासियाँ हैं। हमें विवश क्यों करते हो? कमलनयन! हमें वस्त्र दे दो।' उनके ऐसा कहनेपर भी आपने उन्हें वस्त्रके बदले मीठी-मीठी मुस्कान ही दी॥ ७॥

अधिरुह्य तटं कृताञ्जलीः परिशुद्धाः स्वगतीर्निरीक्ष्य ताः।
वसनान्यखिलान्यनुग्रहं पुनरेवं गिरमप्यदा मुदा॥ ८॥

आपने देखा कि गोपकिशोरियाँ हाथ जोड़े तटके ऊपर आ गयी हैं, इनका अन्तःकरण पूर्णतः शुद्ध है और एकमात्र मैं ही इनकी गति हूँ, तब आपने प्रसन्नतापूर्वक उनके सारे वस्त्र दे दिये और पुनः इस प्रकार अनुग्रहपूर्ण बात कही॥ ८॥

विदितं ननु वो मनीषितं वदितारस्त्विह योग्यमुत्तरम्।
यमुनापुलिने सचन्द्रिकाः क्षणदा इत्यबलास्त्वमूचिवान्॥ ९॥

'गोपियो! तुम्हारा मनोरथ क्या है? यह मुझे ज्ञात हो गया है; अब इसका योग्य उत्तर यमुनापुलिनपर सुशोभित चाँदनी रातें ही देंगी'—इस प्रकार आपने उन अबलाओंसे कहा॥ ९॥

उपकर्ण्य भवन्मुखच्युतं मधुनिष्यन्दि वचो मृगीदृशः।
प्रणयादयि वीक्ष्य वीक्ष्य ते वदनाब्जं शनकैर्गृहं गताः॥ १०॥

प्रभो! आपके मुखसे निकली मधुके समान मधुर यह बात सुनकर वे मृगलोचना गोपकिशोरियाँ बड़े प्रेमसे बारंबार आपके मुखारविन्दकी ओर देखती हुई धीरे-धीरे घरको गयीं॥ १०॥

इति नन्वनुगृह्य वल्लवीर्विपिनान्तेषु पुरेव सञ्चरन्।
करुणाशिशिरो हरे हर त्वरया मे सकलामयावलिम्॥ ११॥

हरे! इस प्रकार गोपकन्याओंपर अनुग्रह करके आप पूर्ववत् वन-प्रान्तमें विचरण करने लगे। आप स्वभावतः करुणासे शीतल हैं। कृपया मेरे सारे रोगोंको शीघ्र हर लीजिये॥ ११॥

॥ इति चीरहरणलीलायां गोपीवस्त्रापहरणवर्णनं षष्टितमदशकं समाप्तम्॥

एकषष्टितमदशकम्

द्विज-पत्नियोंका मोक्ष

ततश्च वृन्दावनतोऽतिदूरतो वनं गतस्त्वं खलु गोपगोकुलैः।
हृदन्तरे भक्ततरद्विजाङ्गनाकदम्बकानुग्रहणाग्रहं वहन्॥ १॥

तदनन्तर एक दिन आप वृन्दावनसे अत्यन्त दूर एक वनमें ग्वालबालों और गौओंके साथ गये। उस समय आप अपने हृदयके भीतर अपनी अतिशय भक्ता द्विजाङ्गनाओंके समुदायपर अनुग्रह करनेका आग्रह लिये हुए थे॥ १॥

ततो निरीक्ष्याशरणे वनान्तरे
किशोरलोकं क्षुधितं तृषाकुलम्।
अदूरतो यज्ञपरान् द्विजान् प्रति
व्यसर्जयो दीदिवियाचनाय तान्॥ २॥

तत्पश्चात् उस वनके भीतर, जहाँ कोई घर-द्वार नहीं था, गोपकिशोरोंको भूख-प्याससे पीड़ित देख आपने उन्हें पास ही यज्ञानुष्ठानमें लगे हुए ब्राह्मणोंके यहाँ भात माँग लानेके लिये भेजा॥ २॥

गतेष्वथो तेष्वभिधाय तेऽभिधां
कुमारकेष्वोदनयाचिषु प्रभो।
श्रुतिस्थिरा अप्यभिनिन्युरश्रुतिं
न किञ्चिदूचुश्च महीसुरोत्तमाः॥ ३॥

प्रभो! वे गोपकुमार गये और आपका नाम बताकर वहाँ भात माँगने लगे। परंतु उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने श्रुतिमें स्थिर (श्रवण या श्रुतिपाठमें दृढ़) होकर भी अश्रुति (नहीं सुनने या श्रुतिको न जानने)-का अभिनय (नाट्य) करके उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया॥ ३॥

अनादरात् खिन्नधियो हि बालकाः
समाययुर्युक्तमिदं हि यज्वसु।
चिरादभक्ताः खलु ते महीसुराः
कथं हि भक्तं त्वयि तैः समर्प्यते॥ ४॥

उनके द्वारा की गयी अवहेलनासे गोप-बालकोंका चित्त खिन्न हो गया और वे आपके पास लौट आये। उन याज्ञिक ब्राह्मणोंके समुदायमें इस तरहका व्यवहार या बर्ताव होना असंगत नहीं था। वे भूसुरगण चिरकालसे अभक्त (भक्ति या भातसे रहित) थे। अतः उनके द्वारा आपके लिये भक्त (भात)-का अर्पण कैसे किया जाता॥ ४॥

निवेदयध्वं गृहिणीजनाय मां
दिशेयुरन्नं करुणाकुला इमाः।
इति स्मितार्द्रं भवतेरिता गता-
स्ते दारका दारजनं ययाचिरे॥ ५॥

'अच्छा तो, तुमलोग उनकी पत्नियोंके पास जाकर मेरे आनेकी सूचना दो, इनका हृदय करुणासे भरा हुआ है। ये अवश्य भोजन दे सकती हैं।' आपने मुस्कराकर जब ऐसी बात कही, तब उन गोपबालकोंने द्विज-पत्नियोंके पास जाकर अन्नके लिये याचना की॥ ५॥

गृहीतनाम्नि त्वयि सम्भ्रमाकुला-
श्चतुर्विधं भोज्यरसं प्रगृह्य ताः।

चिरं धृतत्वत्प्रविलोकनाग्रहाः
स्वकैर्निरुद्धा अपि तूर्णमाययुः ॥ ६ ॥

उन द्विज-पत्नियोंके हृदयमें चिरकालसे आपके दर्शनका आग्रह बना हुआ था। अतः आपका नाम लिये जाते ही वे बड़े वेगसे उठ खड़ी हुईं और चार प्रकारका भोज्यरस लेकर स्वजनोंके रोकनेपर भी उनकी बात न मानकर तुरंत आपके पास चली आयीं॥ ६॥

विलोलपिच्छं चिकुरे कपोलयोः
समुल्लसत्कुण्डलमार्द्रमीक्षिते ।
निधाय बाहुं सुहृदंससीमनि
स्थितं भवन्तं समलोकयन्त ताः ॥ ७ ॥

उन्होंने आकर देखा—आपके केश-पाशमें मोरपंख फहरा रहा है। दोनों कपोलोंपर कुण्डल झलमला रहे हैं, दृष्टि करुणासे आर्द्र है तथा आप एक सखाके कंधेपर अपनी एक बाँह रखे खड़े हैं॥ ७॥

तदा च काचित्त्वदुपागमोद्यता
गृहीतहस्ता दयितेन यज्वना।
तदैव सञ्चिन्त्य भवन्तमञ्जसा
विवेश कैवल्यमहो कृतिन्यसौ ॥ ८ ॥

उस समय किसी एक द्विजपत्नीको, जो आपके पास आनेको उद्यत थी, उसके याज्ञिक पतिने हाथ पकड़कर रोक लिया। तब वह उसी क्षण आपका चिन्तन करके अनायास ही कैवल्यधाममें प्रविष्ट हो गयी। अहो, वह बड़ी पुण्यवती थी॥ ८॥

आदाय भोज्यान्यनुगृह्य ताः पुन-
स्त्वदङ्गसङ्गस्पृहयोज्झतीर्गृहम् ।
विलोक्य यज्ञाय विसर्जयन्निमा-
श्चकर्थ भर्तॄनपि तास्वगर्हणान्॥ ९ ॥

वहाँ गयी हुई द्विजपत्नियाँ आपके अङ्ग-सङ्ग (आपके श्रीअङ्गोंकी सेवा)-की कामनासे घर-बार छोड़ देनेको तैयार थीं। यह देख आपने

इनसे भोज्य पदार्थ ले लिये और इनपर अनुग्रह करके पुनः इन्हें यज्ञशालाको ही लौटा दिया। इतना ही नहीं, आपने इनके पतियोंको भी इन पत्नियोंके प्रति निन्दा-भावनासे रहित कर दिया॥ ९॥

निरूप्य दोषं निजमङ्गनाजने
विलोक्य भक्तिं च पुनर्विचारिभिः।
प्रबुद्धतत्त्वैस्त्वमभिष्टुतो द्विजै-
र्मरुत्पुराधीश निरुन्धि मे गदान्॥ १०॥

अपने दोषकी ओर दृष्टिपातकर और अपनी पत्नियोंके मनमें आपके प्रति अविचल भक्ति-भाव देखकर उन द्विजोंने पुनः विचार किया। इससे उन्हें आपके तत्त्वका बोध हुआ और उन्होंने आपकी स्तुति की। हे वायुपुराधीश्वर! मेरे रोगोंको नष्ट कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति द्विजपत्नीमोक्षवर्णनम् एकषष्टितमदशकं समाप्तम्॥

द्विषष्टितमदशकम्

इन्द्रयाग-निवारण

कदाचिद्गोपालान् विहितमखसम्भारविभवान्
निरीक्ष्य त्वं शौरे मघवमदमुद्ध्वंसितुमनाः।
विजानन्नप्येतान् विनयमृदु नन्दादिपशुपा-
नपृच्छः को वायं जनक भवतामुद्यम इति॥ १॥

वसुदेवनन्दन! एक समयकी बात है, गोपगण यज्ञानुष्ठानके लिये सामग्री जुटा रहे थे। यह देखकर आपने इन्द्रके अभिमानको चूर्ण करनेके लिये सब बात जानते हुए भी, इन नन्दादि गोपोंसे विनययुक्त मृदु वाणीमें पूछा—'पिताजी! आपलोग यह कैसी तैयारी कर रहे हैं?'॥ १॥

बभाषे नन्दस्त्वां सुत ननु विधेयो मघवतो
मखो वर्षे वर्षे सुखयति स वर्षेण पृथिवीम्।
नृणां वर्षायत्तं निखिलमुपजीव्यं महितले
विशेषादस्माकं तृणसलिलजीव्या हि पशवः॥ २॥

नन्दजीने आपको बताया—'बेटा! इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये प्रतिवर्ष यज्ञ किया जाता है। वे वर्षाद्वारा पानी बरसाकर पृथ्वीको सुख पहुँचाते हैं। पृथ्वीपर मनुष्योंकी सारी आजीविका वर्षाके ही अधीन है। विशेषतः हमलोगोंके पशु तो तृण और जलपर ही जीवन धारण करते हैं'॥ २॥

इति श्रुत्वा वाचं पितुरयि भवानाह सरसं
धिगेतन्नो सत्यं मघवजनिता वृष्टिरिति यत्।
अदृष्टं जीवानां सृजति खलु वृष्टिं समुचितां
महारण्ये वृक्षाः किमिव बलिमिन्द्राय ददते॥ ३॥

प्रभो! पिताकी यह बात सुनकर आपने सरस वाणीमें कहा—'धिक्कार है इस मान्यताको। पिताजी! यह सत्य नहीं है कि इन्द्र ही वर्षा करते हैं। जीवोंका अदृष्ट (प्रारब्ध) ही समुचित वर्षा करता है। बड़े-बड़े जंगलोंके वृक्ष इन्द्रको क्या बलि देते हैं—कैसी पूजा चढ़ाते हैं!'॥ ३॥

इदं तावत् सत्यं यदिह पशवो नः कुलधनं
तदाजीव्यायासौ बलिरचलभर्त्रे समुचितः।
सुरेभ्योऽप्युत्कृष्टा ननु धरणिदेवाः क्षितितले
ततस्तेऽप्याराध्या इति जगदिथ त्वं निजजनान्॥ ४॥

'यह तो सर्वथा सत्य है कि यहाँ पशु ही हमारे कुलके धन हैं। उनकी आजीविकाके लिये हमें उन सुप्रसिद्ध गिरिराज गोवर्धनको पूजा देनी उचित है। इस पृथ्वीपर तो देवताओंसे भी उत्कृष्ट भूदेव—ब्राह्मण ही हैं। अतः उनकी भी आराधना करनी चाहिये।' यह बात आपने स्वजनोंसे कही॥ ४॥

भवद्वाचं श्रुत्वा बहुमतियुतास्तेऽपि पशुपा
द्विजेन्द्रानर्चन्तो बलिमददुरुच्चैः क्षितिभृते।

व्यधुः प्रादक्षिण्यं सुभृशमनमन्नादरयुता-
स्त्वमादः शैलात्मा बलिमखिलमाभीरपुरतः॥ ५॥

आपकी बात सुनकर बहुमत आपके पक्षमें हो गया और उस बहुमतसे युक्त गोपोंने ब्राह्मणोंकी पूजा करते हुए गिरिराज गोवर्धनको बड़ी भारी भेंट-सामग्री अर्पित की—अन्नकूटका भोग लगाया। गिरिराजकी परिक्रमा की और बड़े आदरके साथ अत्यन्त विनम्र होकर प्रणाम किया। इधर आपने पर्वतके रूपमें प्रकट होकर गोपोंके समक्ष सारी भेंट-सामग्री स्वयं भोग लगायी॥ ५॥

अवोचश्चैवं तान् किमिह वितथं मे निगदितं
गिरीन्द्रो नन्वेष स्वबलिमुपभुङ्क्ते स्ववपुषा।
अयं गोत्रो गोत्रद्विषि च कुपिते रक्षितुमलं
समस्तानित्युक्त्वा जहृषुरखिला गोकुलजुषः॥ ६॥

फिर आपने उन गोपोंसे कहा—'बन्धुओ! क्या यहाँ मेरा कथन सत्य नहीं था। देखो, ये साक्षात् गिरिराज अपने शरीरसे प्रकट होकर अपनेको प्राप्त हुई बलि-सामग्रीका भोग आरोग रहे हैं। ये गोत्र (पर्वत) हैं और इन्द्र गोत्रद्रोही हैं। अतः उनके कुपित होनेपर ये हमारी रक्षा करनेमें समर्थ हैं।' सब गोपोंसे ऐसा कहकर जब आप चुप हुए, तब सम्पूर्ण गोकुलसेवी गोप बड़े प्रसन्न हुए॥ ६॥

परिप्रीता याताः खलु भवदुपेता व्रजजुषो
व्रजं यावत्तावन्निजमखविभङ्गं निशमयन्।
भवन्तं जानन्नप्यधिकरजसाऽऽक्रान्तहृदयो
न सेहे देवेन्द्रस्त्वदुपरचितात्मोन्नतिरपि॥ ७॥

अत्यन्त तृप्त और प्रसन्न होकर सभी व्रजवासी आपके साथ ज्यों ही व्रजको लौटे, त्यों ही अपने यज्ञके भङ्ग होनेका समाचार सुनकर इन्द्र कुपित हो उठे। यद्यपि वे आपको जानते थे और उनकी अपनी उन्नति भी आपपर ही निर्भर करती थी, तथापि अधिक रजोगुणसे

आक्रान्तचित्त होनेके कारण देवराज इन्द्र इस घटनाको सहन न कर सके॥ ७॥

मनुष्यत्वं यातो मधुभिदपि देवेष्वविनयं
विधत्ते चेन्नष्टस्त्रिदशसदसां कोऽपि महिमा।
ततश्च ध्वंसिष्ये पशुपहतकस्य श्रियमिति
प्रवृत्तस्त्वां जेतुं स किल मघवा दुर्मदनिधिः॥ ८॥

'मनुष्यभावको प्राप्त होकर मधुसूदन भी यदि देवताओंके प्रति अविनयपूर्ण बर्ताव करते हैं तो देवसभाकी कोई अपूर्व महिमा नष्ट हो जायगी। इसलिये मैं उस अधम गोपकी सारी सम्पत्तिका विध्वंस कर डालूँगा।'—ऐसा सोचकर दुर्दम्य अभिमानका सागर इन्द्र आपको जीतनेकी चेष्टामें लग गया॥ ८॥

त्वदावासं हन्तुं प्रलयजलदानम्बरभुवि
प्रहिण्वन् बिभ्राणः कुलिशमयमभ्रेभगमनः।
प्रतस्थेऽन्यैरन्तर्दहनमरुदाद्यैर्विहसितो
भवन्माया नैव त्रिभुवनपते मोहयति कम्॥ ९ ॥

अपने हाथमें वज्र ले ऐरावतपर यात्रा करनेवाले इस इन्द्रने आपके आवास-स्थान व्रजको नष्ट कर देनेके लिये आकाशमें प्रलयंकर मेघोंको भेजा और स्वयं भी प्रस्थित हुआ। उस समय अग्नि और वायु आदि अन्य देवताओंने मन-ही-मन उसकी हँसी उड़ायी। त्रिभुवननाथ श्रीकृष्ण! आपकी माया किसको मोहमें नहीं डाल देती है॥ ९॥

सुरेन्द्रः क्रुद्धश्चेद् द्विजकरुणया शैलकृपया-
प्यनातङ्कोऽस्माकं नियत इति विश्वास्य पशुपान्।
अहो किं नायातो गिरिभिदिति सञ्चिन्त्य निवसन्
मरुद्गेहाधीश प्रणुद मुरवैरिन् मम गदान्॥ १०॥

'देवराज इन्द्र कुपित हो गये हैं तो कोई चिन्ताकी बात नहीं है।

ब्राह्मणोंकी दया और गिरिराजकी कृपासे हमारे भयका निवारण होना निश्चित है।' गोपोंको ऐसा विश्वास दिलाकर आप यह सोचते हुए वहाँ उपस्थित रहे कि—'आश्चर्य है! पर्वतभेदी इन्द्र अबतक क्यों नहीं आया।' वायुपुराधीश्वर मुरारे! मेरे रोगोंको दूर कीजिये॥ १०॥

॥ इति इन्द्रयागविघातवर्णनं द्विषष्टितमदशकं समाप्तम्॥

त्रिषष्टितमदशकम्

गोवर्धन-धारण

ददृशिरे किल तत्क्षणमक्षत-
स्तनितजृम्भितकम्पितदिक्तटाः ।
सुषमया भवदङ्गतुलां गता
व्रजपदोपरि वारिधरास्त्वया॥ १॥

उसी क्षण आपने देखा कि व्रजस्थानके ऊपर मेघ छा गये हैं। वे सब अपनी कान्तिसे आपके श्रीअङ्गोंकी उपमा बन रहे हैं और लगातार जोर-जोरसे की गयी गर्जना तथा विपुल विस्तारसे सम्पूर्ण दिशाओंके तट-प्रान्तको कम्पित कर रहे हैं॥ १॥

विपुलकरकमिश्रैस्तोयधारानिपातै-
र्दिशि दिशि पशुपानां मण्डले दण्ड्यमाने।
कुपितहरिकृतान्नः पाहि पाहीति तेषां
वचनमजित श‍ृण्वन् मा बिभीतेत्यभाणीः॥ २॥

किसीसे पराजित न होनेवाले परमेश्वर! बड़े-बड़े ओलोंसे मिश्रित जलधाराओंके गिरनेसे प्रत्येक दिशामें रहनेवाली गोपमण्डलीको कठोर दण्ड मिल रहा था और वे कह रहे थे—'प्रभो! कुपित हुए इन्द्रके इस प्रहारसे आप हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' उनकी यह बात सुनकर आप बोल उठे—'डरो मत'॥ २॥

कुल इह खलु गोत्रो दैवतं गोत्रशत्रो-
विहतिमिह स रुन्ध्यात् को नु वः संशयोऽस्मिन्।
इति सहसितवादी देव गोवर्धनाद्रिं
त्वरितमुदमुमूलो मूलतो बालदोर्भ्याम्॥ ३॥

'इस गोपकुलके देवता निश्चय ही गिरिराज गोवर्धन हैं। वे पर्वत-शत्रु इन्द्रके आघातको यहाँ अवश्य रोक सकते हैं। इस विषयमें आपलोगोंको क्या संदेह है!' देव! इस प्रकार हँसते हुए कहकर आपने अपनी बालभुजाओंद्वारा तुरंत ही गोवर्धन पर्वतको जड़से उखाड़ लिया॥ ३॥

तदनु गिरिवरस्य प्रोद्धृतस्यास्य तावत्
सिकतिलमृदुदेशे दूरतो वारितापे।
परिकरपरिमिश्रान् धेनुगोपानधस्ता-
दुपनिदधदधत्था हस्तपद्मेन शैलम्॥ ४॥

तत्पश्चात् उस उखाड़े गये गिरिराजके नीचे बालुकामय कोमल देशमें, जहाँ दूरतक जलका निवारण हो गया था, आपने परिकरोंसहित धेनुओं और गोपोंको स्थापित कर दिया और स्वयं अपने एक करकमलसे पर्वतको ऊपर ही धारण किये रहे॥ ४॥

भवति विधृतशैले बालिकाभिर्वयस्यै-
रपि विहितविलासं केलिलापादिलोले।
सविधमिलितधेनूरेकहस्तेन कण्डू-
यति सति पशुपालास्तोषमैषन्त सर्वे॥ ५॥

आपके द्वारा पर्वतके उठा लिये जानेपर गोपकुमारियों और सखा ग्वालबालोंके साथ विलास करते हुए आप खेल-कूदकी बातें करके चञ्चल हो उठते थे। उस समय जो गौएँ आपके पास आ जातीं, उन्हें आप एक हाथसे खुजला दिया करते थे। इससे समस्त पशुपाल-मण्डलीको बड़ा संतोष प्राप्त होता था॥ ५॥

अतिमहान् गिरिरेष तु वामके
करसरोरुहि तं धरते चिरम्।

किमिदमद्भुतमद्रिबलं न्विति
त्वदवलोकिभिराकथि गोपकैः॥ ६॥

'यह पर्वत बहुत बड़ा है, तो भी कन्हैया चिरकालसे इसको अपने बायें कर-कमलपर उठाये हुए है। इस पर्वतका बल भी क्या ही अद्भुत है।' इस प्रकार आपकी ओर देखते हुए गोपगण परस्पर कहते थे॥ ६॥

अहह धाष्टर्यममुष्य वटोर्गिरिं
व्यथितबाहुरसाववरोपयेत् ।
इति हरिस्त्वयि बद्धविगर्हणो
दिवससप्तकमुग्रमवर्षयत् ॥ ७॥

'अहाहा! इस छोटे-से बालककी ढिठाई तो देखो। इसकी बाँह व्यथित हो जायगी तो भी क्या यह पर्वतको उठाये रखेगा?' इस प्रकार इन्द्र आपके प्रति कुत्साका भाव रखते हुए सात दिनोंतक भयंकर वर्षा करते रहे॥ ७॥

अचलति त्वयि देव पदात्पदं
गलितसर्वजले च घनोत्करे।
अपहृते मरुता मरुतां पति-
स्त्वदभिशङ्कितधीः समुपाद्रवत्॥ ८ ॥

देव! जब आप अपने स्थानसे एक पग भी न तो पीछे हटे और न हिले-डुले ही, मेघोंका सारा जल बरस गया और जलशून्य बादलोंको हवा उड़ा ले गयी, तब देवराज इन्द्र आपकी ओरसे शङ्कितचित्त हो आपके समीप आये॥ ८॥

शममुपेयुषि वर्षभरे तदा
पशुपधेनुकुले च विनिर्गते।
भुवि विभो समुपाहितभूधरः
प्रमुदितैः पशुपैः परिरेभिषे॥ ९ ॥

प्रभो! जब वह भारी वर्षा शान्त हो गयी, गोपों और गौओंका

समुदाय वहाँसे बाहर निकल गया, तब आपने पर्वतको पुनः पृथ्वीपर रख दिया। इससे प्रमुदित हुए गोपगण आपका आलिङ्गन करने लगे॥ ९॥

धरणिमेव पुरा धृतवानसि
क्षितिधरोद्धरणे तव कः श्रमः।
इति नुतस्त्रिदशैः कमलापते
गुरुपुरालय पालय मां गदात्॥ १०॥

'आपने तो पूर्वकालमें सारी पृथ्वीको ही अपने ऊपर उठा लिया था; फिर इस पर्वतको उठानेमें आपको क्या श्रम हो सकता था।' इस प्रकार देवताओंद्वारा आपकी स्तुति की जाने लगी। गुरुपुरनिवासी कमलाकान्त! रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति गोवर्धनोद्धरणवर्णनं त्रिषष्टितमदशकं समाप्तम्॥

चतुःषष्टितमदशकम्

गोविन्दपदपर अभिषेक और नन्दजीका वरुणलोकसे आनयन

आलोक्य शैलोद्धरणादिरूपं प्रभावमुच्चैस्तव गोपलोकाः।
विश्वेश्वरं त्वामभिमत्य विश्वे नन्दं भवज्जातकमन्वपृच्छन्॥ १॥

पर्वतको उठाना आदि आपके भारी प्रभावको देखकर समस्त गोपोंने आपको जगदीश्वर माना और नन्दरायसे आपकी जन्मकुण्डलीका फल पूछा॥ १॥

गर्गोदितो निर्गदितो निजाय वर्गाय तातेन तव प्रभावः।
पूर्वाधिकस्त्वय्यनुराग एषामैधिष्ट तावद् बहुमानभारः॥ २॥

तब आपके पिता नन्दने स्वजन-वर्गको आपका वह प्रभाव कह सुनाया, जिसे मुनिवर गर्गाचार्यने बताया था। उसे सुनकर गोपोंका आपके

प्रति पहलेसे भी अधिक अनुराग और अत्यन्त समादरका भाव बढ़ गया॥ २॥

ततोऽवमानोदिततत्त्वबोधः सुराधिराजः सहदिव्यगव्यः।
उपेत्य तुष्टाव स नष्टगर्वः स्पृष्ट्वा पदाब्जं मणिमौलिना ते॥ ३॥

तदनन्तर जिन्हें अपमान मिलनेसे तत्त्वका बोध हो गया था, वे देवराज इन्द्र देवलोककी गौ सुरभिके साथ आपके पास आये। उनका सारा गर्व गल गया था। अतः उन्होंने अपने मणिमय मुकुटसे आपके चरणारविन्दका स्पर्श करके स्तवन किया॥ ३॥

स्नेहस्नुतैस्त्वां सुरभिः पयोभिर्गोविन्दनामाङ्कितमभ्यषिञ्चत्।
ऐरावतोपाहृतदिव्यगङ्गापाथोभिरिन्द्रोऽपि च जातहर्षः॥ ४॥

उस समय सुरभि देवीने स्नेहके कारण झरते हुए अपने दूधसे आपका अभिषेक किया और गौओंके इन्द्रके रूपमें आपका नाम 'गोविन्द' रखा। इन्द्रने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर ऐरावतके द्वारा लाये गये आकाश-गङ्गाके जलसे आपका अभिषेक किया॥ ४॥

जगत्त्रयेशे त्वयि गोकुलेशे तथाभिषिक्ते सति गोपवाटः।
नाकेऽपि वैकुण्ठपदेऽप्यलभ्यां श्रियं प्रपेदे भवतः प्रभावात्॥ ५॥

त्रिभुवनके स्वामी आप गोकुल-पतिका इस प्रकार अभिषेक होनेपर वह गोपोंका बाड़ा—व्रज आपके प्रभावसे उस लक्ष्मीको प्राप्त हुआ, जो स्वर्ग और वैकुण्ठमें भी अलभ्य है॥ ५॥

कदाचिदन्तर्यमुने प्रभाते स्नायन् पिता वारुणपूरुषेण।
नीतस्तमानेतुमगाः पुरीं त्वं तां वारुणीं कारणमर्त्यरूपः॥ ६॥

एक दिन आपके पिता नन्दजी प्रातःकाल स्नान करनेके लिये जब यमुनाजीके जलमें प्रविष्ट हुए, तब वरुणका एक सेवक उन्हें अपनी पुरीमें पकड़ ले गया। तब कारणवशात् मनुष्यरूप धारण करनेवाले आप उन्हें ले आनेके लिये वरुण देवताकी नगरीमें गये॥ ६॥

ससम्भ्रमं तेन जलाधिपेन प्रपूजितस्त्वं प्रतिगृह्य तातम्।
उपागतस्तत्क्षणमात्मगेहं पितावदत् तच्चरितं निजेभ्यः॥ ७॥

वहाँ जलाधिपति वरुण बड़े वेगसे उठकर आपका उत्कृष्ट पूजन किया। फिर आप अपने पिताको साथ लेकर तत्काल अपने घर लौट आये। वहाँ आनेपर पिताने आपके चरित्रका आत्मीय गोपजनोंके समक्ष वर्णन किया॥ ७॥

हरिं विनिश्चित्य भवन्तमेतान् भवत्पदालोकनबद्धतृष्णान्।
निरीक्ष्य विष्णो परमं पदं तद् दुरापमन्यैस्त्वमदीदृशस्तान्॥ ८॥

विष्णो! तब 'आप साक्षात् श्रीहरि हैं'—ऐसा निश्चय करके इन गोपोंके मनमें आपके धामको देखनेकी तृष्णा बढ़ गयी। यह देख आपने उन सबको अपना वह परमधाम दिखाया, जो दूसरोंके लिये दुर्लभ है॥ ८॥

स्फुरत्परानन्दरसप्रवाहप्रपूर्णकैवल्यमहापयोधौ ।
चिरं निमग्नाः खलु गोपसङ्घास्त्वयैव भूमन् पुनरुद्धृतास्ते॥ ९॥

भूमन्! उच्छलित परमानन्द-रसके प्रवाहसे परिपूर्ण उस कैवल्य-महासागरमें वे गोपसमूह चिरकालतक डूबे रहे। फिर आपने ही उन्हें वहाँसे उत्थापित किया॥ ९॥

करबदरवदेवं देव कुत्रावतारे
परपदमनवाप्यं दर्शितं भक्तिभाजाम्।
तदिह पशुपरूपी त्वं हि साक्षात् परात्मा
पवनपुरनिवासिन् पाहि मामामयेभ्यः॥ १०॥

देव! आपने दूसरे किस अवतारमें इस तरह हाथपर रखे हुए वेरके समान अपना अलभ्य परमपद भक्तजनोंको दिखलाया था। अतः इस भूतलपर गोपरूपधारी आप साक्षात् परमात्मा ही हैं। पवनपुरनिवासी प्रभो! मेरी रोगोंसे रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति गोविन्दाभिषेकवर्णनं नन्दानयनवर्णनं च चतुःषष्टितमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चषष्टितमदशकम्

रासक्रीडाके लिये गोपियोंका आगमन

गोपीजनाय कथितं नियमावसाने
मारोत्सवं त्वमथ साधयितुं प्रवृत्तः।
सान्द्रेण चान्द्रमहसा शिशिरीकृताशे
प्रापूरयो मुरलिकां यमुनावनान्ते॥ १॥

जिस दिन गोपियोंके कात्यायनी-पूजनका नियम समाप्त हुआ था, उस दिन आपने उनसे कहा था—'आगामी शरदृऋतुकी रातोंमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' तदनुसार आप प्रेमोत्सव सम्पादित करनेके कार्यमें प्रवृत्त हुए। चन्द्रमाकी स्निग्ध चाँदनीसे जहाँ सम्पूर्ण दिशाएँ शीतल हो गयी थीं, उस यमुना-तटवर्ती वन-प्रान्तमें आपने मुरली बजायी॥ १॥

सम्मूर्च्छनाभिरुदितस्वरमण्डलाभिः
सम्मूर्च्छयन्तमखिलं भुवनान्तरालम्।
त्वद्वेणुनादमुपकर्ण्य विभो तरुण्य-
स्तत्तादृशं कमपि चित्तविमोहमापुः॥ २॥

विभो! जिनमें स्वर-मण्डल सुस्पष्ट प्रकट हो रहे थे, उन मूर्च्छनाओंद्वारा समस्त भुवनोंमें व्याप्त हुए आपके वेणुनादको सुनकर तरुणी गोप-किशोरियाँ वैसे किसी अपूर्व चित्त-विमोहको प्राप्त हुईं॥ २॥

ता गेहकृत्यनिरतास्तनयप्रसक्ताः
कान्तोपसेवनपराश्च सरोरुहाक्ष्यः।
सर्वं विसृज्य मुरलीरवमोहितास्ते
कान्तारदेशमयि कान्ततनो समेताः॥ ३॥

अयि कमनीय शरीरवाले श्यामसुन्दर! वे कमललोचना गोपाङ्गनाएँ घरके काम-काजमें लगी थीं। कोई शिशुओंकी सँभाल कर रही थीं और कोई पतिकी सेवामें तत्पर थीं। किंतु वंशी-ध्वनिसे विमोहित वे सब काम छोड़कर उस दुर्गम वन-प्रान्तमें एक साथ आ पहुँचीं॥ ३॥

काश्चिन्निजाङ्गपरिभूषणमादधाना
वेणुप्रणादमुपकर्ण्य कृतार्धभूषाः।
त्वामागता ननु तथैव विभूषिताभ्य-
स्ता एव संरुरुचिरे तव लोचनाय॥ ४॥

कई अपने अङ्गोंमें आभूषण धारण कर रही थीं, अभी आधा ही आभूषण धारण कर पायी थीं कि वेणुनाद उनके कानोंमें पड़ा। फिर वे उसी अवस्थामें आपके पास आ पहुँचीं। परंतु विभूषित नारियोंकी अपेक्षा भी वे ही आपके नेत्रको अधिक सुन्दर प्रतीत हुईं॥ ४॥

हारं नितम्बभुवि काचन धारयन्ती
काञ्चीं च कण्ठभुवि देव समागता त्वाम्।
हारित्वमात्मजघनस्य मुकुन्द तुभ्यं
व्यक्तं बभाष इव मुग्धमुखी विशेषात्॥ ५॥

देव! मुकुन्द! कोई गोपी कटि-प्रदेशमें हार और कण्ठदेशमें करधनी धारण किये आपके पास चली आयी। वह मुग्धमुखी विशेषरूपसे आपके समक्ष अपने जघनस्थलकी मनोहरता मानो स्पष्ट शब्दोंमें कहती-सी प्रतीत हुई॥ ५॥

काचित् कुचे पुनरसज्जितकञ्चुलीका
व्यामोहतः परवधूभिरलक्ष्यमाणा।
त्वामाययौ निरुपमप्रणयातिभार-
राज्याभिषेकविधये कलशीधरेव॥ ६॥

कोई अपने कुचपर कञ्चुकी डाले बिना ही व्यामोहवश दूसरी स्त्रियोंकी दृष्टिसे बचती हुई आपके समीप आ पहुँची। वह आपको अनुपम प्रणयके बड़े भारी राज्यपर अभिषिक्त करनेके लिये मानो कलशी धारण किये आयी थी॥ ६॥

काश्चिद् गृहात् किल निरेतुमपारयन्त्य-
स्त्वामेव देव हृदये सुदृढं विभाव्य।

देहं विधूय परचित्सुखरूपमेकं
त्वामाविशन् परमिमा ननु धन्यधन्याः॥ ७॥

देव! कुछ गोपियाँ परवश होनेके कारण घरसे बाहर न निकल सकीं। अतः अपने हृदयमें दृढ़तापूर्वक आपकी ही भावना करके देह त्यागकर अद्वितीय परम चिदानन्दस्वरूप आप परब्रह्ममें ही समा गयीं। परंतु ये बड़भागिनी गोपियाँ धन्य-धन्य हो गयीं॥ ७॥

जारात्मना न परमात्मतया स्मरन्त्यो
नार्यो गताः परमहंसगतिं क्षणेन।
तं त्वां प्रकाशपरमात्मतनुं कथञ्चि-
च्चित्ते वहन्नमृतमश्रममश्नुवीय॥ ८॥

उन व्रजनारियोंने जार-रूपमें नहीं, परमात्माके रूपमें आपका स्मरण करके क्षणभरमें परमहंस-गति प्राप्त कर ली। उन्हीं प्रकाशमय परमात्मविग्रह आपको किसी प्रकार चित्तमें धारण करके मैं भी अनायास ही अमृतत्व प्राप्त कर लूँ। (ऐसी कृपा कीजिये)॥ ८॥

अभ्यागताभिरभितो व्रजसुन्दरीभि-
र्मुग्धस्मितार्द्रवदनः करुणावलोकी।
निस्सीमकान्तिजलधिस्त्वमवेक्ष्यमाणो
विश्वैकहृद्य हर मे पवनेश रोगान्॥ ९॥

चारों ओरसे आयी हुई व्रज-सुन्दरियोंने देखा—आपका मुखारविन्द मुग्ध मुस्कानसे आर्द्र है। आप करुणामयी दृष्टिसे सबको देख रहे हैं तथा असीम कान्तिके महासागर प्रतीत हो रहे हैं। विश्वके एकमात्र हृदयहारी रूपवाले पवनेश! मेरे रोगोंको हर लीजिये॥ ९॥

॥ इति रासक्रीडायां गोपीसमागमवर्णनं पञ्चषष्टितमदशकं समाप्तम्॥

षष्टषष्टितमदशकम्

धर्मोपदेश तथा क्रीडा

उपयातानां सुदृशां कुसुमायुधबाणपातविवशानाम्।
अभिवाञ्छितं विधातुं कृतमतिरपि ता जगाथ वाममिव॥ १॥

प्रेममय कुसुमायुधके बाणोंके आघातसे विवश हो, अपने पास आयी हुई उन सुलोचनाओंके वाञ्छित मनोरथ पूर्ण करनेके लिये यद्यपि आपने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था, तथापि उनसे विपरीत-सी बात कही॥ १॥

गगनगतं मुनिनिवहं श्रावयितुं जगिथ कुलवधूधर्मम्।
धर्म्यं खलु ते वचनं कर्म तु नो निर्मलस्य विश्वास्यम्॥ २॥

आकाशमें मुनियोंका समुदाय खड़ा था। उसे सुनानेके लिये आपने गोपियोंसे कुलवधूके धर्मका वर्णन किया। आप निर्मल परमेश्वरका वचन निश्चय ही धर्मसंगत है—अतः वही विश्वासपूर्वक आचरणमें लाने योग्य है। आपका कर्म विश्वसनीय नहीं है—उसका आचरण मानव-शक्तिसे परे है; अतएव वह अनुकरणीय नहीं है॥ २॥

आकर्ण्य ते प्रतीपां वाणीमेणीदृशः परं दीनाः।
मा मा करुणासिन्धो परित्यजेत्यतिचिरं विलेपुस्ताः॥ ३॥

आपकी मनके प्रतिकूल वाणी सुनकर वे मृगलोचना गोपियाँ अत्यन्त दीन—दुःखी हो गयीं। 'नहीं-नहीं, करुणासागर! तुम हमारा त्याग न करो।'—ऐसा कहकर वे दीर्घकालतक विलाप करती रहीं॥ ३॥

तासां रुदितैर्लपितैः करुणाकुलमानसो मुरारे त्वम्।
ताभिः समं प्रवृत्तो यमुनापुलिनेषु काममभिरन्तुम्॥ ४॥

मुरारे! उनके रोदन और विलापसे आपका हृदय करुणासे भर आया। अतः यमुना-तटपर उनके साथ उनकी इच्छाके अनुसार क्रीडा-विहार करनेमें आप प्रवृत्त हुए॥ ४॥

चन्द्रकरस्यन्दलसत्सुन्दरयमुनातटान्तवीथीषु ।
गोपीजनोत्तरीयैरापादितसंस्तरो न्यषीदस्त्वम्॥ ५॥

चन्द्रकिरणोंकी अमृत-वर्षासे सुशोभित सुन्दर यमुना-तटकी वनवीथियोंमें गोपियोंने अपनी-अपनी ओढ़नी बिछाकर आपके लिये बिस्तर तैयार कर दिया और आप उसपर बैठ गये॥ ५॥

सुमधुरनर्मालपनैः करसंग्रहणैश्च चुम्बनोल्लासैः।
गाढालिङ्गनसङ्गैस्त्वमङ्गनालोकमाकुलीचकृषे ॥ ६॥

तदनन्तर आपने सुमधुर परिहासपूर्ण बातें कहकर उनके हाथ पकड़कर चुम्बनका आनन्द देकर तथा गाढ़ आलिङ्गन करके व्रजाङ्गना-समुदायको आकुल कर दिया॥ ६॥

वासोहरणदिने यद् वासोहरणं प्रतिश्रुतं तासाम्।
तदपि विभो रसविवशस्वान्तानां कान्तसुभ्रुवामदधाः॥ ७॥

विभो! चीर-हरणके दिन उनके वस्त्रापहरणकी जो प्रतिज्ञा आपने की थी, उसके अनुसार रस-विवशचित्त हुई उन कान्तिमती सुन्दरियोंका वस्त्रहरण भी किया॥ ७॥

कन्दलितघर्मलेशं कुन्दमृदुस्मेरवक्त्रपाथोजम्।
नन्दसुत त्वां त्रिजगत्सुन्दरमुपगूह्य नन्दिता बालाः॥ ८॥

नन्दनन्दन! आपके श्रीअङ्गमें पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदें उमड़ आयी थीं, आपका मुखारविन्द कुन्द-सदृश उज्ज्वल मुस्कानसे सुशोभित था तथा आप त्रिभुवनके एकमात्र सुन्दर पुरुष हैं, आपको अपने बाहुपाशमें भरकर वे व्रजबालाएँ अत्यन्त आनन्दित हुईं॥ ८॥

विरहेष्वङ्गारमयः शृङ्गारमयश्च सङ्गमे हि त्वम्।
नितरामङ्गारमयस्तत्र पुनः सङ्गमेऽपि चित्रमिदम्॥ ९॥

जब आपसे विरह होता है, तब आप अङ्गारमय (दाहक) प्रतीत होते हैं और जब समागम होता है, उस समय शृङ्गार-रसमय (शीतल) जान पड़ते हैं, परंतु आश्चर्यकी बात यह है कि वहाँ संगम-कालमें भी

आप सर्वथा अङ्गारमय (कोयलेके समान कृष्ण कान्तिसे युक्त) जान पड़ते हैं॥ ९॥

राधातुङ्गपयोधरसाधुपरीरम्भलोलुपात्मानम्।
आराधये भवन्तं पवनपुराधीश शमय सकलगदान्॥ १०॥

हे पवनपुराधीश्वर! श्रीराधारानीके उन्नत उरोजोंका भलीभाँति आलिङ्गन करनेके लिये लोलुप-चित्त रहनेवाले आपकी मैं आराधना करता हूँ। आप मेरे सारे रोगोंको शान्त कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति रासक्रीडायां धर्मोपदेशवर्णनं क्रीडावर्णनं च षट्षष्टितमदशकं समाप्तम्॥

सप्तषष्टितमदशकम्

श्रीकृष्णका अन्तर्धान, गोपियोंद्वारा उनका अन्वेषण तथा फिर उनका प्राकट्य

स्फुरत्परानन्दरसात्मकेन त्वया समासादितभोगलीलाः।
असीममानन्दभरं प्रपन्ना महान्तमापुर्मदमम्बुजाक्ष्यः॥ १॥

आप उच्छलनशील परमानन्दरसरूप हैं, आपके साथ भोगलीलाका आस्वादन करके असीम आनन्द-सिन्धुमें निमग्न हुई कमलनयनी गोपाङ्गनाओंको महान् अभिमान हो गया॥ १॥

निलीयतेऽसौ मयि मय्यमायं रमापतिर्विश्वमनोऽभिरामः।
इति स्म सर्वाः कलिताभिमाना निरीक्ष्य गोविन्द तिरोहितोऽभूः॥ २॥

गोविन्द! 'विश्व-मनोऽभिराम लक्ष्मीपति श्यामसुन्दर मुझमें, केवल मुझमें निश्छलभावसे अनुरक्त हैं।'—इस प्रकार उन सब गोपियोंको अभिमानसे पूरित देख आप वहाँ अन्तर्धान हो गये॥ २॥

राधाभिधां तावदजातगर्वामतिप्रियां गोपवधूं मुरारे।
भवानुपादाय गतो विदूरं तया सह स्वैरविहारकारी॥ ३॥

मुरारे! श्रीराधा नामवाली गोपाङ्गनाके मनमें गर्वका उदय नहीं हुआ।

इसीलिये वे आपको अत्यन्त प्यारी हैं। अतएव उन्हींके साथ स्वेच्छानुसार विहार करनेके लिये आप उन्हें लेकर बहुत दूर चले गये॥ ३॥

तिरोहितेऽथ त्वयि जाततापाः समं समेताः कमलायताक्ष्यः।
वने वने त्वां परिमार्गयन्त्यो विषादमापुर्भगवन्नपारम्॥ ४॥

भगवन्! आपके अन्तर्धान हो जानेपर उनके मनमें बड़ा संताप हुआ। विकसित कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंवाली वे गोप-किशोरियाँ एक साथ मिलकर वन-वनमें आपको खोजती हुई अपार विषादमें डूब गयीं॥ ४॥

हा चूत हा चम्पक कर्णिकार हा मल्लिके मालति बालवल्यः।
किं वीक्षितो नो हृदयैकचौर इत्यादि तास्त्वत्प्रवणा विलेपुः॥ ५॥

उन सबके चित्तका प्रवाह आपकी ही ओर था। अतः वे 'हा चूत (आम्र), हा चम्पक, हा कर्णिकार (कनेर), हा मल्लिके, हा मालती, हा नूतन वल्लरियो! क्या तुमने हमारे एकमात्र चित्तचोर नन्दकिशोरको देखा है।'—इत्यादि रूपसे विलाप करने लगीं॥ ५॥

निरीक्षितोऽयं सखि पङ्कजाक्षः पुरो ममेत्याकुलमालपन्ती।
त्वां भावनाचक्षुषि वीक्ष्य काचित्तापं सखीनां द्विगुणीचकार॥ ६॥

कोई गोपी आपको ध्यान-नेत्रसे देखकर बोली—'सखि! मैंने कमलनयन श्रीकृष्णको देख लिया। यह रहे मेरे सामने।' इस प्रकार व्याकुलतापूर्वक बोलती हुई उस सखीने अपनी दूसरी सखियोंके संतापको दूना बढ़ा दिया॥ ६॥

त्वदात्मिकास्ता यमुनातटान्ते तवानुचक्रुः किल चेष्टितानि।
विचित्य भूयोऽपि तथैव मानात्त्वया वियुक्तां ददृशुश्च राधाम्॥ ७॥

उनके मन-प्राण आपमें ही लगे थे। अतः वे यमुनाजीके किनारे आपकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं। तदनन्तर पुनः आपकी खोज आरम्भ करनेपर उन्होंने एक स्थानपर श्रीराधाको देखा, जिन्हें पूर्ववत् मानके ही कारण आपसे वियुक्त होना पड़ा था॥ ७॥

ततः समं ता विपिने समन्तात्तमोऽवतारावधि मार्गयन्त्यः।
पुनर्विमिश्रा यमुनातटान्ते भृशं विलेपुश्च जगुर्गुणांस्ते॥ ८॥

तदनन्तर वे सब मिलकर उस वनमें चारों ओर तबतक आपकी खोज करती रहीं, जबतक कि घना अन्धकार नहीं हो गया। फिर वे मिल-जुलकर यमुनाके तटपर लौट आयीं और अत्यन्त विलापपूर्वक आपके गुणोंका गान करने लगीं॥ ८॥

तथाव्यथासंकुलमानसानां व्रजाङ्गनानां करुणैकसिन्धो।
जगत्त्रयीमोहनमोहनात्मा त्वं प्रादुरासीरयि मन्दहासी॥ ९॥

करुणाके एकमात्र सागर नन्दनन्दन! इस प्रकार जिनके हृदयमें विरह-व्यथा व्याप्त हो रही थी, उन व्रजाङ्गनाओंके बीचमें आप अपने त्रिभुवन-मोहन मोहन-रूपसे मन्द-मन्द मुस्कराते हुए प्रकट हो गये॥ ९॥

सन्दिग्धसन्दर्शनमात्मकान्तं
त्वां वीक्ष्य तन्व्यः सहसा तदानीम्।
किं किं न चक्रुः प्रमदातिभारात्
स त्वं गदात् पालय मारुतेश॥ १०॥

जिनके दर्शनमें संदेह था, उन अपने प्रियतम प्रभु आपको सहसा देखकर उस समय उन तन्वङ्गी गोपाङ्गनाओंने आनन्दातिरेकसे क्या-क्या नहीं किया। मारुतेश्वर! वह आप रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति रासक्रीडायां भगवतस्तिरोभाववर्णनं भगवदन्वेषणवर्णनं भगवदाविर्भाववर्णनं च सप्तषष्टितमदशकं समाप्तम्॥

अष्टषष्टितमदशकम्

गोपियोंकी आनन्दपरवशता, प्रणय-कोप एवं भगवान्‌द्वारा दी गयी सान्त्वना

तव विलोकनाद् गोपिकाजनाः प्रमदसंकुलाः पङ्कजेक्षण।
अमृतधारया सम्प्लुता इव स्तिमिततां दधुस्त्वत्पुरोगताः॥ १॥

कमलनयन! आपके दर्शनसे गोपियाँ हर्षसे भर गयीं। वे

अमृतकी धारासे नहायी हुई-सी होकर आपके सामने निश्चलभावसे खड़ी हो गयीं॥ १॥

तदनु काचन त्वत्कराम्बुजं सपदि गृह्णती निर्विशङ्कितम्।
घनपयोधरे संनिधाय सा पुलकसंवृता तस्थुषी चिरम्॥ २॥

तदनन्तर किसी गोपीने तत्काल निश्शङ्क होकर आपका कर-कमल पकड़ लिया और उसे पीन वक्षःस्थलपर स्थापित करके वह रोमाञ्चित हो देरतक उसी रूपमें खड़ी रही॥ २॥

तव विभो परा कोमलं भुजं निजगलान्तरे पर्यवेष्टयत्।
गलसमुद्गतं प्राणमारुतं प्रतिनिरुन्धतीवातिहर्षुला॥ ३॥

विभो! कण्ठतक आये हुए प्राणोंको रोकनेकी चेष्टा करती हुई-सी दूसरी गोपीने अत्यन्त हर्षमग्न हो आपकी कोमल बाँहको अपने गलेमें लपेट लिया॥ ३॥

अपगतत्रपा कापि कामिनी तव मुखाम्बुजात् पूगचर्वितम्।
प्रतिगृह्य तद् वक्त्रपङ्कजे निदधती गता पूर्णकामताम्॥ ४॥

कोई कामिनी लाजको तिलाञ्जलि दे आपके मुखारविन्दसे चबाये हुए पानका कुछ भाग लेकर अपने मुखकमलमें रखती हुई पूर्णकाम हो गयी॥ ४॥

विकरुणो वने संविहाय मामपगतोऽसि का त्वामिह स्पृशेत्।
इति सरोषया तावदेकया सजललोचनं वीक्षितो भवान्॥ ५॥

'तुम निर्दयी हो, मुझे वनमें अकेली छोड़कर भाग गये थे। ऐसी दशामें यहाँ कौन तुम्हारा स्पर्श करेगी।'—ऐसा कहकर रोषसे भरी हुई एक गोपीने आँसूभरे नेत्रोंसे आपकी ओर दृष्टिपातमात्र किया॥ ५॥

इति मुदाकुलैर्वल्लवीजनैः सममुपागतो यामुने तटे।
मृदुकुचाम्बरैः कल्पितासने घुसृणभासुरे पर्यशोभथाः॥ ६॥

इस प्रकार आनन्दसे आकुल हुई गोपाङ्गनाओंके साथ यमुना-तटपर आप मिले और उनके कोमल अञ्चलोंसे परिकल्पित केसर-चन्दनचर्चित आसनपर विराजमान हुए॥ ६॥

कतिविधा कृपा केऽपि सर्वतो धृतदयोदयाः केचिदाश्रिते।
कतिचिदीदृशा मादृशेष्वपीत्यभिहितो भवान् वल्लवीजनैः॥ ७ ॥

उस समय गोपियोंने आपसे प्रश्न किया—'श्यामसुन्दर! कृपा कितने प्रकारकी होती है। (अथवा कृपालुजनोंके कितने भेद हैं।) कोई तो सबपर सदा दया करते हैं, कुछ लोग अपने आश्रितजनोंपर ही कृपा करते हैं और कुछ हम-जैसे लोगोंपर भी ऐसे हैं (आपकी तरह अद्भुत कृपा—कठोरताका प्रदर्शन करते हैं)'॥ ७॥

अयि कुमारिका नैव शङ्क्यतां कठिनता मयि प्रेमकातरे।
मयि तु चेतसो वोऽनुवृत्तये कृतमिदं मयेत्यूचिवान् भवान्॥ ८ ॥

तब आपने इस प्रकार उत्तर दिया—'कुमारिकाओ! मैं प्रेमभीरु हूँ— प्रेमके लिये व्याकुल रहता हूँ। मुझमें निर्दयताकी आशङ्का मत करो। तुम्हारे चित्तकी पूर्णतः अनुवृत्ति मुझमें ही हो, इस उद्देश्यसे मैंने इस समय ऐसा बर्ताव किया है'॥ ८॥

अयि निशम्यतां जीववल्लभाः प्रियतमो जनो नेदृशो मम।
तदिह रम्यतां रम्ययामिनीष्वनुपरोधमित्यालपो विभो॥ ९ ॥

'अरी जीवनवल्लभाओ! सुनो। तुमलोगोंके समान अत्यन्त प्रियजन मेरे लिये दूसरा कोई नहीं है। अतः यहाँ इन रमणीय रात्रियोंमें तुम मेरे साथ निर्बाध रमण करो।' विभो! आपने उनसे इस प्रकार कहा॥ ९॥

इति गिराधिकं मोदमेदुरैर्व्रजवधूजनैः साकमारमन्।
कलितकौतुको रासखेलने गुरुपुरीपते पाहि मां गदात्॥ १० ॥

आपकी इस वाणीसे व्रज-वधूजनोंका आनन्द बढ़कर अधिक घनीभूत हो गया। फिर उनके साथ विहार करते हुए आप रासक्रीड़ाके लिये उत्सुक हुए। गुरुवायुपुराधीश्वर! रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति रासक्रीडायाम् आनन्दपारवश्यवर्णनं प्रणयकोपवर्णनं भगवत्कृत-सान्त्वनावर्णनं च अष्टषष्टितमदशकं समाप्तम्॥

एकोनसप्ततितमदशकम्

रासक्रीडा

केशपाशधृतपिच्छिकावितति सञ्चलन्मकरकुण्डलं
हारजालवनमालिकाललितमङ्गरागघनसौरभम् ।
पीतचैलधृतकाञ्चिकाञ्चितमुदञ्चदंशुमणिनूपुरं
रासकेलिपरिभूषितं तव हि रूपमीश कलयामहे ॥ १ ॥

हे ईश! हम रासक्रीडामें विभूषित आपके मनोहर रूपका चिन्तन करते हैं। आपने अपने केश-पाशमें मोरपंखकी पंक्ति धारण कर रखी है। आपके कपोलोंपर मकराकार कुण्डल झलमला रहे हैं। विविध हारोंके समुदाय तथा वनमालासे आपके रूपका लालित्य और बढ़ गया है। श्रीअङ्गोंमें लगे हुए अङ्गरागसे राशि-राशि सुगन्धकी वर्षा हो रही है। कटि-प्रदेशमें पीताम्बरके ऊपर करधनीकी लड़ियोंसे आप सुशोभित हैं तथा आपके चरणोंमें धारित मणिमय नूपुरोंसे किरणें उठ रही हैं॥ १॥

तावदेव कृतमण्डने कलितकञ्चुलीककुचमण्डले
गण्डलोलमणिकुण्डले युवतिमण्डलेऽथ परिमण्डले।
अन्तरा सकलसुन्दरीयुगलमिन्दिरारमण सञ्चरन्
मञ्जुलां तदनु रासकेलिमयि कञ्जनाभ समुपादधाः ॥ २ ॥

पहलेसे ही गोपयुवतियोंकी मण्डली शृङ्गार धारण करके मण्डलाकार खड़ी है। उनके वक्षःस्थलपर कञ्चुकी (चोली) शोभा दे रही है। गालोंपर चञ्चल मणिमय कुण्डल झलक रहे हैं। इन्दिरारमण! पद्मनाभ! आप समस्त दो-दो गोपसुन्दरियोंके बीचमें संचरण कर रहे हैं। ऐसी व्यवस्था करनेके पश्चात् आपने मञ्जुल रासकेलि आरम्भ की है॥ २॥

वासुदेव तव भासमानमिह रासकेलिरससौरभं
दूरतोऽपि खलु नारदागदितमाकलय्य कुतुकाकुला।
वेषभूषणविलासपेशलविलासिनीशतसमावृता
नाकतो युगपदागता वियति वेगतोऽथ सुरमण्डली॥ ३॥

वासुदेव! यहाँ प्रकाशित आपकी रासक्रीडाके रससौरभका समाचार नारदजीके मुखसे सुनकर दूरसे भी उत्कण्ठित हुई देवमण्डली स्वर्गलोकसे एक साथ चलकर वेगपूर्वक आकाशमें आ खड़ी हुई। वह देव-समुदाय दिव्य वेष-भूषा और विलासके कारण मनोहर प्रतीत होनेवाली सैकड़ों विलासिनियों (सुराङ्गनाओं)-से घिरा हुआ था॥ ३॥

वेणुनादकृततानदानकलगानरागगतियोजना-
लोभनीयमृदुपादपातकृततालमेलनमनोहरम् ।
पाणिसंक्कणितकङ्कणं च मुहुरंसलम्बितकराम्बुजं
श्रोणिबिम्बचलदम्बरं भजत रासकेलिरसडम्बरम्॥ ४॥

रासक्रीडाके रसका समारम्भ कैसा हुआ, इसका चिन्तन कीजिये। भगवान् वंशी बजाकर मधुर तान छेड़ते, उसपर गोपियोंका मनोहर गान होता, गीतके राग और गतिकी योजनाके साथ लुभावना कोमल चरणपात होता और उसके साथ तालका मेल होनेसे वह रास-रङ्ग अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता था। उस रास-नृत्यके समय गोपियोंके हाथोंके कंगन खनखना उठते, उनका करकमल बार-बार पार्श्वसहचर श्रीकृष्णके कंधेका सहारा ले लेता तथा नितम्बमण्डलपर लहराती हुई घाँघर उड़ने लगती थी॥ ४॥

श्रद्धया विरचितानुगानकृततारतारमधुरस्वरे
नर्त्तनेऽथ ललिताङ्गहारलुलिताङ्गहारमणिभूषणे।
सम्मदेन कृतपुष्पवर्षमलमुन्मिषद् दिविषदां कुलं
चिन्मये त्वयि निलीयमानमिव सम्मुमोह सवधूकुलम्॥ ५॥

श्रद्धापूर्वक चलनेवाले उस रास-नृत्यमें साथ-ही-साथ होनेवाले गानके द्वारा कभी तार और कभी मन्द स्वरका विस्तार होता था। मनोहर अङ्गविक्षेपके कारण शरीरके हार और मणिमय भूषण चञ्चल हो जाते थे। अपलक नेत्रोंसे देखता हुआ देव-समुदाय आनन्दातिरेकसे दिव्य पुष्पोंकी प्रचुर वर्षा करता और अपनी वधुओंके साथ ही आप चिन्मय परमात्मामें लयको प्राप्त हुआ-सा मोहमग्न हो जाता था॥ ५॥

स्विन्नसन्नतनुवल्लरी तदनु कापि नाम पशुपाङ्गना
कान्तमंसमवलम्बते स्म तव तान्तिभारमुकुलेक्षणा।
काचिदाचलितकुन्तला नवपटीरसारघनसौरभं
वञ्चनेन तव सञ्चुचुम्ब भुजमञ्चितोरुपुलकाङ्कुरा॥ ६॥

तदनन्तर कोई गोपाङ्गना, जिसकी लताके समान पतली देह शिथिल एवं पसीने-पसीने हो गयी थी, अधिक थकावटके कारण अधमुँदी आँखें लिये आपके कमनीय कंधेका सहारा ले लिया करती थी। किसीके केश खुलकर कुछ-कुछ हिल रहे थे। उसने नूतन चन्दन-सारके घनीभूत सौरभसे युक्त आपकी बाँहको किसी बहानेसे चूम लिया और उसके अङ्ग-अङ्गमें अत्यन्त रोमाञ्च हो आया॥ ६॥

कापि गण्डभुवि सन्निधाय निजगण्डमाकुलितकुण्डलं
पुण्यपूरनिधिरन्ववाप तव पूगचर्वितरसामृतम्।
इन्दिराविहृतिमन्दिरं भुवनसुन्दरं हि नटनान्तरे
त्वामवाप्य दधुरङ्गनाः किमु न सम्मदोन्मददशान्तरम्॥ ७॥

किसी गोपीने, जो पुण्यराशिकी निधि थी, हिलते हुए कुण्डलसे मण्डित अपने गण्डस्थलको आपके कपोलके पास ले जाकर आपके द्वारा चबायी गयी सुपारीके रसामृतका पान कर लिया। आप त्रिभुवनसुन्दर हैं और इन्दिरा (लक्ष्मी)-के विलास-मन्दिर हैं। आपको रासनृत्यके बीचमें पाकर गोपाङ्गनाओंने आनन्दोन्मादकी कौन-कौन-सी दशाएँ नहीं धारण कीं॥ ७॥

गानमीश विरतं क्रमेण किल वाद्यमेलनमुपारतं
ब्रह्मसम्मदरसाकुलाः सदसि केवलं ननृतुरङ्गनाः।
नाविदन्नपि च नीविकां किमपि कुन्तलीमपि च कञ्चुलीं
ज्योतिषामपि कदम्बकं दिवि विलम्बितं किमपरं ब्रुवे॥ ८॥

हे ईश! गान बंद हुआ। क्रमशः बाजोंकी संगति भी बंद हो गयी। ब्रह्मानन्द-रसमें निमग्न हुई गोपाङ्गनाएँ समूहमें केवल नृत्य करती रहीं।

उन्हें अपने नीवी-वस्त्रोंके खिसक जानेका, केशपाशोंके खुल जानेका और कञ्चुकीके स्थानभ्रष्ट हो जानेका भी भान नहीं हुआ। औरोंकी क्या बात कहूँ, तारोंका समुदाय भी आकाशमें लटका खड़ा रह गया॥ ८॥

मोदसीम्नि भुवनं विलाप्य विहृतिं समाप्य च ततो विभो
केलिसम्मृदितनिर्मलाङ्गनवघर्मलेशसुभगात्मनाम्।
मन्मथासहनचेतसां पशुपयोषितां सुकृतचोदित-
स्तावदाकलितमूर्तिरादधिथ मारवीरपरमोत्सवान्॥ ९॥

विभो! सम्पूर्ण भुवनको आनन्दकी पराकाष्ठामें विलीन करके रास-विहार समाप्त कर आपने जितनी गोपाङ्गनाएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके उनके पुण्यकर्मसे प्रेरित हो अत्यन्त उत्कृष्ट मदनोत्सव आरम्भ किया। गोपाङ्गनाओंके केलिमर्दित निर्मल अङ्गोंमें नूतन पसीनेकी कुछ बूँदें उभड़ आयी थीं, जिनसे वे बड़ी सुन्दर दिखायी देती थीं और उनका चित्त मन्मथकी पीड़ाको सहन करनेमें असमर्थ हो गया था॥ ९॥

केलिभेदपरिलोलिताभिरतिलालिताभिरबलालिभिः
स्वैरमीश ननु सूरजापयसि चारुनाम विहृतिं व्यधाः।
काननेऽपि च विसारिशीतलकिशोरमारुतमनोहरे
सूनसौरभमये विलेसिथ विलासिनीशतविमोहनम्॥ १०॥

मनोहरनामवाले ईश्वर! आपने विभिन्न क्रीड़ाओंद्वारा चञ्चल और आपके लाड़-प्यारसे अत्यन्त समादृत हुई उन अबलाओंके साथ यमुनाजीके जलमें स्वच्छन्द विहार किया। तत्पश्चात् सब ओर फैली हुई शीतल किशोर (मन्द) वायुसे मनको हर लेनेवाले तथा फूलोंकी सुगन्धसे भरे हुए काननमें भी सैकड़ों विलासिनीजनोंको विमोहित कर देनेवाला विलास किया॥ १०॥

कामिनीरिति हि यामिनीषु खलु कामनीयकनिधे भवान्
पूर्णसम्मदरसार्णवं कमपि योगिगम्यमनुभावयन्।

ब्रह्मशङ्करमुखानपीह पशुपाङ्गनासु बहुमानयन्
भक्तलोकगमनीयरूप कमनीय कृष्ण परिपाहि माम्॥११॥

कमनीयताके निधिरूप कमनीय कृष्ण! आपने इस प्रकार अनेक रात्रियोंमें उन कामिनियोंको योगीजनोंके अनुभवमें आने योग्य किसी अपूर्व पूर्णानन्द-रसामृतसागरका अनुभव कराया तथा उन गोपाङ्गनाओंके प्रति ब्रह्मा और शिव आदि देवताओंका भी अधिक आदर प्रकट किया। यह सब करते हुए भक्तजनोंको ही प्राप्तव्य रमणीय रूपवाले नन्दनन्दन! मेरी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति रासक्रीडावर्णनम् एकोनसप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

सप्ततितमदशकम्

सुदर्शनका शापसे उद्धार तथा शङ्खचूड और वृषभासुरका वध

इति त्वयि रसाकुलं रमितवल्लभे वल्लवाः
कदापि पुरमम्बिकाकमितुरम्बिकाकानने।
समेत्य भवता समं निशि निषेव्य दिव्योत्सवं
सुखं सुषुपुरग्रसीद् व्रजपमुग्रनागस्तदा॥ १॥

इस प्रकार आप रसमग्न होकर जब अपनी वल्लभाओंको रमण-सुख प्रदान कर चुके, तब एक दिन बहुत-से गोप आपके साथ अम्बिकेशपुरके अम्बिका-वनमें गये। वहाँ रातमें दिव्य उत्सवका सेवनकर वे सब लोग सुखपूर्वक सोये। उसी समय एक भयंकर अजगर आकर नन्दरायजीको लीलने लगा॥ १॥

समुन्मुखमथोल्मुकैरभिहतेऽपि तस्मिन् बला-
दमुञ्चति भवत्पदे न्यपति पाहि पाहीति तैः।

तदा खलु पदा भवान् समुपगम्य पस्पर्श तं
बभौ स च निजां तनुं समुपसाद्य वैद्याधरीम्॥ २॥

जगदीश्वर! तब गोपोंने जलती हुई लुआठी लेकर जोर-जोरसे उस अजगरके ऊपर उठे मुखपर मारना आरम्भ किया। तथापि जब उसने नन्दजीको नहीं छोड़ा, तब समस्त गोपमण्डली 'बचाओ, बचाओ'— ऐसा कहकर आपके चरणोंमें गिर पड़ी। तब आपने निकट जाकर एक पैरसे उस नागको छू दिया। इतनेहीसे वह अपने विद्याधरोचित रूपको ग्रहण करके वहाँ प्रकाशित हो उठा॥ २॥

सुदर्शनधर प्रभो ननु सुदर्शनाख्योऽस्म्यहं
मुनीन् क्वचिदपाहसं त इह मां व्यधुर्वाहसम्।
भवत्पदसमर्पणादमलतां गतोऽस्मीत्यसौ
स्तुवन् निजपदं ययौ व्रजपदं च गोपा मुदा॥ ३॥

'सुदर्शनधारी प्रभो! मैं सुदर्शन नामधारी विद्याधर हूँ। एक दिन मैंने मुनियोंकी हँसी उड़ायी। अतः उन मुनियोंने मुझे शाप देकर वाहस (अजगर) बना दिया। आज आपके चरणोंके स्पर्शसे मैं शापसे छूटकर निर्मल हो गया हूँ।' इस प्रकार स्तुति करके वह अपने लोकको लौट गया और गोपगण भी प्रसन्नतापूर्वक व्रजभूमिको लौटे॥ ३॥

कदापि खलु सीरिणा विहरति त्वयि स्त्रीजनै-
र्जहार धनदानुगः स किल शङ्खचूडोऽबलाः।
अतिद्रुतमनुद्रुतस्तमथ मुक्तनारीजनं
रुरोजिथ शिरोमणिं हलभृते च तस्याददाः॥ ४॥

एक समयकी बात है—बलरामजीसहित आप वनमें गोपीजनोंके साथ विहार कर रहे थे। उसी समय कुबेरके अनुचर शङ्खचूड़ने वहाँ आकर उन अबलाओंका अपहरण आरम्भ कर दिया। यह देख आपने अत्यन्त तीव्र गतिसे उसका पीछा किया। वह नारीजनोंको वहीं छोड़कर भागने लगा। परंतु आपने उसे खदेड़कर मार डाला और उसके मस्तिष्ककी मणि छीनकर बलरामजीको दे दी॥ ४॥

दिनेषु च सुहृज्जनैः सह वनेषु लीलापरं
मनोभवमनोहरं रसितवेणुनादामृतम्।
भवन्तममरीदृशाममृतपारणादायिनं
विचिन्त्य किमु नालपन् विरहतापिता गोपिकाः॥ ५॥

आप प्रतिदिन अपने सुहृदोंके साथ भिन्न-भिन्न वनोंमें तरह-तरहकी लीलाएँ करते रहते थे। आपका रूप मनोभव—कामदेवका भी मन हर लेता था। आप मुरली बजाकर उसकी ध्वनिसे रसामृतकी वर्षा करते रहते थे। देवाङ्गनाओंके नेत्रोंको अमृत पिलानेवाले आपका चिन्तन करके विरहाग्निसे संतप्त हुई गोपिकाएँ आपके विषयमें क्या-क्या बातें नहीं कहती थीं॥ ५॥

भोजराजभृतकस्त्वथ कश्चित् कष्टदुष्टपथदृष्टिररिष्टः।
निष्ठुराकृतिरपष्ठुनिनादस्तिष्ठते स्म भवते वृषरूपी॥ ६॥

तदनन्तर भोजराज कंसका कोई सेवक, जिसका नाम अरिष्ट था, जिसकी दृष्टि क्लेशपूर्ण दुष्ट मार्गपर ही लगी रहती थी, जो आकारसे ही निष्ठुर था और जो सदा क्रूर स्वरमें ही गर्जना किया करता था, साँड़का रूप धारण करके आपसे भिड़नेके लिये आ खड़ा हुआ॥ ६॥

शाक्वरोऽथ जगतीधृतिहारी मूर्तिमेष बृहतीं प्रदधानः।
पङ्क्तिमाशु परिघूर्ण्य पशूनां छन्दसां निधिमवाप भवन्तम्॥ ७॥

वह बैल भूमिवासियोंका धैर्य हर लेनेवाला था। उसने बहुत विशाल मूर्ति धारण कर रखी थी। वह पशुओंके समूहको घूरता हुआ छन्दों-(वेदों)-की निधिस्वरूप आपके पास आ पहुँचा॥ ७॥

तुङ्गशृङ्गमुखमाश्वभियन्तं संगृहय्य रभसादभियं तम्।
भद्ररूपमपि दैत्यमभद्रं मर्दयन्नमदयः सुरलोकम्॥ ८॥

उसके मुखमण्डलमें ऊँचे-ऊँचे सींग थे। यद्यपि उसका रूप वृषभाकार होनेसे भद्र था, तथापि वह एक अभद्र (दुष्ट) दैत्य था। वह निर्भय होकर तुरंत आपपर चढ़ आया। तब आपने बड़े वेगसे

उसको पकड़ लिया और उसे रौंदकर देवताओंको आनन्दित कर दिया॥ ८॥

चित्रमद्य भगवन् वृषघातात् सुस्थिराजनि वृषस्थितिरुर्व्याम्।
वर्धते च वृषचेतसि भूयान् मोद इत्यभिनुतोऽसि सुरैस्त्वम्॥ ९ ॥

'भगवन्! यह तो विचित्र बात हुई। आज आपने वृष (वृषभासुर या धर्म)-का घात किया, तो भी पृथ्वीपर धर्मकी स्थिति सुदृढ़ हो गयी और वृष (वृषभरूपधारी धर्म)-के चित्तमें महान् मोद बढ़ रहा है।' इस प्रकार देवताओंने आपका स्तवन किया॥ ९॥

औक्षकाणि परिधावत दूरं वीक्ष्यतामयमिहोक्षविभेदी।
इत्थमात्तहसितैः सह गोपैर्गेहगस्त्वमव वातपुरेश॥ १०॥

'साँड़ो! दूर भागो! देखो, यह साँड़ोंका भेदन करनेवाला आ गया।' इस प्रकार हास-परिहास करनेवाले गोपोंके साथ आप अपने घर आये। वायुपुराधीश्वर! आप मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति सुदर्शनशापमोक्षवर्णनं शङ्खचूडवधवर्णनं वृषभासुरवधवर्णनं च सप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

एकसप्ततितमदशकम्

केशी और व्योमासुरका वध

यत्नेषु सर्वेष्वपि नावकेशी केशी स भोजेशितुरिष्टबन्धुः।
त्वं सिन्धुजावाप्य इतीव मत्वा सम्प्राप्तवान् सिन्धुजवाजिरूपः॥ १॥

जो सम्पूर्ण प्रयासोंमें कभी असफल नहीं होता था, वह केशी नामक दैत्य भोजराज कंसका प्रिय बन्धु था। आप सिन्धुजा (समुद्रजन्मा लक्ष्मी)-को ही प्राप्त होनेवाले हैं—मानो यही सोचकर वह सिन्धुजवाजी (सिंधी घोड़े)-का रूप धारण करके आपके पास आया था॥ १॥

गन्धर्वतामेष गतोऽपि रूक्षैर्नादैः समुद्वेजितसर्वलोकः।
भवद्विलोकावधि गोपवाटीं प्रमर्द्य पापः पुनरापतत् त्वाम्॥ २॥

यद्यपि वह गन्धर्वता (देवयोनिविशेष या अश्वयोनि)-को प्राप्त हुआ था, तथापि अपनी कठोर गर्जनासे सम्पूर्ण लोकोंको उद्विग्न कर डालता था। उसने जबतक आपको देखा नहीं, तभीतक गोपोंके बाड़ेको रौंद डाला। फिर वह पापी आपपर भी टूट पड़ा॥ २॥

ताक्ष्यार्पिताङ्घ्रेस्तव ताक्ष्र्य एष चिक्षेप वक्षोभुवि नाम पादम्।
भृगोः पदाघातकथां निशम्य स्वेनापि शक्यं तदितीव मोहात्॥ ३॥

आप ताक्ष्र्य (गरुड़)-की पीठपर पैर रखते हैं, इसलिये इस ताक्ष्र्य (घोड़े)-ने आपके वक्षःस्थलपर पैरसे आघात किया। महर्षि भृगुने आपकी छातीपर लात मारी थी, इस कथाको सुनकर उसने भी मोहवश मानो ऐसा समझ लिया कि मैं भी यह काम कर सकता हूँ॥ ३॥

प्रवञ्चयन्नस्य खुराञ्चलं द्रागमुं च चिक्षेपिथ दूरदूरम्।
सम्मूर्च्छितोऽपि ह्यतिमूर्च्छितेन क्रोधोष्मणा खादितुमाद्रुतस्त्वाम्॥ ४॥

परंतु आपने उसके पदाघातसे अपनेको बचा लिया और तत्काल ही उसके पिछले पैरको पकड़कर उसे दूर—बहुत दूर फेंक दिया। यद्यपि वहाँ गिरकर वह मूर्च्छित हो गया, तथापि उसके क्रोधकी गर्मी बहुत फैल गयी और उसीसे प्रेरित होकर वह आपको खा जानेके लिये दौड़ा॥ ४॥

त्वं वाहदण्डे कृतधीश्च बाहादण्डं न्यधास्तस्य मुखे तदानीम्।
तद्वृद्धिरुद्धश्वसनो गतासुः सप्तीभवन्नप्ययमैक्यमागात्॥ ५॥

तब आपने मन-ही-मन उस घोड़ेको दण्ड देनेका निश्चय किया और तत्काल उसके मुँहमें अपनी दण्डाकार बाँह डाल दी। उस बाँहके बढ़नेसे केशीकी साँस रुक गयी और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। वह सप्ति (घोड़ा अथवा सातकी संख्यासे युक्त) होकर भी आपके साथ ऐक्यको प्राप्त हुआ॥ ५॥

आलम्भमात्रेण पशोः सुराणां प्रसादके नूत्न इवाश्वमेधे।
कृते त्वया हर्षवशात् सुरेन्द्रास्त्वां तुष्टुवुः केशवनामधेयम्॥ ६॥

आपके द्वारा उस पशुके आलम्भनमात्रसे देवताओंको प्रसन्न करनेवाला नूतन अश्वमेध-सा सम्पादित हो गया। अतः हर्षवश देवेश्वरोंने आपका 'केशव' नाम रख दिया और उसी नामसे आपकी स्तुति की॥ ६॥

कंसाय ते शौरिसुतत्वमुक्त्वा तं तद्वधोत्कं प्रतिरुध्य वाचा।
प्राप्तेन केशिक्षपणावसाने श्रीनारदेन त्वमभिष्टुतोऽभूः॥ ७॥

'आप वसुदेवजीके पुत्र हैं,'—यह बात कंसको बताकर और जब वह वसुदेवजीको मारनेके लिये उद्यत हुआ, तब उसे वाणीद्वारा रोककर केशिवधके पश्चात् आपके पास आये हुए श्रीनारदजीने आपका स्तवन किया॥ ७॥

कदापि गोपैः सह काननान्ते निलायनक्रीडनलोलुपं त्वाम्।
मयात्मजः प्राप दुरन्तमायो व्योमाभिधो व्योमचरोपरोधी॥ ८॥

एक दिन आप ग्वाल-बालोंके साथ वनमें निलायन क्रीड़ा (स्वयं चोर बनकर पशु बने हुए बालकोंको चुराकर कहीं छिपा देनेका खेल) कर रहे थे। उस खेलमें आसक्त हुए आपके पास मयपुत्र व्योमासुर आया, जिसकी मायाका पार पाना कठिन था और जो आकाशचारी प्राणियोंको भी रोककर नष्ट कर देता था॥ ८॥

स चोरपालायितवल्लवेषु चोरायितो गोपशिशून् पशूंश्च।
गुहासु कृत्वा पिदधे शिलाभिस्त्वया च बुद्ध्वा परिमर्दितोऽभूत्॥ ९॥

ग्वालोंमेंसे कुछ लोग चोर बने थे, कुछ भेंड़ बने थे और कुछ उन भेंड़ोंके रक्षक बने थे। व्योमासुर चोर बनकर गोपबालकों और पशुओंको उठा ले जाता और उन सबको गुफाओंमें रखकर बड़ी-बड़ी शिलाओंद्वारा उन गुफाओंका द्वार बंद कर देता था। आपने उसकी चाल समझ ली और उसे रौंदकर मार डाला॥ ९॥

एवंविधैश्चाद्भुतकेलिभेदैरानन्दमूर्च्छामतुलां व्रजस्य।
पदे पदे नूतनयन्नसीमां परात्मरूपिन् पवनेश पायाः॥ १०॥

परमात्मन्! पवनपुराधीश्वर! इस प्रकार अनेक भेदवाली अद्भुत क्रीड़ाओंद्वारा व्रजकी अनुपम एवं असीम आनन्दमूर्च्छा (हर्ष-विस्तार)-को बढ़ाते तथा पद-पदपर उसे नूतन बनाते हुए आप मेरी रक्षा करें॥ १०॥

॥ इति केशिमथनवर्णनं व्योमवधवर्णनं च एकसप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

द्विसप्ततितमदशकम्

अक्रूरका आगमन

कंसोऽथ नारदगिरा व्रजवासिनं त्वा-
माकर्ण्य दीर्णहृदयः स हि गान्दिनेयम्।
आहूय कार्मुकमखच्छलतो भवन्त-
मानेतुमेनमहिनोदहिनाथशायिन् ॥ १॥

शेषशायी श्रीहरे! नारदजीके मुखसे यह सुनकर कि 'आप व्रजमें वास करनेवाले उसके शत्रु ही हैं' कंसका हृदय विदीर्ण-सा हो गया। उसने अक्रूरको बुलाकर धनुषयज्ञ देखनेके बहाने आपको वहाँसे ले आनेके लिये भेजा॥ १॥

अक्रूर एष भवदङ्घ्रिपरश्चिराय
त्वद्दर्शनाक्षममनाः क्षितिपालभीत्या।
तस्याज्ञयैव पुनरीक्षितुमुद्यतस्त्वा-
मानन्दभारमतिभूरितरं बभार॥ २॥

ये अक्रूर चिरकालसे आपके चरण-चिन्तनमें लगे थे; परंतु राजा कंसके डरसे उनका मन आपका दर्शन करनेमें अपनेको असमर्थ पाता था। फिर उसी कंसकी आज्ञासे वे आपका दर्शन करनेके लिये उद्यत हुए। उस समय उनके चित्तमें आनन्दका भारी भार भर गया॥ २॥

सोऽयं रथेन सुकृती भवतो निवासं
गच्छन् मनोरथगणांस्त्वयि धार्यमाणान्।

आस्वादयन् मुहुरपायभयेन दैवं
सम्प्रार्थयन् पथि न किंचिदपि व्यजानात्॥ ३॥

पुण्यात्मा अक्रूर रथके द्वारा जब आपके निवासस्थान नन्दगाँवको जा रहे थे, उस समय उनके हृदयमें आपको लेकर अनेक प्रकारके मनोरथ प्रकट हो रहे थे। उन मनोरथोंका बारंबार आस्वादन करते हुए अक्रूर, कोई विघ्न न आ जाय—इस भयसे, दैवकी प्रार्थना करते जाते थे। इस प्रकार उन्होंने उस मार्गमें कहाँ क्या हो रहा है, यह कुछ भी नहीं जाना॥ ३॥

द्रक्ष्यामि वेदशतगीतगतिं पुमांसं
स्प्रक्ष्यामि किंस्विदपि नाम परिष्वजेयम्।
किं वक्ष्यते स खलु मां क्व नु वीक्षितः स्या-
दित्थं निनाय स भवन्मयमेव मार्गम्॥ ४॥

'जिनकी गतिका वेदोंने सैकड़ों बार गान किया है, उन परम पुरुष श्रीकृष्णको क्या मैं देखूँगा? क्या उनका स्पर्श करूँगा अथवा क्या उन्हें हृदयसे लगा सकूँगा? क्या वे मुझसे वार्तालाप करेंगे? कहाँ पहुँचनेपर उनका दर्शन होगा?'—इस प्रकार उनका मार्ग श्रीकृष्णमय हो रहा था—आपके चिन्तनमें डूबे हुए ही वे अपना रास्ता तय कर रहे थे॥ ४॥

भूयः क्रमादभिविशन् भवदङ्घ्रिपूतं
वृन्दावनं हरविरिञ्चसुराभिवन्द्यम्।
आनन्दमग्न इव लग्न इव प्रमोहे
किं किं दशान्तरमवाप न पङ्कजाक्ष॥ ५॥

कमलनयन! फिर क्रमशः आपके चरणारविन्दोंसे पवित्र तथा शिव और ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी अभिवन्दनीय वृन्दावनमें प्रवेश करके वे आनन्दमग्न-से हो गये, मूर्च्छामें डूब-से गये। उस समय वे प्रेमकी किस-किस विभिन्न दशाको नहीं प्राप्त हुए॥ ५॥

पश्यन्नवन्दत भवद्विहृतिस्थलानि
पांसुष्ववेष्टत भवच्चरणाङ्कितेषु।

किं ब्रूमहे बहुजना हि तदापि जाता
एवं तु भक्तितरला विरलाः परात्मन्॥ ६॥

आपके विहार-स्थलोंको देखकर अक्रूरने उनकी वन्दना की। वे आपके चरणोंसे चिह्नित धूल-राशिमें लोटने लगे। परमात्मन्! हम क्या वर्णन करें। उस समय भी इस भूतलपर बहुत-से लोग उत्पन्न हुए थे; परंतु इस प्रकार भक्तिसे तरल चित्तवाले विरले ही मनुष्य थे॥ ६॥

सायं स गोपभवनानि भवच्चरित्र-
गीतामृतप्रसृतकर्णरसायनानि ।
पश्यन् प्रमोदसरितेव किलोह्यमानो
गच्छन् भवद्भवनसंनिधिमन्वयासीत्॥ ७॥

सायंकाल जहाँ आपकी लीलाओंके गानमय अमृतके प्रसारसे कानोंको रसायन प्राप्त होता था, उन गोपभवनोंको देखते हुए वे इस प्रकार आगे बढ़े, मानो आनन्दकी सरिता ही उन्हें अपनी धारामें बहाकर ले जाती हो। वे धीरे-धीरे आपके नन्दभवनके समीप जा पहुँचे॥ ७॥

तावद्ददर्श पशुदोहविलोकलोलं
भक्तोत्तमागतिमिव प्रतिपालयन्तम्।
भूमन् भवन्तमयमग्रजवन्तमन्त-
र्ब्रह्मानुभूतिरससिन्धुमिवोद्वमन्तम् ॥ ८॥

भूमन्! वहाँ इन्हें पहले आपका ही दर्शन हुआ। आप वहाँ गोदोहन देखनेमें व्यग्र थे और एक उत्तम भक्तके आगमनकी प्रतीक्षा-सी कर रहे थे। आपके साथ बड़े भाई बलरामजी भी थे और आप अन्तःकरणमें ब्रह्मानुभूति-रसामृतसमुद्र-सा उड़ेल रहे थे॥ ८॥

सायंतनाप्लवविशेषविविक्तगात्रौ
द्वौ पीतनीलरुचिराम्बरलोभनीयौ।
नातिप्रपञ्चधृतभूषणचारुवेषौ
मन्दस्मितार्द्रवदनौ स युवां ददर्श॥ ९ ॥

आप दोनों भाई सायंकालिक विशेष स्नान करके स्वच्छ शरीरसे सुशोभित थे। आप दोनों क्रमशः रुचिर पीताम्बर और नीलाम्बर धारण किये हुए थे, जिसके कारण आपकी आकृति बड़ी लुभावनी जान पड़ती थी। अधिक नहीं, थोड़े-से ही आभूषण धारण करनेसे आप दोनोंका वेष बड़ा मनोहर हो गया था। आप दोनोंके मुखारविन्द मन्द मुस्कानसे आर्द्र दिखायी देते थे। इसी स्थितिमें अक्रूरने आप दोनोंका दर्शन किया॥ ९॥

दूराद्रथात्समवरुह्य नमन्तमेन-
मुत्थाप्य भक्तकुलमौलिमथोपगूहन्।
हर्षान्मिताक्षरगिरा कुशलानुयोगी
पाणिं प्रगृह्य सबलोऽथ गृहं निनेथ॥ १०॥

दूरसे ही देखकर अक्रूर रथसे उतर गये और प्रणाम करने लगे। यह देख आपने इन भक्तशिरोमणिको उठाकर हृदयसे लगा लिया और हर्षवश थोड़े-से अक्षरवाली वाणीद्वारा कुशल पूछकर उनका हाथ पकड़े हुए बलरामजीसहित आप उन्हें अपने घर ले गये॥ १०॥

नन्देन साकममितादरमर्चयित्वा
तं यादवं तदुदितां निशमय्य वार्ताम्।
गोपेषु भूपतिनिदेशकथां निवेद्य
नानाकथाभिरिह तेन निशामनैषीः॥ ११॥

वहाँ नन्दजीके साथ अत्यन्त आदरपूर्वक उन यदुकुलभूषण अक्रूरका पूजन-सत्कार करके उनकी कही हुई वार्ता सुनकर और समस्त गोपोंको राजा कंसके आदेशकी बात बताकर आपने भाँति-भाँतिके वार्तालापोंद्वारा अक्रूरजीके साथ रात बितायी॥ ११॥

चन्द्रागृहे किमुत चन्द्रभगागृहे नु
राधागृहे नु भवने किमु मैत्रविन्दे।
धूर्तो विलम्बत इति प्रमदाभिरुच्चै-
राशङ्कितो निशि मरुत्पुरनाथ पायाः॥ १२॥

उस रातमें वहाँ रुक जानेके कारण गोपाङ्गनाओंको आपके विषयमें बड़ी भारी शङ्का हुई। वे सोचने लगीं—'हमारा धूर्त प्रियतम चन्द्रावलीके घरमें तो नहीं है या चन्द्रभगाके घरमें तो नहीं ठहरा है? अथवा मित्रवृन्दा या राधाके घरमें तो विलम्ब नहीं कर रहा है?' इस प्रकार आशङ्काके विषय बने हुए वायुपुराधीश्वर! मेरी रक्षा कीजिये॥ १२॥

॥ इति अक्रूरागमनवर्णनं द्विसप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

त्रिसप्ततितमदशकम्

मथुरापुरीकी यात्रा

निशमय्य तवाथ यानवार्तां भृशमार्ताः पशुपालबालिकास्ताः।
किमिदं किमिदं कथं न्वितीमाः समवेताः परिदेवितान्यकुर्वन्॥ १॥

आपके मथुरा जानेकी बात सुनकर गोपकिशोरियाँ अत्यन्त आर्त हो उठीं। 'यह क्या, यह क्या, ऐसा कैसे होगा?' इस प्रकार कहती हुई वे सब-की-सब एकत्र हो विलाप करने लगीं॥ १॥

करुणानिधिरेष नन्दसूनुः कथमस्मान् विसृजेदनन्यनाथाः।
बत नः किमु दैवमेवमासीदिति तास्त्वद्गतमानसा विलेपुः॥ २॥

'ये नन्दनन्दन तो करुणाके सागर हैं, हम गोपियोंका इनके सिवा दूसरा कोई नाथ या रक्षक नहीं है। फिर ये हमें कैसे त्याग सकते हैं। हाय! क्या हमारा भाग्य ऐसा ही था?'—ऐसा कहकर आपमें ही चित्त लगायी हुई वे गोपियाँ विलाप कर रही थीं॥ २॥

चरमप्रहरे प्रतिष्ठमानः सह पित्रा निजमित्रमण्डलैश्च।
परितापभरं नितम्बिनीनां शमयिष्यन् व्यमुचः सखायमेकम्॥ ३॥

रातके पिछले पहरमें अपने पिता और मित्रमण्डलीके साथ जब आप प्रस्थान करने लगे, तब उन गोपाङ्गनाओंके भारी संतापको शान्त करनेके लिये आपने अपने एक सखाको भेज दिया॥ ३॥

अचिरादुपयामि संनिधिं वो भविता साधु मयैव सङ्गमश्रीः।
अमृताम्बुनिधौ निमज्जयिष्ये द्रुतमित्याश्वसिता वधूरकार्षीः॥ ४॥

'गोपियो! मैं शीघ्र तुम्हारे पास लौट आऊँगा। फिर मेरे साथ तुम सभीका मङ्गल मिलन सम्भव होगा। मैं शीघ्र ही तुम सबको अमृतके महासागरमें निमज्जित कर दूँगा।'—इस प्रकार संदेश देकर उन गोपाङ्गनाओंको आपने सान्त्वना दी॥ ४॥

सविषादभरं सयाच्ञमुच्चैरतिदूरं वनिताभिरीक्ष्यमाणः।
मृदु तद्दिशि पातयन्नपाङ्गान् सबलोऽक्रूररथेन निर्गतोऽभूः॥ ५॥

आपके बहुत दूर चले जानेपर भी वे वनिताएँ बड़े विषाद और अत्यन्त याचनापूर्वक आपकी ओर देखती रहीं। और आप भी मधुर भावसे उन्हींकी ओर कटाक्षपात करते हुए अक्रूरके रथद्वारा बलरामसहित आगे निकल गये॥ ५॥

अनसा बहुलेन वल्लवानां मनसा चानुगतोऽथ वल्लभानाम्।
वनमार्तमृगं विषण्णवृक्षं समतीतो यमुनातटीमयासीः॥ ६॥

गोपोंके बहुत-से छकड़े आपके पीछे चल रहे थे और प्रियतमाओंका मन भी आपका अनुसरण कर रहा था। वनके पशु भी आपको जाते देख आर्त हो गये थे और वृक्ष भी विषादमें डूब गये थे। आप इन सबको लाँघकर यमुनाके तटपर जा पहुँचे॥ ६॥

नियमाय निमज्ज्य वारिणि त्वामभिवीक्ष्याथ रथेऽपि गान्दिनेयः।
विवशोऽजनि किं न्विदं विभोस्ते ननु चित्रं त्ववलोकनं समन्तात्॥ ७॥

वहाँ मध्याह्न-संध्याके नियमका निर्वाह करनेके लिये जब अक्रूरजीने यमुना-जलमें डुबकी लगायी, तब वहाँ उन्हें आप दिखायी दिये। फिर आप रथपर भी बैठे दृष्टिगोचर हुए। यह देख अक्रूर विवश हो गये और सोचने लगे—'यह क्या है?' आप सर्वव्यापी ईश्वरका सब ओर दर्शन होने लगा। यह विचित्र बात थी॥ ७॥

पुनरेष निमज्ज्य पुण्यशाली पुरुषं त्वां परमं भुजङ्गभोगे।
अरिकम्बुगदाम्बुजैः स्फुरन्तं सुरसिद्धौघपरीतमालुलोके॥ ८॥

पुण्यशाली अक्रूरने फिर गोता लगाया तो आप परमपुरुषको शेषनागकी शय्यापर आसीन देखा। आप चक्र-शङ्ख-गदा और पद्मसे सुशोभित थे और देवताओं तथा सिद्धोंका समुदाय आपको चारों ओरसे घेरकर खड़ा था॥ ८॥

स तदा परमात्मसौख्यसिन्धौ विनिमग्नः प्रणुवन् प्रकारभेदैः।
अविलोक्य पुनश्च हर्षसिन्धोरनुवृत्त्या पुलकावृतो ययौ त्वाम्॥ ९ ॥

उस समय अक्रूर ब्रह्मानन्द-सिन्धुमें निमग्न हो विभिन्न प्रकारसे आपकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर पुनः आप नहीं दिखायी दिये। केवल आनन्द-सिन्धुके अनुवर्तनसे रोमाञ्चित हो वे फिर आपके पास आये॥ ९॥

किमु शीतलिमा महान् जले यत् पुलकोऽसाविति चोदितेन तेन।
अतिहर्षनिरुत्तरेण सार्धं रथवासी पवनेश पाहि मां त्वम्॥ १०॥

आपने पूछा—'अक्रूरजी! क्या पानीमें सर्दी अधिक रही, जिससे आपको रोमाञ्च हो आया है?' इस प्रकार पूछनेपर भी वे अत्यन्त हर्षके कारण कोई उत्तर नहीं दे सके। उनके साथ रथपर बैठे हुए हे पवनपुरेश्वर! आप मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति मथुरापुरयात्रावर्णनं त्रिसप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

चतुस्सप्ततितमदशकम्

भगवान्‌का मथुरामें प्रवेश, रजक-निग्रह, दर्जी, माली और कुब्जापर कृपा तथा धनुर्भङ्ग

सम्प्राप्तो मथुरां दिनार्धविगमे तत्रान्तरस्मिन् वस-
न्नारामे विहिताशनः सखिजनैर्यातः पुरीमीक्षितुम्।
प्रापो राजपथं चिरश्रुतिधृतव्यालोककौतूहल-
स्त्रीपुंसोद्यदगण्यपुण्यनिगडैराकृष्यमाणो नु किम्॥ १ ॥

आधा दिन समाप्त होनेपर आप मथुरा पहुँचे। वहाँ बाहरी बगीचेमें ठहरकर आपने भोजन किया। फिर सखाओंके साथ मथुरापुरी देखनेके

लिये चल दिये। आपके विषयमें बहुत दिनोंसे सुनते रहनेके कारण मनमें दर्शनकी उत्कण्ठा धारण करनेवाले नर-नारियोंके उदित असंख्य पुण्यमय बन्धनोंसे खींचे जाते हुए-से ही क्या आप राजपथपर जा पहुँचे थे॥ १॥

त्वत्पादद्युतिवत्सरागसुभगास्त्वन्मूर्तिवद्योषितः
सम्प्राप्ता विलसत्पयोधररुचो लोला भवद्दृष्टिवत्।
हारिण्यस्त्वदुरःस्थलीवदयि ते मन्दस्मितप्रौढिव-
न्नैर्मल्योल्लसिताः कचौघरुचिवद्राजत्कलापाश्रिताः॥ २॥

प्रभो! उस समय आपके चरणोंकी द्युतिके समान रागवती तथा सौभाग्यशालिनी युवतियाँ आपको देखनेके लिये दौड़ी आयीं। आपकी मूर्ति जिस प्रकार पयोधर (मेघ)-के समान श्यामकान्तिसे सुशोभित होती है, उसी प्रकार वे युवतियाँ भी पयोधरों (उन्नत उरोजों)-की छविसे शोभा पाती थीं। आपकी दृष्टिके समान ही वे भी चञ्चल दिखायी देती थीं। आपकी वक्षः-स्थलीकी भाँति वे भी मनोहारिणी थीं। आपके प्रौढ़ मन्दहासकी भाँति वे भी अपनी निर्मलतासे शोभित होती थीं तथा आपके केशपाशकी भाँति वे भी अपने सुन्दर केशोंमें गुँथे हुए मयूरपिच्छसे शोभा पाती थीं॥ २॥

तासामाकलयन्नपाङ्गवलनैर्मोदं प्रहर्षाद्भुत-
व्यालोलेषु जनेषु तत्र रजकं कंचित् पटीं प्रार्थयन्।
कस्ते दास्यति राजकीयवसनं याहीति तेनोदितः
सद्यस्तस्य करेण शीर्षमहृथाः सोऽप्याप पुण्यां गतिम्॥ ३॥

आप अपने कटाक्षपातसे उन नगर-नारियोंका आनन्द बढ़ा रहे थे। उस राजमार्गपर बहुत-से लोग अद्भुत चपल दिखायी देते थे। उस समय वहाँ आपने किसी धोबीसे अपने पहनने योग्य वस्त्र माँगा। उसने उत्तर दिया—'अजी! हटो, जाओ; तुम्हें राजाका वस्त्र कौन देगा।' उसके इतना कहते ही उसी क्षण आपने हाथसे उसका मस्तक मरोड़ दिया। फिर तो वह भी पुण्यगतिको प्राप्त हुआ॥ ३॥

भूयो वायकमेकमायतमतिं तोषेण वेषोचितं
दाश्वांसं स्वपदं निनेथ सुकृतं को वेद जीवात्मनाम्।

मालाभिः स्तबकैः स्तवैरपि पुनर्मालाकृता मानितो
भक्तिं तेन वृतां दिदेशिथ परां लक्ष्मीं च लक्ष्मीपते॥ ४॥

फिर आप एक दर्जीके पास गये। वह बड़ा उदार था तथा उसकी बुद्धि बड़ी विशाल थी। उसने बड़े संतोषके साथ आपके वेषके अनुरूप वस्त्र प्रदान किया। तब आपने भी उसको अपने धाममें पहुँचा दिया। जीवात्माओंके पुण्यको कौन जानता है? इसके बाद एक मालीने बहुत-सी मालाएँ और पुष्पगुच्छ अर्पित करके तथा बहुत-सी स्तुतियाँ सुनाकर आपको सम्मानित किया। लक्ष्मीपते! उस मालीने आपसे आपकी भक्ति माँगी। आपने उसे भक्ति तो दी ही, उत्तम लक्ष्मी भी प्रदान की॥ ४॥

कुब्जामब्जविलोचनां पथि पुनर्दृष्ट्वाङ्गरागे तया
दत्ते साधु किलाङ्गरागमददास्तस्या महान्तं हृदि।
चित्तस्थामृजुतामथ प्रथयितुं गात्रेऽपि तस्याः स्फुटं
गृह्णन् मञ्जुकरेण तामुदनयस्तावज्जगत्सुन्दरीम्॥ ५॥

मार्गमें आपने एक कमललोचना कुब्जाको देखा। उसने आपको बहुत अच्छा अङ्गराग दिया। तब आपने भी उसके हृदयमें अपने अङ्गके प्रति महान् राग दे दिया। उसके चित्तमें जो सरलता थी, उसे उसके शरीरमें भी स्पष्टतः प्रकट करनेके लिये आपने अपने सुन्दर हाथसे पकड़कर उसको उचका दिया। फिर तो वह जगत्सुन्दरी हो गयी॥ ५॥

तावन्निश्चितवैभवास्तव विभो नात्यन्तपापा जना
यत्किंचिद् ददते स्म शक्त्यनुगुणं ताम्बूलमाल्यादिकम्।
गृह्णानः कुसुमानि किंचन तदा मार्गे निबद्धाञ्जलि-
र्नातिष्ठं बत हा यतोऽद्य विपुलामार्तिं व्रजामि प्रभो॥ ६॥

विभो! तबतक लोगोंको आपके वैभव (ऐश्वर्य)-का निश्चित ज्ञान हो गया। उनके भीतर आपके विषयमें पापबुद्धि नहीं थी। वे मथुरावासी अपनी शक्तिके अनुसार ताम्बूल, पुष्पमाला आदि जो कुछ हो सका, आपको समर्पित करते रहे; परंतु हाय! कष्ट है कि उस समय मैं हाथमें थोड़े-से पुष्प आदि लेकर मार्गमें हाथ जोड़े हुए खड़ा नहीं था। प्रभो! इसी कारण आज इस महती पीड़ाका उपभोग कर रहा हूँ॥ ६॥

एष्यामीति विमुक्तयापि भगवन्नालेपदात्र्या तया
दूरात् कातरया निरीक्षितगतिस्त्वं प्राविशो गोपुरम्।
आघोषानुमितत्वदागममहाहर्षोल्ललद्देवकी-
वक्षोजप्रगलत्पयोरसमिषात् त्वत्कीर्तिरन्तर्गता॥ ७॥

भगवन्! यद्यपि आपने 'मैं तुम्हारे घर आऊँगा'—यों कहकर उस अङ्गराग प्रदान करनेवाली त्रिवक्राको लौटाया, तथापि वह विरहसे कातर हो, दूरसे ही खड़ी-खड़ी निर्निमेष नयनोंसे आगे-आगे राजपथपर जाते हुए आपको निहारती रही। इतनेहीमें आप गोपुरके भीतर चले गये। उस समय सब ओर होनेवाले जयघोष एवं कोलाहलसे देवकीजीको अनुमान हो गया कि 'मेरा लाल आ गया।' इससे होनेवाले महान् हर्षसे उल्लसित माता देवकीके स्तनोंसे जो दुग्धरस झरने लगा, मानो उसीके व्याजसे आपके आगमनसे पूर्व ही आपकी कीर्ति अन्तःपुरमें प्रविष्ट हो गयी॥ ७॥

आविष्टो नगरीं महोत्सववतीं कोदण्डशालां व्रजन्
माधुर्येण नु तेजसा नु पुरुषैर्दूरेण दत्तान्तरः।
स्रग्भिर्भूषितमर्चितं वरधनुर्मा मेति वादात् पुरः
प्रागृह्णाः समरोपयः किल समाक्राक्षीरभाङ्क्षीरपि॥ ८॥

इस प्रकार महोत्सवसे परिपूर्ण उस मथुरापुरीमें प्रविष्ट होकर आप धनुषशालामें गये। वहाँ आपके माधुर्य तथा तेजसे प्रभावित होकर रक्षकोंने दूरसे ही आपको भीतर आनेका मार्ग दे दिया। उस शालामें आपने मालाओंसे विभूषित तथा समर्चित एक श्रेष्ठ धनुष देखा। देखते ही, जबतक कि लोग 'इसे मत छुओ, मत छुओ'—ऐसा कहें, उसके पूर्व ही आपने उस धनुषको उठा लिया, उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी, उसे खींचा और तोड़ भी डाला॥ ८॥

श्वः कंसक्षपणोत्सवस्य पुरतः प्रारम्भतूर्योपम-
श्चापध्वंसमहाध्वनिस्तव विभो देवानरोमाञ्चयत्।
कंसस्यापि च वेपथुस्तदुदितः कोदण्डखण्डद्वयी-
चण्डाभ्याहतरक्षिपूरुषरवैरुत्कूलितोऽभूत् त्वया॥ ९॥

प्रभो! आपके द्वारा धनुषके टूटनेसे बड़े जोरसे आवाज हुई, वही मानो दूसरे दिन होनेवाले कंसवधोत्सवकी पूर्वसूचना देनेवाली प्रारम्भिक रणभेरी थी। उसने देवताओंको रोमाञ्चित कर दिया तथा कंस भी काँप उठा। तत्पश्चात् आपने धनुषके दोनों टुकड़ोंके भीषण प्रहारसे रक्षकोंको पीटना आरम्भ किया, जिससे उनके आर्तनादसे राजा कंसकी कँपकँपी और बढ़ गयी॥ ९॥

शिष्टैर्दुष्टजनैश्च दृष्टमहिमा प्रीत्या च भीत्या ततः
सम्पश्यन् पुरसम्पदं प्रविचरन् सायं गतो वाटिकाम्।
श्रीदाम्ना सह राधिकाविरहजं खेदं वदन् प्रस्वप-
न्नानन्दन्नवतारकार्यघटनाद् वातेश संरक्ष माम्॥ १०॥

उस दिन शिष्ट पुरुषोंने प्रीतिसे और दुष्टोंने भयसे आपकी महिमा देखी। आप मथुरापुरीकी शोभा-सम्पत्ति देखते हुए घूमते-घामते संध्याके समय विश्रामके लिये वाटिकामें जा पहुँचे। वहाँ श्रीदामाके साथ अपने राधाविरह-जन्य खेदकी चर्चा करते हुए सोये। उस समय अवतारकार्य क्रमशः घटित होनेसे आनन्दित होनेवाले वातेश! मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति भगवतो मथुरापुरीप्रवेशरजकनिग्रहवायकमालाकारकुब्जानुग्रह-धनुर्भङ्गादिवर्णनं चतुस्सप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चसप्ततितमदशकम्

कुवलयापीड, चाणूर, मुष्टिक और भाइयोंसहित
कंसका वध तथा उग्रसेनको राज्यप्राप्ति

प्रातः संत्रस्तभोजक्षितिपतिवचसा प्रस्तुते मल्लतूर्ये
सङ्घे राज्ञां च मञ्चानभिययुषि गते नन्दगोपेऽपि हर्म्यम्।
कंसे सौधाधिरूढे त्वमपि सहबलः सानुगश्चारुवेषो
रङ्गद्वारं गतोऽभूः कुपितकुवलयापीडनागावलीढम्॥ १॥

दूसरे दिन प्रातःकाल भयभीत हुए भोजराज कंसकी आज्ञासे जब मल्ल-क्रीडाके प्रारम्भ होनेकी सूचना देनेवाले बाजे बजने लगे,

राजाओंका समुदाय अपने-अपने मञ्चपर आसीन हो गया, गोपराज नन्द भी कोठेपर जा बैठे और कंस सौधशिखरपर विराजमान हो गया, तब आप भी बलरामसहित सुन्दर वेष धारण करके अनुगामी सखाओंके साथ रङ्गशालाके द्वारपर गये। वहाँ गजराज कुवलयापीड कुपित होकर द्वारको अवरुद्ध किये खड़ा था॥ १॥

पापिष्ठापेहि मार्गाद् द्रुतमिति वचसा निष्ठुरक्रुद्धबुद्धे-
रम्बष्ठस्य प्रणोदादधिकजवजुषा हस्तिना गृह्यमाणः।
केलीमुक्तोऽथ गोपीकुचकलशचिरस्पर्धिनं कुम्भमस्य
व्याहत्यालीयथास्त्वं चरणभुवि पुनर्निर्गतो वल्गुहासी॥ २॥

उस समय आपने डपटकर कहा—'पापिष्ठ! जल्दीसे मार्ग छोड़कर हट जा।' आपकी इस बातसे क्रूर महावत मन-ही-मन कुपित हो उठा। उसने हाथीको आपकी ओर प्रेरित किया। हाथीने अधिक वेगसे झपटकर आपको पकड़ लिया, परंतु आप खेल-खेलमें ही उसकी पकड़से निकल गये और गोपियोंके कुच-कलशके साथ चिरकालसे स्पर्धा करनेवाले उसके कुम्भस्थलपर मुक्केसे प्रहार करके उसके ही चरणोंके बीचमें छिप गये। फिर मधुर हासके साथ आप बाहर निकल आये॥ २॥

हस्तप्राप्योऽप्यगम्यो झटिति मुनिजनस्येव धावन् गजेन्द्रं
क्रीडन्नापत्य भूमौ पुनरभिपततस्तस्य दन्तं सजीवम्।
मूलादुन्मूल्य तन्मूलगमहितमहामौक्तिकान्यात्ममित्रे
प्रादास्त्वं हारमेभिर्ललितविरचितं राधिकायै दिशेति॥ ३॥

यद्यपि आप सूँडद्वारा पकड़में आने योग्य थे, तथापि वह उसी प्रकार आपका स्पर्श नहीं कर पाता था, जैसे मुनिगण ध्यानद्वारा आपको नहीं पकड़ पाते। तब गजराजकी ओर दौड़ते हुए आप उसके साथ क्रीडा करते-करते स्वयं ही जान-बूझकर भूमिपर गिर पड़े। यह देख जब वह पुनः आपपर झपटा; तब आपने प्राणसहित उसके दाँतोंको जड़से उखाड़ लिया और दन्तमूलमें स्थित बहुमूल्य महामुक्ताओंको लेकर अपने मित्र श्रीदामाको यों कहते हुए दे दिया कि 'तुम इन मुक्ताओंद्वारा सुन्दर ढंगसे बना हुआ हार राधिकाको दे देना'॥ ३॥

गृह्णानं दन्तमंसे युतमथ हलिना रङ्गमङ्गाविशन्तं
त्वां मङ्गल्याङ्गभङ्गीरभसहृतमनोलोचना वीक्ष्य लोकाः।
हं हो धन्यो नु नन्दो नहि नहि पशुपालाङ्गना नो यशोदा
नो नो धन्येक्षणाः स्मस्त्रिजगति वयमेवेति सर्वे शशंसुः॥ ४॥

प्रभो! तदनन्तर एक दाँतको आप तथा दूसरेको बलरामजी कंधेपर रखकर, दोनों भाई रङ्गशालामें प्रविष्ट हुए। आपको देखते ही आपकी माङ्गलिक अङ्गभङ्गीने लोगोंके मन और नेत्रोंको बरबस अपनी ओर खींच लिया। तब वे लोग कहने लगे—'अहो! (जिनके ये पुत्र हैं, वे) नन्द त्रिलोकीमें धन्य हैं। नहीं-नहीं, (जिन्होंने इनके आलिङ्गनादि सुखका अनुभव किया है, वे) गोपाङ्गनाएँ धन्य हैं। नहीं-नहीं, (माता होनेके कारण) यशोदाजी सर्वाधिक धन्य हैं। नहीं-नहीं, हमारे नेत्र धन्य हैं, जो इनका दर्शन कर रहे हैं; और इनके द्वारा हमलोग ही इस त्रिभुवनमें सबसे अधिक धन्य हो गये हैं'॥ ४॥

पूर्णं ब्रह्मैव साक्षान्निरवधिपरमानन्दसान्द्रप्रकाशं
गोपेषु त्वं व्यलासीर्न खलु बहुजनैस्तावदावेदितोऽभूः।
दृष्ट्वाथ त्वां तदेदंप्रथममुपगते पुण्यकाले जनौघाः
पूर्णानन्दा विपापाः सरसमभिजगुस्त्वत्कृतानि स्मृतानि॥ ५॥

आप निस्सीम परमानन्दघन प्रकाशरूप साक्षात् पूर्ण ब्रह्म हैं, तथापि आपने गोपोंमें अवतीर्ण होकर लीला-विलास किया। परंतु बहुसंख्यक लोग आपके तत्त्वको जान न सके। पुण्यके फलदानोन्मुख होनेपर वह सारा जनसमुदाय पहले-पहल आपका दर्शन करके पापरहित हो आनन्दसे परिपूर्ण हो गया। उन्हें आपकी लीलाएँ स्मरण हो आयीं और वे आनन्दपूर्वक उनका गान करने लगे॥ ५॥

चाणूरो मल्लवीरस्तदनु नृपगिरा मुष्टिको मुष्टिशाली
त्वां रामं चाभिपेदे झटझटिति मिथो मुष्टिपातातिरूक्षम्।
उत्पातापातनाकर्षणविविधरणान्यासतां तत्र चित्रं
मृत्योः प्रागेव मल्लप्रभुरगमदयं भूरिशो बन्धमोक्षान्॥ ६॥

तत्पश्चात् राजाकी आज्ञासे मल्लयुद्धकुशल वीर चाणूर आपसे और मुष्टिशाली मुष्टिक बलरामजीसे जा भिड़ा। फिर तो झट-झट परस्पर मुष्टि-प्रहारसे अत्यन्त भीषण चटाचट शब्द होने लगा। दोनों ओरसे एक-दूसरेको ऊपर उछाल देना, भूमिपर पटक देना, परस्पर हाथ पकड़कर खींचना आदि विविध मल्ल-युद्धके दाँव-पेंचकी क्रियाएँ होने लगीं। वहाँ आश्चर्यकी बात यह हुई कि वह मल्ल-युद्धका नायक मृत्युसे पहले ही बारंबार बन्धन और मोक्षको प्राप्त हुआ (वह अनेक बार आपकी पकड़में आया और छूटा)॥ ६॥

हा धिक् कष्टं कुमारौ सुललितवपुषौ मल्लवीरौ कठोरौ
न द्रक्ष्यामो व्रजामस्त्वरितमिति जने भाषमाणे तदानीम्।
चाणूरं तं करोद्भ्रामणविगलदसुं पोथयामासिथोर्व्यां
पिष्टोऽभून्मुष्टिकोऽपि द्रुतमथ हलिना नष्टशिष्टैर्दधावे॥ ७॥

'हा धिक्! कष्टकी बात है। कहाँ तो ये सुकुमार शरीरवाले दोनों कुमार और कहाँ वे वज्रके समान कठोर पहलवान! यह अन्याय है। हमलोग इसे नहीं देखेंगे; चलो, जल्दी चलें।' इस प्रकार जब सब लोग कोलाहल कर रहे थे, तबतक उस चाणूरको, जिसके प्राणपखेरू हाथसे आकाशमें घुमाते समय ही उड़ गये थे, आपने भूतलपर दे मारा और हलधरने भी तुरंत ही मुष्टिकको पीस डाला। तत्पश्चात् मरनेसे बचे हुए शेष मल्ल भाग खड़े हुए॥ ७॥

कंसः संवार्य तूर्यं खलमतिरविदन् कार्यमार्यान् पितॄंस्ता-
नाहन्तुं व्याप्तमूर्तेस्तव च समशिषद् दूरमुत्सारणाय।
रुष्टो दुष्टोक्तिभिस्त्वं गरुड इव गिरिं मञ्चमञ्चन्नुदञ्चत्
खड्गव्यावल्गदुस्संग्रहमपि च हठात् प्राग्रहीरौग्रसेनिम्॥ ८॥

तब दुष्टबुद्धि कंसने बाजा बंद करवा दिया। उसे सामयिक कर्तव्यका ज्ञान तो रहा नहीं, इसलिये उसने उग्रसेन, वसुदेव और नन्द आदि गुरुजनोंको मार डालनेके लिये तथा सर्वव्यापी आपको दूर खदेड़ देनेके लिये आज्ञा दी। उस दुष्टकी वाणी सुनकर आप रुष्ट हो गये और

उछलकर उसके पर्वतशिखर-सदृश ऊँचे मञ्चपर गरुडकी भाँति जा पहुँचे। यद्यपि नंगी तलवारके चलानेसे उग्रसेनकुमार कंसको पकड़ना अशक्य था, तथापि आपने उसे धर दबोचा॥ ८॥

सद्यो निष्पिष्टसंधिं भुवि नरपतिमापात्य तस्योपरिष्टात्
त्वय्यापात्ये तदैव त्वदुपरि पतिता नाकिनां पुष्पवृष्टिः।
किं किं ब्रूमस्तदानीं सततमपि भिया त्वद्गतात्मा स भेजे
सायुज्यं त्वद्वधोत्था परम परमियं वासना कालनेमेः॥ ९ ॥

फिर तुरंत ही उस नरेशके शरीरकी संधियोंको चूर-चूर करके उसे भूतलपर फेंक दिया और स्वयं आप उसके ऊपर कूद पड़े। कूदनेके साथ ही आपके ऊपर स्वर्गवासियोंद्वारा की हुई पुष्पवृष्टि गिरने लगी। क्या-क्या कहें! अरे, उस समय ऐसी आश्चर्यजनक बात हुई कि भयसे भी निरन्तर आपमें चित्त लगानेवाला कंस सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त हो गया। परमपुरुष! यह केवल कालनेमिकी पूर्ववासना थी, जो आपके द्वारा किये गये वधसे उत्पन्न हुई थी (कंस कालनेमिका अवतार था और पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने कालनेमिको मारा था)॥ ९॥

तद्भ्रातॄनष्ट पिष्ट्वा द्रुतमथ पितरौ संनमन्नुग्रसेनं
कृत्वा राजानमुच्चैर्यदुकुलमखिलं मोदयन् कामदानैः।
भक्तानामुत्तमं चोद्धवममरगुरोराप्तनीतिं सखायं
लब्ध्वा तुष्टो नगर्यां पवनपुरपते रुन्धि मे सर्वरोगान्॥ १०॥

तदनन्तर आपने कंसके आठ भाइयोंका कचूमर निकालकर तुरंत ही वसुदेव-देवकीके चरणोंमें नमस्कार किया और उग्रसेनको राजा बनाया। इस प्रकार सम्पूर्ण यदुकुलको उनका मनोरथ पूर्ण करके अतिशय आनन्दित किया। पुनः, जिन्हें देवगुरु बृहस्पतिसे नीतिकी शिक्षा मिली थी, उन भक्तश्रेष्ठ उद्धवको सखारूपमें प्राप्त करके आप परम संतुष्ट हुए और मथुरापुरीमें रहने लगे। पवनपुरपते! मेरे सम्पूर्ण रोगोंको दूर कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति कंसवधवर्णनं पञ्चसप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

षट्सप्ततितमदशकम्

श्रीकृष्ण और बलरामका गुरुकुल-वास तथा उद्धवका दौत्य कर्म

गत्वा सांदीपनिमथ चतुष्षष्टिमात्रैरहोभिः
सर्वज्ञस्त्वं सह मुसलिना सर्वविद्या गृहीत्वा।
पुत्रं नष्टं यमनिलयनादाहृतं दक्षिणार्थं
दत्त्वा तस्मै निजपुरमगा नादयन् पाञ्चजन्यम्॥ १॥

तदनन्तर सर्वज्ञ होते हुए भी आप विद्याध्ययनार्थ बलरामजीके साथ सांदीपनि मुनिके समीप गये। वहाँ केवल चौंसठ दिनोंमें ही सारी विद्याएँ सीख लीं। तत्पश्चात् मुनिके मरे हुए पुत्रको यमपुरीसे वापस लाकर गुरुजीको दक्षिणारूपमें प्रदान करके पाञ्चजन्य शङ्खको बजाते हुए अपनी मथुरापुरीको लौट आये॥ १॥

स्मृत्वा स्मृत्वा पशुपसुदृशः प्रेमभारप्रणुन्नाः
कारुण्येन त्वमपि विवशः प्राहिणोरुद्धवं तम्।
किं चामुष्मै परमसुहृदे भक्तवर्याय तासां
भक्त्युद्रेकं सकलभुवने दुर्लभं दर्शयिष्यन्॥ २॥

गोपाङ्गनाएँ आपको याद करके प्रेमभारसे विवश थीं; आप भी उनका स्मरण करके करुणाके अधीन हो गये। अतः अपने सखा उद्धवको व्रजमें भेजा। वहाँका समाचार जाननेके अतिरिक्त उनको वहाँ भेजनेका एक और प्रयोजन था। आप अपने परम मित्र भक्तश्रेष्ठ उद्धवको गोपियोंकी सकलभुवनदुर्लभ उत्कट भक्ति दिखाना चाहते थे॥ २॥

त्वन्माहात्म्यप्रथिमपिशुनं गोकुलं प्राप्य सायं
त्वद्वार्ताभिर्बहु स रमयामास नन्दं यशोदाम्।
प्रातर्दृष्ट्वा मणिमयरथं शङ्किताः पङ्कजाक्ष्यः
श्रुत्वा प्राप्तं भवदनुचरं त्यक्तकार्याः समीयुः॥ ३॥

उद्धवजी संध्या होते-होते आपकी महिमाके अतिशय विस्तारको सूचित करनेवाले गोकुलमें पहुँचकर (नन्दबाबाके घर गये।) रात्रिमें

उन्होंने नन्द और यशोदाको आपकी बातें बताते हुए अत्यन्त आनन्द पहुँचाया। प्रातःकाल नन्द-द्वारपर मणिमय रथको देखकर कमलनयनी गोपियोंको आपके आगमनकी शङ्का हो गयी। तब वे आपके अनुचर उद्धवको आया सुनकर सारा काम-काज छोड़ उनके पास गयीं॥ ३॥

दृष्ट्वा चैनं त्वदुपमलसद्वेषभूषाभिरामं
स्मृत्वा स्मृत्वा तव विलसितान्युच्चकैस्तानि तानि।
रुद्धालापाः कथमपि पुनर्गद्गदां वाचमूचुः
सौजन्यादीन्निजपरभिदामप्यलं विस्मरन्त्यः॥ ४॥

वहाँ उद्धवको आपके ही सदृश सुन्दर वेष-भूषासे सुशोभित देखकर उन्हें आपका स्मरण हो आया और आपके उन महान् लीलाविलासोंको बारंबार याद करके उनकी वाक्शक्ति अवरुद्ध हो गयी। फिर किसी तरह वे गद्गद वाणीमें बोल सकीं। वे सौजन्य आदिको तथा अपने-परायेके भेदको भी भूल गयी थीं॥ ४॥

श्रीमन् किं त्वं पितृजनकृते प्रेषितो निर्दयेन
क्वासौ कान्तो नगरसुदृशां हा हरे नाथ पायाः।
आश्लेषाणाममृतवपुषो हन्त ते चुम्बनाना-
मुन्मादानां कुहकवचसां विस्मरेत् कान्त का वा॥ ५॥

[वे पूछने लगीं—] श्रीमन्! क्या निष्ठुर कन्हैयाने केवल अपने माता-पिता (नन्द-यशोदा) को प्रसन्न करनेके लिये आपको यहाँ भेजा है? नागरिक कामिनियोंके प्रियतम वे श्यामसुन्दर इस समय कहाँ हैं? हा हरे! हा नाथ! रक्षा करो। प्रियतम! भला, ऐसी कौन स्त्री होगी, जो आपके अमृतमय शरीरके आलिङ्गन, चुम्बन, स्नेहसिक्त विलास और कपटपूर्ण वचनोंको भुला सकेगी॥ ५॥

रासक्रीडालुलितललितं विश्लथत्केशपाशं
मन्दोद्भिन्नश्रमजलकणं लोभनीयं त्वदङ्गम्।
कारुण्याब्धे सकृदपि समालिङ्गितुं दर्शयेति
प्रेमोन्मादाद् भुवनमदन त्वत्प्रियास्त्वां विलेपुः॥ ६॥

'करुणासागर! रासक्रीडाके समय चञ्चल होनेके कारण जो

अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता था, जिसके केशपाश ढीले पड़ गये थे और जिसपर छोटी-छोटी पसीनेकी बूँदें उभड़ आयी थीं, अपने उस लुभावने श्रीअङ्गको एक बार भी हृदयसे लगानेके लिये हमें दिखा दीजिये।' भुवनमोहन! इस प्रकार आपकी प्रेयसी गोपियाँ प्रेमोन्मत्त होकर आपके लिये विलाप करने लगीं॥ ६॥

एवम्प्रायैर्विवशवचनैराकुला गोपिकास्ता-
स्त्वत्संदेशैः प्रकृतिमनयत् सोऽथ विज्ञानगर्भैः।
भूयस्ताभिर्मुदितमतिभिस्त्वन्मयीभिर्वधूभि-
स्तत्तद्वार्तासरसमनयत् कानिचिद्वासराणि॥ ७॥

प्रायः ऐसे ही स्नेहपूर्ण वचन कहती हुई वे गोपिकाएँ प्रेमविह्वल हो रही थीं, तब उद्धवने आपके विज्ञानपूर्ण संदेश सुनाकर उन्हें प्रकृतिस्थ किया। पुनः आपमें ही तन्मय रहनेवाली, मुदित अन्तःकरणवाली गोपियोंके साथ आपकी विभिन्न बातें कहते हुए उन्होंने वहाँ आनन्दपूर्वक कई दिन व्यतीत किये॥ ७॥

त्वत्प्रोद्गानैः सहितमनिशं सर्वतो गेहकृत्यं
त्वद्वार्तैव प्रसरति मिथः सैव चोत्स्वापलापाः।
चेष्टाः प्रायस्त्वदनुकृतयस्त्वन्मयं सर्वमेवं
दृष्ट्वा तत्र व्यमुहदधिकं विस्मयादुद्धवोऽयम्॥ ८॥

वहाँ गोपिकाएँ सारा गृह-कार्य करते समय आपकी लीलाओंका ही निरन्तर गान करती रहती थीं। वे आपसमें आपकी ही बातें कहती-सुनती थीं। यहाँतक कि स्वप्नमें भी उनके मुखसे वही बात निकलती थी। उनके सारे व्यापार आपके अनुकरणरूप ही होते थे। इस प्रकार उनका सब कुछ आपमें ही तन्मय हुआ देखकर उद्धव आश्चर्यचकित हो गये और उनकी बुद्धिपर अतिशय मोह छा गया॥ ८॥

राधाया मे प्रियतममिदं मत्प्रियैवं ब्रवीति
त्वं किं मौनं कलयसि सखे मानिनी मत्प्रियेव।
इत्याद्येव प्रवदति सखि त्वत्प्रियो निर्जने मा-
मित्थंवादैररमयदयं त्वत्प्रियामुत्पलाक्षीम्॥ ९॥

तत्पश्चात् उद्धवजी राधासे कहने लगे—"सखि राधे! तुम्हारे प्रियतम श्रीकृष्ण एकान्तमें मुझसे यही कहा करते हैं—'मेरी प्रिया राधाको यह वस्तु अतिशय प्रिय है। मेरी प्रिया राधा ऐसा बोलती है। सखे! तुम मेरी मानिनी प्रिया राधाकी तरह मौन क्यों धारण करते हो?' इत्यादि।" इस प्रकारके प्रेमसूचक वचनोंद्वारा उद्धवने आपकी प्रिया कमलनयनी राधाको आनन्दित किया॥ ९॥

एष्यामि द्रागनुपगमनं केवलं कार्यभाराद्
विश्लेषेऽपि स्मरणदृढतासम्भवान्मास्तु खेदः।
ब्रह्मानन्दे मिलति नचिरात् सङ्गमो वा वियोग-
स्तुल्यो वः स्यादिति तव गिरा सोऽकरोन्निर्व्यथास्ताः॥ १०॥

'मेरी प्यारी गोपियो! मैं शीघ्र आऊँगा, अबतक केवल कार्याधिक्यके ही कारण आना सम्भव नहीं हुआ है। वियोगमें भी मुझ प्रियके स्मरणकी दृढ़ता सम्भव है, अतः तुम्हें खेद नहीं होना चाहिये। यदि ब्रह्मानन्दका शीघ्र अनुभव हो रहा हो तो तुम्हारे लिये मेरा संयोग और वियोग एक-सा ही हो जायगा।' इस प्रकार आपके संदेशद्वारा उद्धवने उन गोपियोंकी व्यथाको शान्त किया॥ १०॥

एवं भक्तिः सकलभुवने नेक्षिता न श्रुता वा
किं शास्त्रौघैः किमिह तपसा गोपिकाभ्यो नमोऽस्तु।
इत्यानन्दाकुलमुपगतं गोकुलादुद्धवं तं
दृष्ट्वा हृष्टो गुरुपुरपते पाहि मामामयौघात्॥ ११॥

'इन गोपियोंकी-सी भक्ति समस्त भुवनोंमें न कहीं देखी गयी और न कहीं सुनी ही गयी। तब, भला, शास्त्रोंके अध्ययन तथा तपस्यासे क्या लाभ है? इन गोपिकाओंको नमस्कार है।' इस प्रकार आनन्दविह्वल होकर गोकुलसे लौटे हुए उन उद्धवजीको देखकर आपको परम प्रसन्नता हुई। गुरुपुरपते! रोगसमूहोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति उद्धवदौत्यवर्णनं षट्सप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

सप्तसप्ततितमदशकम्

कुब्जाकी कामनापूर्ति, अक्रूरके घर जाना, जरासंध आदिसे युद्ध, कालयवन-उद्धार और मुचुकुन्दपर कृपा

सैरन्ध्र्यास्तदनु चिरं स्मरातुराया
यातोऽभूः सललितमुद्धवेन सार्धम्।
आवासं त्वदुपगमोत्सवं सदैव
ध्यायन्त्याः प्रतिदिनवाससज्जिकायाः॥ १॥

तदनन्तर जो कामपीड़ासे अत्यन्त आतुर हो रही थी, अतएव सदैव आपके उत्सवपूर्ण आगमनकी ही बात सोचती रहती थी, उस वासकसज्जा सैरन्ध्री (कुब्जा)-के घरपर आप सुन्दर वेष-भूषासे सुसज्जित हो उद्धवके साथ पधारे॥ १॥

उपगते त्वयि पूर्णमनोरथां
प्रमदसम्भ्रमकम्प्रपयोधराम्।
विविधमाननमादधतीं मुदा
रहसि तां रमयाञ्चकृषे सुखम्॥ २॥

आपको आया हुआ देखकर जिसके मनोरथ पूर्ण हो गये थे, हर्षातिरेकसे शीघ्रतापूर्वक स्वागतके लिये दौड़नेपर जिसके स्तन हिल रहे थे तथा जो हर्षपूर्वक आपके प्रति विविध प्रकारसे सम्मान प्रदर्शित कर रही थी, उस सैरन्ध्रीको आपने एकान्तमें सुख एवं आनन्द प्रदान किया॥ २॥

पृष्टा वरं पुनरसाववृणोद्वराकी
भूयस्त्वया सुरतमेव निशान्तरेषु।
सायुज्यमस्त्विति वदेद् बुध एव कामं
सामीप्यमस्त्वनिशमित्यपि नाब्रवीत् किम्॥ ३॥

चलते समय आपने उससे वरदान माँगनेके लिये कहा तो उस बेचारीने आगामी कुछ रात्रियोंतक आपके साथ पुनः रमण करनेकी ही

विद्वान् ही माँगे, परंतु 'निरन्तर आपका सामीप्य ही बना रहे'—ऐसा वरदान भी उसने न जाने क्यों नहीं माँगा?॥ ३॥

ततो भवान् देव निशासु कासुचि-
न्मृगीदृशं तां निभृतं विनोदयन्।
अदादुपश्लोक इति श्रुतं सुतं
स नारदात् सात्वततन्त्रविद्बभौ॥ ४॥

देव! तब आप कुछ रात्रियोंतक उस मृगनयनी सैरन्ध्रीको एकान्तमें रस-दान करते रहे और उसे 'उपश्लोक' नामसे विख्यात एक पुत्र भी दिया।* वह उपश्लोक नारदजीसे सात्वततन्त्रकी शिक्षा प्राप्त करके लोकमें सुशोभित हुआ॥ ४॥

अक्रूरमन्दिरमितोऽथ बलोद्धवाभ्या-
मभ्यर्चितो बहु नुतो मुदितेन तेन।
एनं विसृज्य विपिनागतपाण्डवेय-
वृत्तं विवेदिथ तथा धृतराष्ट्रचेष्टाम्॥ ५॥

---

* सैरन्ध्रीको भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा पुत्र-प्राप्तिका वर्णन किसी आर्ष-ग्रन्थमें देखनेको नहीं मिला। 'नारायणीयम्' काव्यके रचयिता श्रीनारायण भट्टतिरी भगवत्प्राप्त महापुरुष थे, केरलमें उनके सम्बन्धमें ऐसी मान्यता है। सम्भव है, उन्हें भगवत्कृपासे इस प्रकारकी अनुभूति हुई हो। जो भी हो, इससे हमें यही शिक्षा लेनी चाहिये कि भगवान् भक्तवाञ्छा-कल्पतरु हैं। उनसे हम जो भी चाहेंगे, वही हमें प्राप्त होगा। त्रिवक्राने मोक्षदाता एवं प्रेमदाता भगवान्से केवल भोग माँगा और श्रीनारायण भट्टतिरीके कथनानुसार पुत्र माँगा, अतः उनसे उसे वही मिला। इसीलिये महात्मा शुकदेवजीने उसके लिये 'दुर्भगा' (दुर्भाग्यवती) शब्दका प्रयोग किया है (देखिये श्रीमद्भागवत १०। ४८। ८)। किंतु भगवान् ऐसे दयालु हैं कि अपनेसे भोग अथवा कामपीड़ा-निवृत्ति माँगनेवाले अर्थार्थी अथवा आर्त भक्तको भी 'उदार' कहते हैं—'उदाराः सर्व एवैते' (भगवद्गीता ७। १८)। भगवान् उसे उदार इसीलिये कहते हैं कि वह याचना करता है सर्वसमर्थ प्रभुसे ही, अन्य किसीसे नहीं। और यही कारण है कि भगवान् उसकी कामना-पूर्ति करके उसकी कामनाका नाश कर देते हैं और अन्तमें उसे अपनी प्राप्ति भी करा देते हैं—'मद्भक्ता यान्ति मामपि' (गीता ७। २३)।

तदनन्तर आप बलरामजी और उद्धवजीके साथ अक्रूरके घर पधारे। वहाँ आनन्दविभोर हुए अक्रूरने आपकी बहुत अर्चा-पूजा तथा स्तुति की। तब आपने अक्रूरको हस्तिनापुर भेजकर वनसे लौटे हुए पाण्डुपुत्रोंके वृत्तान्त तथा धृतराष्ट्रकी चेष्टाकी जानकारी प्राप्त की॥ ५॥

विघाताज्जामातुः परमसुहृदो भोजनृपते-
र्जरासंधे रुन्धत्यनवधिरुषान्धेऽथ मथुराम्।
रथाद्यैर्द्योर्लब्धैः कतिपयबलस्त्वं बलयुत-
स्त्रयोविंशत्यक्षौहिणि तदुपनीतं समहृथाः॥ ६॥

इधर अपने परम सुहृद् एवं जामाता भोजराज कंसके वधका वृत्तान्त सुनकर जरासंधके क्रोधकी सीमा न रही। वह उस रोषसे अंधा हो उठा। फिर तो उसने सेनाके साथ आकर मथुरापुरीको घेर लिया। तब बलरामजीसहित आपने स्वर्गलोकसे आये हुए रथ आदि उपकरणोंको लेकर कुछ ही सेनाके साथ नगरीसे बाहर निकलकर जरासंधद्वारा लायी हुई तेईस अक्षौहिणी सेनाका संहार कर डाला॥ ६॥

बद्धं बलादथ बलेन बलोत्तरं त्वं
भूयो बलोद्यमरसेन मुमोचिथैनम्।
निश्शेषदिग्जयसमाहृतविश्वसैन्यात्
कोऽन्यस्ततो हि बलपौरुषवांस्तदानीम्॥ ७॥

फिर बलरामजीने बलमें बढ़े-चढ़े जरासंधको बलपूर्वक बंदी बना लिया। तब आपने उस जरासंधको 'यह पुनः बड़ी सेना लेकर आयेगा'—इस कुतूहलके कारण मुक्त कर दिया। क्योंकि उस समय जिसने सम्पूर्ण दिशाओंकी विजयके अवसरपर समस्त विश्वकी सेनाको इकट्ठी कर लिया था, उस जरासंधसे बढ़कर बल-पौरुषवान् वीर नरेश दूसरा कौन था?॥ ७॥

भग्नः स लग्नहृदयोऽपि नृपैः प्रणुन्नो
युद्धे त्वया व्यधित षोडशकृत्व एवम्।
अक्षौहिणीः शिव शिवास्य जघन्थ विष्णो
सम्भूय सैकनवतित्रिशतं तदानीम्॥ ८॥

विष्णो! इस प्रकार पराजित जरासंधने राजाओंद्वारा प्रेरित किये जानेपर पुनः युद्धके लिये उद्यत हो सोलह बार और आपके साथ लड़ाई छेड़ी; परंतु शिव! शिव! आपने उस समय उसे प्रत्येक युद्धमें परास्त करके उसकी तीन सौ इक्यानबे अक्षौहिणी सेनाओंको मौतके घाट उतार दिया (इस प्रकार वह [१+१६=१७] सत्रह बार पराजित हुआ) ॥ ८ ॥

अष्टादशेऽस्य समरे समुपेयुषि त्वं
दृष्ट्वा पुरोऽथ यवनं यवनत्रिकोट्या।
त्वष्ट्रा विधाप्य पुरमाशु पयोधिमध्ये
तत्राथ योगबलतः स्वजनाननैषीः ॥ ९ ॥

जरासंध जब अठारहवीं बार संग्रामके लिये आ ही रहा था, तबतक आपने तीन करोड़ यवनोंकी सेनाके साथ आये हुए कालयवनको सामने उपस्थित देखा। तब आपने शीघ्र ही समुद्रके मध्यमें विश्वकर्माद्वारा द्वारका नामकी नगरीका निर्माण कराके अपने योगबलसे स्वजनोंको वहाँ पहुँचा दिया ॥ ९ ॥

पद्भ्यां त्वं पद्ममाली चकित इव पुरान्निर्गतो धावमानो
म्लेच्छेशेनानुयातो वधसुकृतविहीनेन शैले न्यलैषीः।
सुप्तेनाङ्घ्र्याहतेन द्रुतमथ मुचुकुन्देन भस्मीकृतेऽस्मिन्
भूपायास्मै गुहान्ते सुललितवपुषा तस्थिषे भक्तिभाजे ॥ १० ॥

तत्पश्चात् पद्ममालाधारी आप चकितका-सा नाट्य करके नगरसे निकलकर पैदल ही भागने लगे। उस समय जिसके भाग्यमें आपके द्वारा किये गये वधका पुण्य नहीं लिखा था, उस म्लेच्छराज कालयवनने आपका पीछा किया। तब आप एक पर्वतकी गुफामें जा छिपे। वहाँ महाराज मुचुकुन्द सो रहे थे। कालयवनने आपके धोखेमें उनपर चरण-प्रहार किया। तब जगे हुए मुचुकुन्दने उस म्लेच्छको तत्काल भस्म कर दिया। तत्पश्चात् आप उस गुफाके भीतर परम मनोहर रूप धारण करके उन भक्तिमान् नरेश मुचुकुन्दके सामने खड़े हो गये ॥ १० ॥

ऐक्ष्वाकोऽहं विरक्तोऽस्म्यखिलनृपसुखे त्वत्प्रसादैककाङ्क्षी
हा देवेति स्तुवन्तं वरविततिषु तं निःस्पृहं वीक्ष्य हृष्यन्।
मुक्तेस्तुल्यां च भक्तिं धुतसकलमलां मोक्षमप्याशु दत्त्वा
कार्यं हिंसाविशुद्ध्यै तप इति च तदा प्रात्थ लोकप्रतीत्यै॥ ११॥

मुचुकुन्दने कहा—'हा देव! मैं महाराज इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न (राजा मान्धाताका पुत्र) हूँ, इस समय समस्त राज्यभोगोंसे मुझे वैराग्य हो गया है, मैं एकमात्र आपकी कृपाकी ही अभिलाषा रखता हूँ।' इस प्रकार स्तवन करते हुए राजाको वर माँगनेमें निःस्पृह देखकर आप प्रसन्न हो गये। तब आपने मुचुकुन्दको शीघ्र ही सकल पापोंको नष्ट करनेवाली मुक्ति-सरीखी भक्ति तथा मोक्ष भी प्रदान किया और लोक-प्रतीतिके लिये 'क्षात्रधर्माश्रित हिंसाके विशोधनार्थ तपस्या कीजिये'—यों आदेश भी दिया॥ ११॥

तदनु मथुरां गत्वा हत्वा चमूं यवनाहृतां
मगधपतिना मार्गे सैन्यैः पुरेव निवारितः।
चरमविजयं दर्पायास्मै प्रदाय पलायितो
जलधिनगरीं यातो वातालयेश्वर पाहि माम्॥ १२॥

तदनन्तर मथुराको लौटकर कालयवनद्वारा लायी हुई सेनाका संहार करके आप द्वारकाको प्रस्थित हुए। तब मार्गमें मगधराज जरासंधने पहलेकी भाँति अपनी सेनाओंद्वारा आपको रोक दिया। उस समय आप उसका गर्व बढ़ानेके लिये उसे अन्तिम (अठारहवीं बार) विजय प्रदान करके भाग खड़े हुए और अलक्षित रूपसे ही समुद्रमें बसी हुई द्वारकापुरीको चले गये। वातालयेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये॥ १२॥

॥ इति उपश्लोकोत्पत्तिवर्णनं जरासंधादियुद्धवर्णनं मुचुकुन्दानुग्रहवर्णनं च सप्तसप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

अष्टसप्ततितमदशकम्

बलरामजीका विवाह तथा श्रीकृष्णका विप्रद्वारा संदेश पाकर रुक्मिणी-स्वयंवरमें कुण्डिनपुर जाना

त्रिदशवर्धकिवर्धितकौशलं त्रिदशदत्तसमस्तविभूतिमत्।
जलधिमध्यगतं त्वमभूषयो नवपुरं वपुरञ्चितरोचिषा॥ १॥

जिसके निर्माणमें विश्वकर्माद्वारा अपना सारा कला-कौशल बढ़ा-चढ़ाकर लगा दिया गया था, जिसे लोकपालोंने समस्त विभूतियाँ प्रदान कर रखी थीं तथा जो समुद्रके मध्यमें विराजमान थी, उस नवीनपुरी द्वारकाको आप अपनी प्रशस्त देहकान्तिसे सुशोभित करने लगे॥ १॥

ददुषि रेवतभूभृति रेवतीं हलभृते तनयां विधिशासनात्।
महितमुत्सवघोषमपूपुषः समुदितैर्मुदितैः सह यादवैः॥ २॥

भूपाल रेवतने ब्रह्माजीकी आज्ञासे अपनी कन्या रेवती बलरामजीको दे दी थी। तब आपने हर्षपूर्वक एकत्रित हुए यादवोंके साथ उस महान् विवाहोत्सवको सम्पन्न किया॥ २॥

अथ विदर्भसुतां खलु रुक्मिणीं प्रणयिनीं त्वयि देव सहोदरः।
स्वयमदित्सत चेदिमहीभुजे स्वतमसा तमसाधुमुपाश्रयन्॥ ३॥

देव! तदनन्तर विदर्भराजकी कन्या रुक्मिणीको, जो आपमें अनुराग रखनेवाली थी, अकेला उसका सहोदर भाई रुक्मी चेदिराज शिशुपालको देना चाहता था; क्योंकि अपने अज्ञानके कारण वह असाधु चेदिराजका ही आश्रय ले रहा था॥ ३॥

चिरधृतप्रणया त्वयि बालिका सपदि काङ्क्षितभङ्गसमाकुला।
तव निवेदयितुं द्विजमादिशत् स्वकदनं कदनङ्गविनिर्मितम्॥ ४॥

बहुत दिनोंसे आपमें अनुराग रखनेवाली बालिका रुक्मिणी सहसा अपना मनोरथ भङ्ग होते देखकर व्याकुल हो उठी। तब उसने कुटिल काम (मिलनेकी अभिलाषा)-द्वारा सृष्ट अपनी व्याकुलताको आपसे निवेदन करनेके लिये एक ब्राह्मणको आपके पास भेजा॥ ४॥

द्विजसुतोऽपि च तूर्णमुपाययौ तव पुरं हि दुराशदुरासदम्।
मुदमवाप च सादरपूजितः स भवता भवतापहृता स्वयम्॥ ५॥

तब वे ब्राह्मणकुमार भी आपके उस नगरमें, जिसमें दुर्जनोंका प्रवेश पाना कठिन है, शीघ्र ही जा पहुँचे। वहाँ भवतापको हरण करनेवाले स्वयं आपद्वारा सादर पूजित होनेसे उन्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ॥ ५॥

स च भवन्तमवोचत कुण्डिने नृपसुता खलु राजति रुक्मिणी।
त्वयि समुत्सुकया निजधीरतारहितया हि तया प्रहितोऽस्म्यहम्॥ ६ ॥

तत्पश्चात् वे आपसे कहने लगे—'भगवन्! कुण्डिननगरमें राजकुमारी रुक्मिणी शोभा पा रही है, वह आपके लिये ही उत्कण्ठित रहनेवाली है; परंतु (उसके मनोरथमें विघ्न पड़नेके कारण) वह अधीर हो उठी है। इसी कारण उसने मुझे आपके पास भेजा है'॥ ६॥

तव हृतास्मि पुरैव गुणैरहं हरति मां किल चेदिनृपोऽधुना।
अयि कृपालय पालय मामिति प्रजगदे जगदेकपते तया॥ ७ ॥

'जगत्के एकमात्र अधीश्वर! उसने यों कहा है—'हे करुणावरुणालय! मैं आपके गुणोंद्वारा पहले ही हर ली गयी हूँ; परंतु इस समय चेदिराज शिशुपाल मेरा हरण करना चाहता है। अतः आप मेरी रक्षा कीजिये'॥ ७॥

अशरणां यदि मां त्वमुपेक्षसे सपदि जीवितमेव जहाम्यहम्।
इति गिरा सुतनोरतनोद् भृशं सुहृदयं हृदयं तव कातरम्॥ ८ ॥

'यदि आप मुझ असहायाकी उपेक्षा कर देंगे तो मैं तुरंत ही प्राण त्याग दूँगी।' इस प्रकार सुन्दरी रुक्मिणीके वचनोंद्वारा इस सुहृद् ब्राह्मणने आपके हृदयको अतिशय स्नेहकातर बना दिया॥ ८॥

अकथयस्त्वमथैनमये सखे तदधिका मम मन्मथवेदना।
नृपसमक्षमुपेत्य हराम्यहं तदयि तां दयितामसितेक्षणाम्॥ ९ ॥

तब आप इन ब्राह्मणसे बोले—'अये सखे! मेरी अभिलाषा उससे भी अधिक है। इसलिये अयि विप्रवर! मैं वहाँ आकर राजाओंके देखते-देखते उस कजरारे नेत्रोंवाली प्रियतमा रुक्मिणीको हर लाऊँगा'॥ ९॥

प्रमुदितेन च तेन समं तदा रथगतो लघु कुण्डिनमेयिवान्।
गुरुमरुत्पुरनायक मे भवान् वितनुतां तनुतामखिलापदाम्॥ १०॥

तत्पश्चात् आनन्दमग्न हुए उस ब्राह्मणके साथ रथपर सवार होकर आप तुरंत ही कुण्डिनपुरको चल दिये। गुरुमरुत्पुरनायक! आप मेरी सारी आपत्तियोंको क्षीण कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति रुक्मिणीस्वयंवरम् अष्टसप्ततितमदशकं समाप्तम्॥

एकोनाशीतितमदशकम्

रुक्मिणीका हरण तथा परिणय

बलसमेतबलानुगतो भवान् पुरमगाहत भीष्मकमानितः।
द्विजसुतं त्वदुपागमवादिनं धृतरसा तरसा प्रणनाम सा॥ १॥

तदनन्तर कलहकी आशङ्कासे बलरामजी भी सेनाके साथ आपके पीछे गये। वहाँ पहुँचनेपर महाराज भीष्मकद्वारा सम्मानित होकर आपने नगरमें प्रवेश किया। तब आपके आगमनकी सूचना देनेवाले वे ब्राह्मणकुमार रुक्मिणीके पास गये। हर्षित हुई रुक्मिणीने बड़े वेगसे धरतीपर माथा टेककर उन्हें प्रणाम किया॥ १॥

भुवनकान्तमवेक्ष्य भवद्वपुर्नृपसुतस्य निशम्य च चेष्टितम्।
विपुलखेदजुषां पुरवासिनां सरुदितैरुदितैरगमन्निशा॥ २॥

एक ओर आपके त्रिभुवनकमनीय रूपको देखकर और दूसरी ओर राजकुमार रुक्मीकी कुचेष्टा सुनकर पुरवासियोंको महान् खेद हुआ, जिससे उनकी वह रात्रि रोदनपूर्वक वार्तालाप करते ही व्यतीत हुई॥ २॥

तदनु वन्दितुमिन्दुमुखी शिवां विहितमङ्गलभूषणभासुरा।
निरगमद्भवदर्पितजीविता स्वपुरतः पुरतः सुभटावृता॥ ३॥

तत्पश्चात् जिसने अपना जीवन आपको ही अर्पित कर रखा था, वह चन्द्रवदनी रुक्मिणी माङ्गलिक आभूषणोंसे विभूषित हो पार्वती-

वन्दनाके निमित्त अपने नगरसे बाहर निकली। उस समय बहुतेरे सुभट उसके आगे-आगे तथा उसे घेरकर चल रहे थे॥ ३॥

कुलवधूभिरुपेत्य कुमारिका गिरिसुतां परिपूज्य च सादरम्।
मुहुरयाचत तत्पदपङ्कजे निपतिता पतितां तव केवलम्॥ ४॥

उस कुमारीने कुलाङ्गनाओंके साथ पार्वतीजीके निकट जाकर आदरपूर्वक उनकी पूजा की और भवानीके चरणकमलोंपर गिरकर बारंबार एकमात्र यही याचना की कि श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों॥ ४॥

समवलोक्य कुतूहलसंकुले नृपकुले निभृतं त्वयि च स्थिते।
नृपसुता निरगाद् गिरिजालयात् सुरुचिरं रुचिरञ्जितदिङ्मुखा॥ ५॥

रुक्मिणीको देखकर सारा राजसमाज कौतूहलपूर्ण हो रहा था, परंतु आप चुपचाप एकान्तमें खड़े थे। तबतक अपनी कान्तिसे दिशाओंको अनुरञ्जित करती हुई राजकुमारी रुक्मिणी मनोहर चालसे गिरिजा-मन्दिरसे बाहर निकली॥ ५॥

भुवनमोहनरूपरुचा तदा विवशिताखिलराजकदम्बया।
त्वमपि देव कटाक्षविमोक्षणैः प्रमदया मदयाञ्चकृषे मनाक्॥ ६॥

देव! उस समय जिसने अपने भुवनमोहन रूपकी सुन्दरतासे सम्पूर्ण राजसमूहोंको परवश कर दिया था, उस सुन्दरी रुक्मिणीने अपने कटाक्षोंद्वारा आपको भी थोड़ा मतवाला-सा बना दिया॥ ६॥

क्व नु गमिष्यसि चन्द्रमुखीति तां सरसमेत्य करेण हरन् क्षणात्।
समधिरोप्य रथं त्वमपाहृथा भुवि ततो विततो निनदो द्विषाम्॥ ७॥

उसी क्षण हरण करनेकी इच्छासे स्नेहपूर्वक रुक्मिणीके निकट जाकर 'चन्द्रमुखी! कहाँ जाओगी?'—यों कहते हुए आपने उसे हाथसे पकड़कर अपने रथपर बैठा लिया और फिर वहाँसे चलते बने। यह देखकर वहाँ शत्रु राजाओंका महान् कोलाहल होने लगा॥ ७॥

क्व नु गतः पशुपाल इति क्रुधा कृतरणा यदुभिश्च जिता नृपाः।
न तु भवानुदचाल्यत तैरहो पिशुनकैः शुनकैरिव केसरी॥ ८॥

तब कुछ नरेश क्रोधपूर्वक 'अरे! वह ग्वाला कहाँ भाग गया?'—

यों कहते हुए युद्धमें तत्पर हो गये, परंतु यादवोंने समरभूमिमें उन्हें पराजित कर दिया। अहो! उन चुगलखोरोंद्वारा आप किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं किये जा सके, जैसे कुत्ते सिंहका कुछ नहीं बिगाड़ सकते॥ ८॥

तदनु रुक्मिणमागतमाहवे वधमुपेक्ष्य निबध्य विरूपयन्।
हतमदं परिमुच्य बलोक्तिभिः पुरमया रमया सह कान्तया॥ ९॥

तत्पश्चात् रुक्मी संग्राममें आ डटा; परंतु आपने उसके वधकी उपेक्षा कर दी और उसे विरूप करके रथमें बाँध दिया। इस प्रकार उसका गर्व तो गल ही गया था, पुनः बलरामजीके कहनेसे आपने उसे बन्धनमुक्त कर दिया और स्वयं उस प्राणवल्लभा लक्ष्मीके साथ द्वारकापुरीको लौट आये॥ ९॥

नवसमागमलज्जितमानसां प्रणयकौतुकजृम्भितमन्मथाम्।
अरमयः खलु नाथ यथासुखं रहसि तां हसितांशुलसन्मुखीम्॥ १०॥

नाथ! प्रथम समागमके कारण जिसका मन लज्जित हो रहा था, प्रेमजनित कौतुकसे जिसकी कामव्यथा बढ़ गयी थी तथा मन्द मुस्कानकी किरणोंसे जिसका मुख सुशोभित हो रहा था, उस रुक्मिणीके साथ आपने एकान्तमें सुखपूर्वक रमण किया॥ १०॥

विविधनर्मभिरेवमहर्निशं प्रमदमाकलयन् पुनरेकदा।
ऋजुमतेः किल वक्रगिरा भवान् वरतनोरतनोदतिलोलताम्॥ ११॥

इस प्रकार आप रात-दिन विभिन्न प्रकारके परिहास-वचनोंद्वारा रुक्मिणीको हर्षित करने लगे। पुनः एक बार उस कोमल बुद्धिवाली सुन्दरी रुक्मिणीके मनको आपने वक्रोक्तिद्वारा अतिशय चञ्चल कर दिया॥ ११॥

तदधिकैरथ लालनकौशलैः प्रणयिनीमधिकं सुखयन्निमाम्।
अयि मुकुन्द भवच्चरितानि नः प्रगदतां गदतान्तिमपाकुरु॥ १२॥

मनुहार करनेमें तो आप निपुण हैं ही, अतः अधिक प्रेम प्रदर्शित करके प्रियतमा रुक्मिणीके साथ तरह-तरहसे विहार करने लगे। अयि

मुकुन्द! हम भी आपकी लीलाओंका गान करनेवाले हैं, अतः हमारी रोगपीड़ाको दूर कर दीजिये॥ १२॥

॥ इति रुक्मिणीस्वयंवरवर्णनम् एकोनाशीतितमदशकं समाप्तम्॥

अशीतितमदशकम्

स्यमन्तकोपाख्यान

सत्राजितस्त्वमथ लुब्धवदर्कलब्धं
दिव्यं स्यमन्तकमणिं भगवन्नयाचीः।
तत्कारणं बहुविधं मम भाति नूनं
तस्यात्मजां त्वयि रतां छलतो विवोढुम्॥ १॥

भगवन्! आपने एक लोभी व्यक्तिकी तरह सत्राजित्‌को सूर्यदेवसे प्राप्त हुई दिव्य स्यमन्तकमणिकी उनसे याचना की। निश्चय ही, इस मणि-याचनाके मुझे अनेक कारण प्रतीत हो रहे हैं। उन्हीं कारणोंमें एक कारण यह भी है कि सत्राजित्‌की कन्या सत्यभामाके साथ, जो आपमें ही निरत रहनेवाली थी, इसी मणि-याचनाके व्याजसे आप विवाह करना चाहते थे॥ १॥

अदत्तं तं तुभ्यं मणिवरमनेनाल्पमनसा
प्रसेनस्तद्भ्राता गलभुवि वहन् प्राप मृगयाम्।
अहन्नेनं सिंहो मणिमहसि मांसभ्रमवशात्
कपीन्द्रस्तं हत्वा मणिमपि च बालाय ददिवान्॥ २॥

परंतु संकीर्ण मनवाले सत्राजित्‌ने वह श्रेष्ठ मणि आपको नहीं दी। एक बार उसका छोटा भाई प्रसेन उस मणिको गलेमें धारण करके वनमें शिकार खेलनेके लिये गया। वहाँ उस मणिकी चमकमें मांसका भ्रम हो जानेके कारण एक सिंहने प्रसेनको मार डाला। (अभी वह थोड़ी ही दूर गया था कि) वानर-भालुओंके सरदार जाम्बवान्‌ने सिंहको मारकर मणि छीन ली और उसे बच्चेको खेलनेके लिये दे दिया॥ २॥

शशंसुः सत्राजिद्गिरमनु जनास्त्वां मणिहरं
जनानां पीयूषं भवति गुणिनां दोषकणिका।
ततः सर्वज्ञोऽपि स्वजनसहितो मार्गणपरः
प्रसेनं तं दृष्ट्वा हरिमपि गतोऽभूः कपिगुहाम्॥ ३॥

इधर सत्राजित्की (कृष्णने मेरे भाईको मारकर मणि छीन ली है—यह) वाणी सुनकर लोग आपको ही मणिहर बतलाने लगे। गुणवानोंका लेशमात्र भी दोष लोगोंके लिये अमृत-सरीखा आस्वादनीय होता है। तत्पश्चात् आप सब कुछ जानते हुए भी कुछ स्वजनोंको साथ लेकर मणिकी खोजमें निकल पड़े। वनमें जाकर प्रसेन और उस सिंहको भी मरा हुआ देखकर आप कपि (ऋक्षराज)-की गुफामें गये॥ ३॥

भवन्तमवितर्कयन्नतिवयाः स्वयं जाम्बवान्
मुकुन्दशरणं हि मां क इह रोद्धुमित्यालपन्।
विभो रघुपते हरे जय जयेत्यलं मुष्टिभि-
श्चिरं तव समर्चनं व्यधित भक्तचूडामणिः॥ ४॥

जाम्बवान् अत्यन्त वृद्ध हो चले थे, स्वयं उन्होंने आपको पहचाना नहीं। तब 'मुकुन्दके शरणागत मुझको रोकनेके लिये कौन समर्थ हो सकता है? विभो! रघुपते! हरे! आपकी जय हो, जय हो।'—यों बारंबार कहते हुए उन भक्तचूड़ामणिने मुक्कोंद्वारा आपकी पूजा सम्पन्न की॥ ४॥

बुद्ध्वाथ तेन दत्तां नवरमणीं वरमणिं च परिगृह्णन्।
अनुगृह्णन्नमुमागाः सपदि च सत्राजिते मणिं प्रादाः॥ ५॥

तदनन्तर आपको पहचानकर उन्होंने अपनी कुमारी कन्या जाम्बवती और वह श्रेष्ठ मणि आपको प्रदान कर दी। उसे ग्रहण करके आप भक्तराज जाम्बवान्पर अनुग्रह करनेके पश्चात् द्वारका लौट आये और तुरंत ही वह मणि सत्राजित्को समर्पित कर दी॥ ५॥

तदनु स खलु व्रीडालोलो विलोलविलोचनां
दुहितरमहो धीमान् भामां गिरैव परार्पिताम्।

अदित मणिना तुभ्यं लभ्यं समेत्य भवानपि
प्रमुदितमनास्तस्यैवादान्मणिं गहनाशयः॥ ६॥

यह देखकर सत्राजित् लज्जासे आकुल हो गया। वह बुद्धिमान् तो था ही, उसने अपनी चञ्चल नेत्रोंवाली कन्या सत्यभामा, जिसका वाग्दान शतधन्वाके लिये हो चुका था, उस मणिके साथ आपको दे दी। परंतु आपने उस मणिसे प्राप्त होनेवाले सुवर्णको ही स्वीकार करके प्रसन्न-मनसे वह मणि सत्राजित्को ही लौटा दी, ऐसा करनेमें आपका गम्भीर अभिप्राय था॥ ६॥

व्रीडाकुलां रमयति त्वयि सत्यभामां
कौन्तेयदाहकथयाथ कुरून् प्रयाते।
ही गान्दिनेयकृतवर्मगिरा निपात्य
सत्राजितं शतधनुर्मणिमाजहार॥ ७॥

तदनन्तर जब आप उस लज्जाशीला सत्यभामाके साथ सानन्द रहने लगे, फिर लोगोंके मुखसे कुन्तीपुत्रोंके लाक्षागृहमें जला दिये जानेका वृत्तान्त सुनकर आप कौरवोंकी राजधानी हस्तिनापुर चले गये, तब अक्रूर और कृतवर्माके कहनेसे शतधन्वाने सत्राजित्का वध करके वह मणि छीन ली। यह बड़े कष्टकी बात हुई॥ ७॥

शोकात् कुरूनुपगतामवलोक्य कान्तां
हत्वा द्रुतं शतधनुं समहर्षयस्ताम्।
रत्ने सशङ्क इव मैथिलगेहमेत्य
रामो गदां समशिशिक्षत धार्तराष्ट्रम्॥ ८ ॥

तब पितृ-वधसे शोकाविष्ट हो सत्यभामा हस्तिनापुर गयी। वहाँ अपनी प्रियतमाको आयी हुई देखकर आप तुरंत ही चल पड़े और शतधन्वाको मारकर उसका हर्ष बढ़ाया। परंतु मणिके विषयमें आपपर संदेह-सा करके बलरामजी द्वारका न लौटकर मिथिलानरेशके घर चले गये। वहीं उन्होंने दुर्योधनको गदा-युद्धकी शिक्षा दी॥ ८॥

अक्रूर एष भगवन् भवदिच्छयैव
सत्राजितः कुचरितस्य युयोज हिंसाम्।

अक्रूरतो मणिमनाहृतवान् पुनस्त्वं
तस्यैव भूतिमुपधातुमिति ब्रुवन्ति॥ ९ ॥

भगवन्! आपकी इच्छासे ही इन अक्रूरने दुराचारी सत्राजित्का वध कराया था। आपने अक्रूरसे वह मणि नहीं ली। यह कार्य आपने अक्रूरके ऐश्वर्यको बढ़ानेके लिये ही किया था—ऐसा लोग कहते हैं॥ ९॥

भक्तस्त्वयि स्थिरतरः स हि गान्दिनेय-
स्तस्यैव कापथमतिः कथमीश जाता।
विज्ञानवान् प्रशमवानहमित्युदीर्णं
गर्वं ध्रुवं शमयितुं भवता कृतैव॥ १०॥

ईश! वे अक्रूर तो आपके दृढ़तर अनन्य भक्त थे, फिर उनको हिंसादि कुमार्गमें लगानेवाली बुद्धि कैसे उत्पन्न हो गयी? निश्चय ही, ऐसा प्रतीत होता है कि उनके मनमें 'मैं महान् विज्ञानी तथा प्रशान्त हूँ'—ऐसा गर्व उत्पन्न हो गया था, उसीका शमन करनेके हेतु आपने ही उनकी बुद्धिको प्रेरित कर दिया था॥ १०॥

यातं भयेन कृतवर्मयुतं पुनस्त-
माहूय तद्विनिहितं च मणिं प्रकाश्य।
तत्रैव सुव्रतधरे विनिधाय तुष्यन्
भामाकुचान्तरशयः पवनेश पायाः॥ ११॥

आपके भयसे अक्रूर कृतवर्माके साथ विदेश चले गये थे। तब आपने उन्हें पुनः बुलवाया और शतधन्वाद्वारा उनके पास रखी हुई मणिको लेकर सबके सामने प्रकट कर दिया। पुनः उस मणिको उन उत्तम व्रतधारी अक्रूरके पास ही रखकर आप संतुष्ट हो गये। सत्यभामाके वक्षःस्थलपर शयन करनेवाले पवनेश! मेरी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति स्यमन्तकोपाख्यानम् अशीतितमदशकं समाप्तम्॥

एकाशीतितमदशकम्

सुभद्रा-हरण, श्रीकृष्णके अन्य विवाहोंकी कथा और नरकासुरका उद्धार

स्निग्धां मुग्धां सततमपि तां लालयन् सत्यभामां
यातो भूयः सह खलु तया याज्ञसेनीविवाहम्।
पार्थप्रीत्यै पुनरपि मनागास्थितो हस्तिपुर्यां
शक्रप्रस्थं पुरमपि विभो संविधायागतोऽभूः॥ १॥

विभो! इस प्रकार आप उस प्रणयिनी तथा मनोमोहिनी सुन्दरी सत्यभामाको सदा लाड़ लड़ाते रहे। फिर उसके साथ ही आप द्रौपदीके विवाहमें गये और वहाँ अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिये कुछ दिनोंतक हस्तिनापुरमें ही ठहर गये। तत्पश्चात् पाण्डवोंके लिये (विश्वकर्माद्वारा) इन्द्रप्रस्थ नामकी नगरीका निर्माण कराकर द्वारका लौट आये॥ १॥

भद्रां भद्रां भवदवरजां कौरवेणार्थ्यमानां
त्वद्वाचा तामहृत कुहनामस्करी शक्रसूनुः।
तत्र क्रुद्धं बलमनुनयन् प्रत्यगास्तेन सार्धं
शक्रप्रस्थं प्रियसखमुदे सत्यभामासहायः॥ २॥

तदनन्तर आपकी छोटी बहिन कल्याणमयी सुभद्राको, जिसके लिये दुर्योधन भी याचना कर रहा था, आपकी ही आज्ञासे इन्द्र-पुत्र अर्जुनने, जो संन्यासीके छद्म-वेषमें रहते थे, हर लिया। यह देखकर बलरामजी कुपित हो उठे, परंतु आपने उन्हें अनुनय-विनय करके समझा लिया। पुनः अपने प्रिय सखा अर्जुनके प्रीतिसम्पादनार्थ उन्हींके साथ सत्यभामासहित आप इन्द्रप्रस्थको गये॥ २॥

तत्र क्रीडन्नपि च यमुनाकूलदृष्टां गृहीत्वा
तां कालिन्दीं नगरमगमः खाण्डवप्रीणिताग्निः।
भ्रातृत्रस्तां प्रणयविवशां देव पैतृष्वसेयीं
राज्ञां मध्ये सपदि जहृषे मित्रविन्दामवन्तीम्॥ ३॥

देव! वहाँ क्रीडा करते हुए आपको एक बार यमुना-तटपर सूर्यनन्दिनी कालिन्दी दीख पड़ी। उसे ग्रहण करके आप नगरको लौट आये। उसी समय आपने खाण्डव-दाहद्वारा अग्निको संतुष्ट किया। पुनः आप अपनी फूआकी पुत्री अवन्ति-राजकुमारी मित्रविन्दाको, जो आपमें ही अनुराग रखनेवाली थी परंतु अपने विन्द-अनुविन्द नामक भाइयोंसे संत्रस्त थी, राजाओंके देखते-देखते तुरंत स्वयंवरसे हर लाये॥ ३॥

सत्यां गत्वा पुनरुदवहो नग्नजिन्नन्दनां तां
बद्ध्वा सप्तापि च वृषवरान् सप्तमूर्तिर्निमेषात्।
भद्रां नाम प्रददुरथ ते देव संतर्दनाद्या-
स्तत्सोदर्यां वरद भवतः सापि पैतृष्वसेयी॥ ४॥

पुनः महाराज नग्नजित्की राजधानीमें जाकर अपनेको सात रूपोंमें प्रकट करके निमेषमात्रमें ही आपने सात श्रेष्ठ बैलोंको बाँध दिया, जिसके फलस्वरूप नग्नजित्-नन्दिनी सत्याका पाणिग्रहण किया। देव! पुनः संतर्दन आदि भाइयोंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी सहोदरा बहिन भद्रा आपको समर्पित कर दी। वरद! वह भी आपकी फूआ श्रुतकीर्तिकी ही पुत्री थी॥ ४॥

पार्थाद्यैरप्यकृतलवनं तोयमात्राभिलक्ष्यं
लक्षं छित्त्वा शफरमवृथा लक्ष्मणां मद्रकन्याम्।
अष्टावेवं तव समभवन् वल्लभास्तत्र मध्ये
शुश्रोथ त्वं सुरपतिगिरा भौमदुश्चेष्टितानि॥ ५॥

तत्पश्चात् पार्थ (दुर्योधन, जरासंध) आदि भी जिसका भेदन नहीं कर सके थे तथा जो जलमें प्रतिबिम्ब-रूपसे अभिलक्षित हो रहा था, उस मत्स्यरूप लक्ष्यका भेदन करके आपने मद्र-राजकुमारी लक्ष्मणाका वरण किया। इस प्रकार आपकी आठ पटरानियाँ हुईं। इसी बीच आपने इन्द्रके मुखसे भौमासुरकी दुश्चेष्टाएँ सुनीं॥ ५॥

स्मृतायातं पक्षिप्रवरमधिरूढस्त्वमगमो
वहन्नङ्के भामामुपवनमिवारातिनगरम्।

विभिन्दन् दुर्गाणि त्रुटितपृतनाशोणितरसैः
पुरं तावत् प्राग्ज्योतिषमकुरुथाः शोणितपुरम्॥ ६॥

तब स्मरण करते ही उपस्थित हुए पक्षिराज गरुडपर आरूढ हो आप भौमासुरके नगरको गये, जो एक उपवनकी भाँति सुशोभित हो रहा था। उस समय सत्यभामा भी आपके अङ्कमें विराजमान थी। वहाँ पहुँचकर आपने उसके सभी दुर्गोंको तोड़ डाला और शस्त्रोंद्वारा कटी हुई सेनाओंके रुधिरकी धारासे अनुरञ्जित उस प्राग्ज्योतिषपुरको शोणितपुर बना दिया॥ ६॥

मुरस्त्वां पञ्चास्यो जलधिवनमध्यादुदपतत्
स चक्रे चक्रेण प्रदलितशिरा मङ्क्षु भवता।
चतुर्दन्तैर्दन्तावलपतिभिरिन्धानसमरं
रथाङ्गेन च्छित्त्वा नरकमकरोस्तीर्णनरकम्॥ ७॥

तदनन्तर पाँच मुखोंवाले दैत्यराज मुरने समुद्रके जलसे निकलकर आपपर आक्रमण किया, तब आपने युद्धस्थलमें चक्रद्वारा अनायास ही उसका सिर धड़से अलग कर दिया। तत्पश्चात् चार दाँतोंवाले गजराजोंकी सेना लेकर नरकासुर समरभूमिमें आ धमका। उस घोर संग्राममें आपने चक्रसे नरकासुरका सिर काट करके उसका नरक-लोकसे उद्धार कर दिया॥ ७॥

स्तुतो भूम्या राज्यं सपदि भगदत्तेऽस्य तनये
गजं चैकं दत्त्वा प्रजिघयिथ नागान्निजपुरीम्।
खलेनाबद्धानां स्वगतमनसां षोडश पुनः
सहस्त्राणि स्त्रीणामपि च धनराशिं च विपुलम्॥ ८ ॥

तब भूमि देवीने आकर आपकी स्तुति-प्रार्थना की, उससे प्रसन्न होकर आपने शीघ्र ही भौमासुरके पुत्र भगदत्तको एक गजराज तथा उसका राज्य देकर शेष सभी चतुर्दन्त गजराजोंको, विपुल धन-राशिको तथा दुष्ट भौमासुरद्वारा कैदमें डाली हुई अपने (श्रीकृष्ण)-में ही अनुरक्त रहनेवाली सोलह हजार स्त्रियोंको भी आपने निजपुरी द्वारकाको भेज दिया॥ ८॥

भौमापाहृतकुण्डलं तददितेर्दातुं प्रयातो दिवं
शक्राद्यैर्महितः समं दयितया द्युस्त्रीषु दत्तह्रिया।
हृत्वा कल्पतरुं रुषाभिपतितं जित्वेन्द्रमभ्यागम-
स्तत्तु श्रीमददोष ईदृश इति व्याख्यातुमेवाकृथाः॥ ९ ॥

तत्पश्चात् भौमासुरद्वारा अपहरण किये हुए कुण्डलोंको देवमाता अदितिको देनेके लिये आप स्वर्गमें गये। वहाँ अपने सौन्दर्यसे जिसने देवाङ्गनाओंको लज्जित कर दिया था, उस प्रियतमा सत्यभामासहित आपका इन्द्र आदि देवताओंने विशेष आदर-सत्कार किया। चलते समय [सत्यभामाके कहनेसे] आप वहाँके कल्पवृक्षको अपने साथ ले जाने लगे। तब इन्द्रने क्रुद्ध होकर आपपर आक्रमण किया, परंतु आप इन्द्रको पराजित करके सकुशल द्वारका लौट आये। वह इन्द्रविजयरूप कार्य 'श्रीमदका दोष ऐसा ही होता है'—यह प्रकट करनेके लिये ही आपने किया था॥ ९॥

कल्पद्रुं सत्यभामाभवनभुवि सृजन् द्व्यष्टसाहस्त्रयोषाः
स्वीकृत्य प्रत्यगारं विहितबहुवपुर्लालयन् केलिभेदैः।
आश्चर्यान्नारदालोकितविविधगतिस्तत्र तत्रापि गेहे
भूयः सर्वासु कुर्वन् दश दश तनयान् पाहि वातालयेश॥१०॥

यहाँ उस कल्पतरुको आपने सत्यभामाके गृहोद्यानमें स्थापित कर दिया और उन सोलह सहस्र नारियोंका एक साथ पाणिग्रहण किया। तत्पश्चात् आप अनेकों रूप धारण करके प्रत्येकके महलमें जाकर विभिन्न प्रकारकी रस-क्रीडाओंद्वारा उन्हें आनन्दित करने लगे। यह सुनकर नारदजीको महान् आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने प्रत्येकके महलमें जाकर आपकी उस विविध गतिका अवलोकन किया। तत्पश्चात् उन सभी पत्नियोंमें प्रत्येकसे आपने दस-दस पुत्र उत्पन्न किये। वातालयेश! मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति सुभद्राहरणं कालिन्द्यादिविवाहवर्णनं नरकासुरवधवर्णनं च एकाशीतितमदशकं समाप्तम्॥

द्व्यशीतितमदशकम्

उषा-परिणय, बाणासुर-युद्ध और नृगके शापमोक्षका वर्णन

प्रद्युम्नो रौक्मिणेयः स खलु तव कला शम्बरेणाहृतस्तं
हत्वा रत्या सहाप्तो निजपुरमहरद् रुक्मिकन्यां च धन्याम्।
तत्पुत्रोऽथानिरुद्धो गुणनिधिरवहद्रोचनां रुक्मिपौत्रीं
तत्रोद्वाहे गतस्त्वं न्यवधि मुसलिना रुक्म्यपि द्यूतवैरात्॥ १॥

रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्नको, जो आपके ही अंश थे, शम्बरासुर हर ले गया। कुछ दिनोंके बाद प्रद्युम्न शम्बरासुरका वध करके अपनी रति नाम्नी भार्याके साथ द्वारकाको लौट आये। पुनः उन्होंने रुक्मीकी सुन्दरी कन्याका अपहरण किया। प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्ध हुए, जो गुणोंके खजाने ही थे। उन्होंने रुक्मीकी पौत्री रोचनाके साथ विवाह किया। अनिरुद्धके विवाहमें आप वहाँ गये थे, उसी समय जुआ खेलते समय वैर हो जानेके कारण बलरामजीने रुक्मीको मार डाला। ('**अपि**' पदसे कलिङ्गराजके दाँतोंको भी उखाड़ लिया—यह भी द्योतित होता है)॥ १॥

बाणस्य सा बलिसुतस्य सहस्रबाहो-
र्माहेश्वरस्य महिता दुहिता किलोषा।
त्वत्पौत्रमेनमनिरुद्धमदृष्टपूर्वं
स्वप्नेऽनुभूय भगवन् विरहातुराभूत्॥ २॥

भगवन्! बलिका पुत्र बाणासुर था, उसके हजार भुजाएँ थीं और वह महान् शिवभक्त था। उसके उषा नामकी एक श्लाघनीया पुत्री थी। वह आपके पौत्र इन अनिरुद्धका, जिन्हें उसने पहले कभी देखा भी नहीं था, स्वप्नमें अनुभव कर विरहातुर हो गयी॥ २॥

योगिन्यतीव कुशला खलु चित्रलेखा
तस्याः सखी विलिखती तरुणानशेषान्।
तत्रानिरुद्धमुषया विदितं निशाया-
मानेष्ट योगबलतो भवतो निकेतात्॥ ३॥

उषाकी एक सखी थी, जिसका नाम था चित्रलेखा। वह योगिनी और चित्रकर्ममें अत्यन्त निपुण थी। उसने समस्त तरुण राजकुमारोंका चित्र बनाना आरम्भ किया। उन बनाये हुए चित्रोंमें उषाने अनिरुद्धको पहचाना, तब उसके मनोनीत पुरुष अनिरुद्धको वह अपने योगबलसे रात्रिके समय आपके महलसे उठा लायी॥ ३॥

कन्यापुरे दयितया सुखमारमन्तं
चैनं कथंचन बबन्धुषि शर्वबन्धौ।
श्रीनारदोक्ततदुदन्तदुरन्तरोषै-
स्त्वं तस्य शोणितपुरं यदुभिर्न्यरुन्धाः॥ ४॥

उस कन्यापुरमें अनिरुद्ध प्रियतमा उषाके साथ सुखपूर्वक रमण करने लगे। जब बाणासुरको किसी प्रकार इसका पता लगा, तब उसने अनिरुद्धको शर्वबन्ध (नागपाश)-से बाँध लिया। तत्पश्चात् श्रीनारदजीके मुखसे अनिरुद्धके बन्धनरूप वृत्तान्तको श्रवण करके, जिनके क्रोधकी सीमा नहीं रह गयी थी, उन यादवोंको साथ लेकर आपने बाणासुरकी राजधानी शोणितपुरको घेर लिया॥ ४॥

पुरीपालः शैलप्रियदुहितृनाथोऽस्य भगवान्
समं भूतव्रातैर्यदुबलमशङ्कं निरुरुधे।
महाप्राणो बाणो झटिति युयुधानेन युयुधे
गुहः प्रद्युम्नेन त्वमपि पुरहन्त्रा जघटिषे॥ ५॥

बाणासुरकी नगरीके रक्षक हिमवान्‌की प्रिय पुत्री पार्वतीके प्राणनाथ भगवान् शंकर थे। उन्होंने भूतगणोंके साथ निश्शङ्क होकर उस यादवी सेनाको रोक दिया। तब तुरंत ही महाबली बाणासुर सात्यकिके साथ और स्वामिकार्तिक प्रद्युम्नके साथ भिड़ गये तथा आप भी त्रिपुरहन्ता शिवजीके साथ युद्ध करने लगे॥ ५॥

निरुद्धाशेषास्त्रे मुमुहुषि तवास्त्रेण गिरिशे
द्रुता भूता भीताः प्रमथकुलवीराः प्रमथिताः।
परास्कन्दत्स्कन्दः कुसुमशरबाणैश्च सचिवः
स कुम्भाण्डो भाण्डं नवमिव बलेनाशु बिभिदे॥ ६॥

उस संग्राममें जब आपके अस्त्रप्रयोगसे शिवजीके सारे अस्त्र निरुद्ध हो गये और वे स्वयं आपके मोहनास्त्रसे मोहको प्राप्त हो गये, तब भूतों तथा प्रमथोंके वीर योद्धा अतिशय पीड़ित होनेके कारण भयभीत होकर भाग खड़े हुए और प्रद्युम्नके बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर स्कन्दने भी युद्धसे मुख मोड़ लिया। उसी समय बलरामजीने शीघ्रता-पूर्वक बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डको मिट्टीके नये भाण्डकी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया॥ ६॥

चापानां पञ्चशत्या प्रसभमुपगते छिन्नचापेऽथ बाणे
व्यर्थे याते समेतो ज्वरपतिरशनैरज्वरि त्वज्ज्वरेण।
ज्ञानी स्तुत्वाथ दत्त्वा तव चरितजुषां विज्वरं स ज्वरोऽगात्
प्रायोऽन्तर्ज्ञानवन्तोऽपि च बहुतमसा रौद्रचेष्टा हि रौद्राः॥ ७॥

तब बाणासुर पाँच सौ धनुष धारण करके बलपूर्वक युद्धस्थलमें आ डटा। परंतु जब उसके सभी धनुष कट गये और वह विरथ हो गया, तब रणभूमिसे हट गया। उसी समय माहेश्वर ज्वर आपके ज्वरके साथ लोहा लेने लगा; परंतु वह शीघ्र ही संतप्त हो उठा। वह माहेश्वर ज्वर ज्ञानी था, अतः वह आपकी स्तुति करके तथा आपके भक्तोंको ज्वराभावका वरदान देकर वहाँसे चला गया; हृदयमें, ज्ञानयुक्त होनेपर भी तमोगुणकी अधिकतासे प्रायः रुद्र-पार्षद क्रूर कर्म करनेवाले हो जाते हैं॥ ७॥

बाणं नानायुधोग्रं पुनरभिपतितं दर्पदोषाद्वितन्वन्
निर्लूनाशेषदोषं सपदि बुबुधुषा शंकरेणोपगीतः।
तद्वाचा शिष्टबाहुद्वितयमुभयतो निर्भयं तत्प्रियं तं
मुक्त्वा तद्दत्तमानो निजपुरमगमः सानिरुद्धः सहोषः॥ ८॥

तदनन्तर नाना प्रकारके आयुधोंको धारण करके उग्र पराक्रमी बाणासुर पुनः संग्रामभूमिमें आ धमका। तब आपने शीघ्र ही उसके दर्प-दोषके कारण उसकी सारी भुजाओंको काट गिराया। उस समय जब शंकरजीको यह ज्ञात हुआ, तब भक्तकी रक्षाके लिये वे आपकी स्तुति करने लगे। शंकरजीके कहनेसे आपने बाणासुरकी दो भुजाएँ छोड़ दीं और उस शिवभक्तको दोनों ओरसे निर्भय करके मुक्त कर

दिया। तत्पश्चात् बाणासुरद्वारा दिये गये दहेजको स्वीकार करके अनिरुद्ध और उषाके साथ आप अपने नगर द्वारकाको लौट आये॥ ८॥

मुहुस्तावच्छक्रं वरुणमजयो नन्दहरणे
यमं बालानीतौ दवदहनपानेऽनिलसखम्।
विधिं वत्सस्तेये गिरिशमिह बाणस्य समरे
विभो विश्वोत्कर्षी तदयमवतारो जयति ते॥ ९॥

विभो! आपने कई बार (इन्द्रयाग-निवारण, पारिजातहरण, खाण्डवदाह आदिमें) इन्द्रको, नन्दजीका हरण करनेपर वरुणको, गुरुपुत्रोंको लाते समय यमराजको, दावाग्नि-पानके अवसरपर अग्निको, बछड़ोंकी चोरी करनेपर ब्रह्माको और बाणासुरके इस समरमें शंकरजीको पराजित किया। अतः आपके इस अवतारका उत्कर्ष सभी देवोंसे बढ़कर है, इसलिये इस अवतारकी जय हो॥ ९॥

द्विजरुषा कृकलासवपुर्धरं नृगनृपं त्रिदिवालयमापयन्।
निजजने द्विजभक्तिमनुत्तमामुपदिशन् पवनेश्वर पाहि माम्॥ १०॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणके कोपजनित शापसे गिरगिट-योनिको प्राप्त हुए महाराज नृगका उद्धार करके आपने उन्हें स्वर्ग पहुँचाया। इसी बहाने आपने स्वजनोंको सर्वश्रेष्ठ द्विजभक्तिका उपदेश दिया। पवनेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति बाणयुद्धं नृगमोक्षं च द्व्यशीतितमदशकं समाप्तम्॥

त्र्यशीतितमदशकम्

पौण्ड्रक-वध, काशीपुरी-दहन और बलभद्रजीके प्रतापका वर्णन

रामेऽथ गोकुलगते प्रमदाप्रसक्ते
हूतानुपेतयमुनादमने मदान्धे।
स्वैरं समारमति सेवकवादमूढो
दूतं न्ययुङ्क्त तव पौण्ड्रकवासुदेवः॥ १॥

तदनन्तर जब बलरामजी एक बार गोकुल गये हुए थे, वहाँ मदसे उन्मत्त होकर वे प्रमदाओंके साथ विहार कर रहे थे, तब जलविहारके हेतु बुलानेपर भी यमुनाके न आनेपर उन्होंने यमुनाका दमन किया। पुनः स्वच्छन्दतापूर्वक वे जलविहारमें रम गये। उसी समय सेवकोंके 'आप ही जगदीश्वर हैं'—यों कहनेसे जिसकी बुद्धि मोहाच्छन्न हो गयी थी, उस पौण्ड्रक वासुदेवने आपके पास दूत भेजकर कहलाया— ॥ १ ॥

नारायणोऽहमवतीर्ण इहास्मि भूमौ
धत्से किल त्वमपि मामकलक्षणानि।
उत्सृज्य तानि शरणं व्रज मामिति त्वां
दूतो जगाद सकलैर्हसितः सभायाम्॥ २॥

'मैं ही नारायण हूँ और इस भूतलपर अवतीर्ण हुआ हूँ। तुम भी मेरे श्रीवत्स-कौस्तुभ आदि चिह्नोंको धारण करते हो, अतः उन्हें छोड़कर तुम मेरी शरणमें आ जाओ।' इस प्रकार दूतने महाराज उग्रसेनकी सभामें आकर आपसे कहा। यह सुनकर सभी लोग उस दूतकी हँसी उड़ाने लगे॥ २॥

दूतेऽथ यातवति यादवसैनिकस्त्वं
यातो ददर्शिथ वपुः किल पौण्ड्रकीयम्।
तापेन वक्षसि कृताङ्कमनल्पमूल्य-
श्रीकौस्तुभं मकरकुण्डलपीतचेलम्॥ ३॥

दूतके चले जानेपर आप यादवी सेनाके साथ पौण्ड्रककी राजधानीमें गये। वहाँ आपने पौण्ड्रकके स्वरूपका निरीक्षण किया। उसकी छातीपर संतप्त लोहसे श्रीवत्सका चिह्न बना था, गलेमें बहुमूल्य कौस्तुभमणि लटक रही थी, कानोंमें मकराकृत कुण्डल झलमला रहे थे और शरीरपर पीताम्बर सुशोभित हो रहा था॥ ३॥

कालायसं निजसुदर्शनमस्यतोऽस्य
कालानलोत्करकिरेण सुदर्शनेन।
शीर्षं चकर्तिथ ममर्दिथ चास्य सेनां
तन्मित्रकाशिपशिरोऽपि चकर्थ काश्याम्॥ ४॥

युद्धस्थलमें जब पौण्ड्रकने काले लोहेसे बने हुए अपने सुदर्शनसे आपपर वार किया, तब आपने अपने संहारकारी अग्निवर्षा करनेवाले सुदर्शनचक्रसे उसका सिर काट लिया और उसकी सेनाको तहस-नहस कर दिया। तत्पश्चात् पौण्ड्रकके मित्र काशिराजके भी सिरको काटकर उसे काशीपुरीमें राजद्वारपर गिरा दिया॥ ४॥

जाड्येन बालकगिरापि किलाहमेव
श्रीवासुदेव इति रूढमतिश्चिरं सः।
सायुज्यमेव भवदैक्यधिया गतोऽभूत्
को नाम कस्य सुकृतं कथमित्यवेयात्॥ ५॥

बालकोंकी बातोंसे मूर्खतावश जिसकी बुद्धिमें चिरकालसे यह निश्चय हो गया था कि 'श्रीवासुदेव मैं ही हूँ', वह पौण्ड्रक निरन्तर आपका ही ध्यान बना रहनेके कारण सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त हो गया। भला, किसका पुण्य कैसा है?—यह कौन जान सकता है॥ ५॥

काशीश्वरस्य तनयोऽथ सुदक्षिणाख्यः
शर्वं प्रपूज्य भवते विहिताभिचारः।
कृत्यानलं कमपि बाणरणातिभीतै-
र्भूतैः कथंचन वृतैः सममभ्यमुञ्चत्॥ ६॥

काशिराजके पुत्रका नाम सुदक्षिण था। उसने शंकरजीकी उपासना करके आपके लिये आभिचारिक अनुष्ठान किया। उससे कोई अद्भुत कृत्याग्नि प्रकट हुई। तब बाणासुरके युद्धसे अत्यन्त भयभीत होकर भागे हुए भूतगणोंको किसी प्रकार साथ लगाकर सुदक्षिणने उस कृत्यानलको आपके ऊपर छोड़ दिया॥ ६॥

तालप्रमाणचरणामखिलं दहन्तीं
कृत्यां विलोक्य चकितैः कथितोऽपि पौरैः।
द्यूतोत्सवे किमपि नो चलितो विभो त्वं
पार्श्वस्थमाशु विससर्जिथ कालचक्रम्॥ ७॥

उस कृत्याके पैर ताड़के समान लंबे थे। वह सबको भस्म करती

हुई द्वारकाके निकट जा पहुँची। उसे देखकर भयभीत हुए पुरवासियोंने आपसे रक्षाके लिये प्रार्थना की। विभो! उस समय आप द्यूत-क्रीडामें रमे हुए थे, अतः स्वयं तो उठे नहीं; परंतु बगलमें बैठे हुए कालचक्रको शीघ्र ही उसका दमन करनेके लिये आपने आज्ञा दे दी॥ ७॥

अभ्यापतत्यमितधाम्नि भवन्महास्त्रे
हा हेति विद्रुतवती खलु घोरकृत्या।
रोषात् सुदक्षिणमदक्षिणचेष्टितं तं
पुप्लोष चक्रमपि काशिपुरीमधाक्षीत्॥ ८॥

तब आपके अमिततेजस्वी उस महान् अस्त्र सुदर्शनचक्रके आक्रमण करनेपर वह भयावनी कृत्या हाहाकार करती हुई वहाँसे भाग चली। उसने रोषाभिभूत होकर उस अनुदार विचारवाले सुदक्षिणको भस्म कर दिया। फिर उस चक्रने भी काशीपुरीको जलाकर राखका ढेर बना दिया॥ ८॥

स खलु द्विविदो रक्षोघाते कृतोपकृतिः पुरा
तव तु कलया मृत्युं प्राप्तुं तदा खलतां गतः।
नरकसचिवो देशक्लेशं सृजन्नगरान्तिके
झटिति हलिना युध्यन्नद्धा पपात तलाहतः॥ ९॥

पूर्वकालमें रावण-वधके अवसरपर जिसने राम-रूपसे अवतीर्ण हुए आपका उपकार किया था, वह द्विविद नामका वानर भौमासुरका सखा था। उसने आपके अंशभूत बलरामद्वारा मृत्युकी प्राप्तिके निमित्त आपसे वैर ठान लिया और द्वारकापुरीके निकट आकर वह आस-पासके प्रदेशोंमें उपद्रव करने लगा। तब युद्धस्थलमें वह बलरामजीके तलप्रहारसे आहत होकर गिरा और तुरंत ही मृत्युको प्राप्त हो गया॥ ९॥

साम्बं कौरव्यपुत्रीहरणनियमितं सान्त्वनार्थी कुरूणां
यातस्तद्वाक्यरोषोद्धृतकरिनगरो मोचयामास रामः।
ते घात्याः पाण्डवेयैरिति यदुपृतनां नामुचस्त्वं तदानीं
तं त्वां दुर्बोधलीलं पवनपुरपते तापशान्त्यै निषेवे॥ १०॥

साम्बने दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको स्वयंवरमें हर लिया। तब कौरवोंने साम्बको परास्त करके बंदी बना लिया। यह सुनकर बलरामजी शान्ति-स्थापनार्थ कौरवोंकी राजधानी हस्तिनापुरको गये। वहाँ कौरवोंके आक्षेपयुक्त वचनोंसे कुपित होकर हस्तिनापुरको ही उखाड़ लिया। जिससे भयभीत होकर कौरवोंने साम्बको बन्धनमुक्त कर दिया। उस समय यह विचारकर कि उन कौरवोंका वध पाण्डवोंके हाथों होनेवाला है, आपने अपनी यादवी सेनाको हस्तिनापुर नहीं भेजा। पवनपुरपते! आपकी लीला दुर्बोध—बड़ी कठिनाईसे समझमें आनेवाली है; ऐसे आपका मैं कष्ट-शान्तिके हेतु भजन करता हूँ॥ १०॥

॥ इति पौण्ड्रकवधवर्णनं काशीपुरीदाहवर्णनं द्विविदवधवर्णनं लक्ष्मणास्वयंवरं च त्र्यशीतितमदशकं समाप्तम्॥

चतुरशीतितमदशकम्

समन्तपञ्चक यात्रा-वर्णन

क्वचिदथ तपनोपरागकाले पुरि निदधत्कृतवर्मकामसूनू।
यदुकुलमहिलावृतः सुतीर्थं समुपगतोऽसि समन्तपञ्चकाख्यम्॥ १॥

तदनन्तर किसी सूर्यग्रहणके अवसरपर कृतवर्मा और अनिरुद्धको द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त करके आप यदुकुलकी महिलाओंके साथ समन्तपञ्चक (कुरुक्षेत्र) नामक उत्तम तीर्थमें गये॥ १॥

बहुतरजनताहिताय तत्र त्वमपि पुनन्विनिमज्ज्य तीर्थतोयम्।
द्विजगणपरिमुक्तवित्तराशिः सममिलथाः कुरुपाण्डवादिमित्रैः॥ २॥

वहाँ अधिकांश लोगोंके हितके लिये आपने भी उस तीर्थजलको पवित्र करते हुए उसमें गोता लगाया और खुले हाथ ब्राह्मणोंको धनराशिका दान दिया। वहीं कुरु-पाण्डव आदि मित्रोंसे आपकी भेंट हो गयी॥ २॥

तव खलु दयिताजनैः समेता द्रुपदसुता त्वयि गाढभक्तिभारा।
तदुदितभवदाहृतिप्रकारैरति मुमुदे सममन्यभामिनीभिः॥ ३॥

तब आपमें सुदृढ़ भक्तिभाव रखनेवाली द्रौपदी सुभद्रा आदि अन्य महिलाओंके साथ आकर आपकी रुक्मिणी आदि पटरानियोंसे मिली और जैसे-जैसे आपने उनका हरण किया था, उस-उस वृत्तान्तको उनके मुखसे सुनकर अतिशय आनन्दित हुई॥ ३॥

तदनु च भगवन् निरीक्ष्य गोपानतिकुतुकादुपगम्य मानयित्वा।
चिरतरविरहातुराङ्गरेखाः पशुपवधूः सरसं त्वमन्वयासीः॥ ४॥

भगवन्! तत्पश्चात् वहीं गोपोंको देखकर आप अत्यन्त उत्कण्ठित हो उन सबसे मिले और भलीभाँति उनका सम्मान किया। पुनः आप स्नेहपूर्वक उन गोपाङ्गनाओंसे भी मिले, जिनके शरीर आपके चिरकालिक विरहसे दुबले हो गये थे॥ ४॥

सपदि च भवदीक्षणोत्सवेन प्रमुषितमानहृदां नितम्बिनीनाम्।
अतिरसपरिमुक्तकञ्चुलीके परिचयहृद्यतरे कुचे न्यलैषीः॥ ५॥

आपके दर्शनका उत्सव पाकर तत्काल ही उन नितम्बिनी गोपियोंके हृदयका मान गल गया और अत्यन्त रसवशात् उनके स्तनोंपरसे चोली उतर गयी। तब आप उनके पूर्वपरिचित मनोहर स्तनोंमें निलीन हो गये—उनके आलिङ्गन-सुखका अनुभव किया॥ ५॥

रिपुजनकलहैः पुनः पुनर्मे समुपगतैरियती विलम्बनाभूत्।
इति कृतपरिरम्भणे त्वयि द्रागतिविवशा खलु राधिका निलिल्ये॥ ६॥

तदनन्तर 'प्रिये! बारंबार शत्रुओंके साथ युद्ध छिड़ जानेके कारण तुम्हारे पास मेरे आनेमें इतना विलम्ब हो गया।' इस प्रकार आपके सान्त्वनापूर्ण वचन कहकर आलिङ्गन करनेपर राधिका तुरंत ही अत्यन्त विवश हो आपके वक्षःस्थलमें लीन हो गयीं—आपके साथ ऐक्य-सुखका अनुभव करने लगीं॥ ६॥

अपगतविरहव्यथास्तदा ता रहसि विधाय ददाथ तत्त्वबोधम्।
परमसुखचिदात्मकोऽहमात्मेत्युदयतु वः स्फुटमेव चेतसीति॥ ७॥

उस समय एकान्तमें उन गोपियोंकी विरह-व्यथाको शान्त करके उन्हें तत्त्वज्ञान प्रदान करते हुए आप यों कहने लगे—'प्यारी गोपियो! तुमलोगोंके चित्तमें ऐसा ज्ञान स्पष्टरूपसे उदित होना चाहिये कि मैं परमानन्दबोधस्वरूप सबका आत्मा हूँ (अतः मेरे साथ तुमलोगोंका वियोग कभी होता ही नहीं)'॥ ७॥

सुखरसपरिमिश्रितो वियोगः किमपि पुराभवदुद्धवोपदेशैः।
समभवदमुतः परं तु तासां परमसुखैक्यमयी भवद्विचिन्ता॥ ८॥

पहले उद्धवके मुखसे किये गये उपदेशको सुनकर गोपियोंको विरह-दुःख कुछ आनन्दसे मिश्रित जान पड़ा था; परंतु आपके इस उपदेशसे उन्हें आपसे वियोग होनेकी व्यथा परमानन्दरसैकरूपा प्रतीत हुई॥ ८॥

मुनिवरनिवहैस्तवाथ पित्रा दुरितशमाय शुभानि पृच्छ्यमानैः।
त्वयि सति किमिदं शुभान्तरैरित्युरुहसितैरपि याजितस्तदासौ॥ ९॥

तदनन्तर आपके पिता वसुदेवजीने वहाँ एकत्र मुनिवर-वृन्दसे पापशमनके लिये करने योग्य शुभकर्म पूछे। तब वे मुनिवर 'आपके रहते हुए अन्य शुभकर्मोंकी क्या आवश्यकता है?—यों कहकर ठहाका मारकर हँसने लगे। तथापि उस समय उन्होंने वसुदेवजीसे यज्ञका अनुष्ठान करवाया॥ ९॥

सुमहति यजने वितायमाने प्रमुदितमित्रजने सहैव गोपाः।
यदुजनमहितास्त्रिमासमात्रं भवदनुषङ्गरसं पुरेव भेजुः॥ १०॥

जिस समय प्रमुदित मित्रजनोंसे परिपूर्ण वह महान् यज्ञ चल रहा था, उस समय सबके साथ गोपगण भी यादवोंसे पूजित हो तीन मास-तक वहाँ ठहरकर पहलेकी ही तरह आपके संगम-सुखका आनन्द लेते रहे॥ १०॥

व्यपगमसमये समेत्य राधां दृढमुपगूह्य निरीक्ष्य वीतखेदाम्।
प्रमुदितहृदयः पुरं प्रयातः पवनपुरेश्वर पाहि मां गदेभ्यः॥ ११॥

विदा होते समय आपने राधाके निकट जाकर उनका गाढ

आलिङ्गन किया, जिससे उनकी विरह-व्यथा शान्त हो गयी। यह देखकर आपका हृदय आनन्दसे भर गया और आप द्वारकापुरीको चले गये। पवनपुरेश्वर! रोगोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति समन्तपञ्चकयात्रावर्णनं चतुरशीतितमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चाशीतितमदशकम्

जरासंध-वध तथा युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञका वर्णन

ततो मगधभूभृता चिरनिरोधसंक्लेशितं
शताष्टकयुतायुतद्वितयमीश भूमीभृताम्।
अनाथशरणाय ते कमपि पूरुषं प्राहिणो-
दयाचत स मागधक्षपणमेव किं भूयसा॥ १॥

ईश! तदनन्तर मगधराज जरासंधद्वारा चिरकालसे बंदी बनाये जानेके कारण क्लेश उठानेवाले बीस हजार आठ सौ राजाओंके समुदायने अशरणशरण आपके पास किसी पुरुषको दूत बनाकर भेजा। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता? आपसे जरासंधके वधकी ही याचना की॥ १॥

यियासुरभिमागधं तदनु नारदोदीरिता-
द्युधिष्ठिरमखोद्यमादुभयकार्यपर्याकुलः ।
विरुद्धजयिनोऽध्वरादुभयसिद्धिरित्युद्धवे
शशंसुषि निजैः समं पुरमियेथ यौधिष्ठिरीम्॥ २॥

यह सुनकर आप जरासंधपर चढ़ाई करनेका विचार कर ही रहे थे कि इसी बीच आपको नारदजीके मुखसे युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञका वृत्तान्त ज्ञात हुआ। इस प्रकार दो कार्य एक साथ ही उपस्थित होनेपर आप द्विविधामें पड़ गये। तब उद्धवने 'शत्रुनिग्रहपूर्वक किये गये यज्ञसे दोनों कार्य सिद्ध हो जायँगे'—ऐसी सलाह दी। फिर तो उसी

समय आप स्वजनोंके साथ युधिष्ठिरकी राजधानी इन्द्रप्रस्थके लिये रवाना हो गये॥ २॥

अशेषदयितायुते त्वयि समागते धर्मजो
विजित्य सहजैर्महीं भवदपाङ्गसंवर्द्धितैः।
श्रियं निरुपमां वहन्नहह भक्तदासायितं
भवन्तमयि मागधे प्रहितवान् सभीमार्जुनम्॥ ३॥

सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंसहित आपके पधारनेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने आपकी कृपादृष्टिसे संवर्धित भाइयोंद्वारा सारी पृथ्वीको जीतकर अनुपम लक्ष्मी प्राप्त की। फिर अयि भगवन्! आश्चर्य तो यह है कि उन्होंने भक्त-दासकी तरह आचरण करनेवाले आपको भीम और अर्जुनके साथ जरासंधको जीतनेके लिये भेज दिया॥ ३॥

गिरिव्रजपुरं गतास्तदनु देव यूयं त्रयो
ययाच समरोत्सवं द्विजमिषेण तं मागधम्।
अपूर्णसुकृतं त्वमुं पवनजेन संग्रामयन्
निरीक्ष्य सह जिष्णुना त्वमपि राजयुद्ध्वा स्थितः॥ ४॥

देव! तत्पश्चात् आप तीनों वीर जरासंधकी राजधानी गिरिव्रजको गये। वहाँ ब्राह्मण-वेष धारण करके जरासंधके निकट जाकर आपलोगोंने उससे समरोत्सवकी याचना की और उस अपूर्ण पुण्यवाले जरासंधको भीमसेनके साथ लड़ाकर बड़े-बड़े राजाओंसे जूझनेवाले आप भी उस युद्धको देखते हुए अर्जुनके साथ चुपचाप खड़े रहे॥ ४॥

अशान्तसमरोद्धतं विटपपाटनासंज्ञया
निपात्य जरसः सुतं पवनजेन निष्पाटितम्।
विमुच्य नृपतीन् मुदा समनुगृह्य भक्तिं परां
दिदेशिथ गतस्पृहानपि च धर्मगुप्त्यै भुवः॥ ५॥

किसीकी जय-पराजय न होनेसे वह युद्ध समाप्त नहीं हो रहा था; अतएव जरासंधकी उद्दण्डता बढ़ती जाती थी। तब आपने भीमसेनको वृक्षके चीरनेका-सा संकेत किया। उसका आशय

समझकर भीमने उस जरा-पुत्रकी टाँगें पकड़कर उसे बीचसे ही चीर डाला। इस प्रकार उसका वध कराकर आपने बंदी राजाओंको बन्धन-मुक्त किया और हर्षपूर्वक उन्हें अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति प्रदान की। तत्पश्चात् यद्यपि उन्हें राज्यभोगकी इच्छा नहीं रह गयी थी, तथापि आपने धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करनेके लिये उन्हें [अपने-अपने राज्यको लौट जानेकी] आज्ञा दी॥ ५॥

प्रचक्रुषि युधिष्ठिरे तदनु राजसूयाध्वरं
प्रसन्नभृतकीभवत्सकलराजकव्याकुलम्।
त्वमप्ययि जगत्पते द्विजपदावनेजादिकं
चकर्थ किमु कथ्यते नृपवरस्य भाग्योन्नतिः॥ ६॥

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान किया। वह यज्ञ प्रसन्नतापूर्वक सेवकका कार्य करनेवाले समागत भूपाल-समूहोंसे भरा था। अयि जगदीश्वर! उस यज्ञमें आपने भी ब्राह्मणोंके पाद-प्रक्षालन आदिका कार्य स्वयं अपने हाथसे किया। नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरके भाग्योदयका इससे अधिक क्या वर्णन किया जा सकता है?॥ ६॥

ततः सवनकर्मणि प्रवरमग्र्यपूजाविधिं
विचार्य सहदेववागनुगतः स धर्मात्मजः।
व्यधत्त भवते मुदा सदसि विश्वभूतात्मने
तदा ससुरमानुषं भुवनमेव तृप्तिं दधौ॥ ७॥

तदनन्तर सवन-कर्मके अवसरपर सहदेवके कथनानुसार आपको सर्वश्रेष्ठ समझकर धर्मनन्दन युधिष्ठिरने हर्षपूर्वक उस राजसभामें समस्त प्राणियोंके आत्मास्वरूप आपकी श्रेष्ठतम अग्रपूजा की। उस समय देवताओं और मनुष्योंसहित समस्त चराचर लोक संतुष्ट हो गया॥ ७॥

ततः सपदि चेदिपो मुनिनृपेषु तिष्ठत्स्वहो
सभाजयति को जडः पशुपदुर्दुरूढं वटुम्।
इति त्वयि स दुर्वचोविततिमुद्वमन्नासना-
दुदापतदुदायुधः समपतन्नमुं पाण्डवाः॥ ८॥

अहो! तब मुनियों तथा नरेशोंके देखते-देखते वह चेदिराज शिशुपाल 'कौन मूर्ख इस नीच ग्वालेके छोकरेकी पूजा कर रहा है'— यों आपके लिये दुर्वचनोंकी बौछार करता हुआ हाथमें खड्ग धारण करके तुरंत ही अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ। यह देखकर पाण्डव उसे मार डालनेके लिये टूट पड़े॥ ८॥

निवार्य निजपक्षगानभिमुखस्य विद्वेषिण-
स्त्वमेव जहषे शिरो दनुजदारिणा स्वारिणा।
जनुस्त्रितयलब्धया सततचिन्तया शुद्धधी-
स्त्वया स परमेकतामधृत योगिनां दुर्लभाम्॥ ९॥

तब अपने पक्षपाती पाण्डवोंको उसे मारनेसे रोककर स्वयं आपने ही अपने दनुजविदारक सुदर्शनचक्रसे सम्मुख खड़े हुए शिशुपालके सिरको धड़से अलग कर दिया। [हिरण्यकशिपु, रावण, शिशुपाल— इन] तीन जन्मोंतक अनवरत आपकी चिन्तना करनेसे शिशुपालकी बुद्धि शुद्ध हो गयी थी, अतः वह आपके साथ उस ऐकात्म्यको प्राप्त हुआ, जो योगियोंको भी दुर्लभ है॥ ९॥

ततः सुमहिते त्वया क्रतुवरे निरूढे जनो
ययौ जयति धर्मजो जयति कृष्ण इत्यालपन्।
खलः स तु सुयोधनो धुतमनाः सपत्नश्रिया
मयार्पितसभामुखे स्थलजलभ्रमादभ्रमीत्॥ १०॥

तदनन्तर आपकी देख-रेखमें जब वह श्रेष्ठ यज्ञ भलीभाँति पूजित होकर समाप्त हुआ, तब समागत जन-समूह 'श्रीकृष्णकी जय हो, धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी जय हो'—यों कहता हुआ अपने-अपने घर चला गया। परंतु दुर्योधन तो दुष्ट विचारवाला था, अतः अपने शत्रुभूत पाण्डवोंकी उस समृद्धिको देखकर उसका मन चञ्चल हो गया। वह मयदानवद्वारा दी हुई सभाके द्वारपर स्थलको जल और जलको स्थल समझकर सम्भ्रान्त हो गया॥ १०॥

तदा हसितमुत्थितं द्रुपदनन्दनाभीमयो-
रपाङ्गकलया विभो किमपि तावदुज्जृम्भयन्।

धराभरनिराकृतौ सपदि नाम बीजं वपन्
जनार्दन मरुत्पुरीनिलय पाहि मामामयात्॥ ११॥

विभो! यह देखकर द्रौपदी और भीमसेनके मुखसे हँसी निकल पड़ी और उन्होंने कनखियोंद्वारा दुर्योधनकी ओर देखकर उसके रोषको और भी उत्तेजित कर दिया। जनार्दन! इस रूपमें आपने शीघ्र ही पृथ्वीके भार-हरणरूप कार्यके लिये बीजारोपण किया। मरुत्पुरीनिलय! इस रोगसे मेरी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति जरासंधवधवर्णनं राजसूयवर्णनं च पञ्चाशीतितमदशकं समाप्तम्॥

षडशीतितमदशकम्

शाल्व और दन्तवक्त्रका उद्धार तथा महाभारत-युद्धका वर्णन

शाल्वो भैष्मीविवाहे यदुबलविजितश्चन्द्रचूडाद्विमानं
विन्दन् सौभं स मायी त्वयि वसति कुरूंस्त्वत्पुरीमभ्यभाङ्क्षीत्।
प्रद्युम्नस्तं निरुन्धन् निखिलयदुभटैर्न्यग्रहीदुग्रवीर्यं
तस्यामात्यं द्युमन्तं व्यजनि च समरः सप्तविंशत्यहान्तम्॥ १॥

रुक्मिणी-विवाहके अवसरपर यादवी सेनाने शाल्वको पराजित कर दिया था। जिससे दुःखी होकर उसने चन्द्रचूड भगवान् शंकरकी आराधना की और उनसे सौभ नामक विमान प्राप्त किया। जब आप कुरुदेशकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ गये हुए थे, उसी समय वह मायावी आपकी द्वारकापुरीपर आक्रमण करके उसे नष्ट-भ्रष्ट करने लगा। तब प्रद्युम्नने समस्त यदुवीरोंके साथ नगरसे बाहर निकलकर उसका सामना किया और उसके मन्त्री उग्र पराक्रमी द्युमान्‌को नष्ट कर दिया। इस प्रकार यह युद्ध सत्ताईस दिनोंतक चलता रहा॥ १॥

तावत् त्वं रामशाली त्वरितमुपगतः खण्डितप्रायसैन्यं
सौभेशं तं न्यरुन्धाः स च किल गदया शार्ङ्गमभ्रंशयत् ते।

मायातातं व्यहिंसीदपि तव पुरतस्तत् त्वयापि क्षणार्धं
नाज्ञायीत्याहुरेके तदिदमवमतं व्यास एव न्यषेधीत्॥ २॥

इसी बीच आप बलरामजीके साथ द्वारका लौट आये और तुरंत ही रणभूमिमें जाकर, जिसकी सारी सेनाएँ प्रायः नष्ट हो चुकी थीं, उस सौभपति शाल्वका सामना करने लगे। उसने आपपर गदासे वार किया, जिससे शार्ङ्गधनुष आपके हाथसे गिर गया। पुनः उसने मायानिर्मित आपके पिता वसुदेवजीको आपके देखते-देखते मार डाला। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि उस समय उसकी उस मायाको आधे क्षण आप भी नहीं समझ सके। परंतु उनका यह कथन ठीक नहीं है—इस प्रकार कहकर व्यासजीने ही निषेध कर दिया है॥ २॥

क्षिप्त्वा सौभं गदाचूर्णितमुदकनिधौ मङ्क्षु शाल्वेऽपि चक्रे-
णोत्कृत्ते दन्तवक्त्रः प्रसभमभिपतन्नभ्यमुञ्चद्गदां ते।
कौमोदक्या हतोऽसावपि सुकृतनिधिश्चैद्यवत् प्रापदैक्यं
सर्वेषामेष पूर्वं त्वयि धृतमनसां मोक्षणार्थोऽवतारः॥ ३॥

तब आपने अपनी गदासे सौभ विमानको चूर-चूर करके समुद्रमें गिरा दिया और तत्काल ही चक्रद्वारा शाल्वके भी मस्तकको काट गिराया। इसी समय दन्तवक्त्रने वेगपूर्वक आपपर आक्रमण किया और अपनी गदासे चोट की। तब आपने अपनी कौमोदकी गदासे उसे भी कालके गालमें डाल दिया। उस समय पुण्यशाली दन्तवक्त्र शिशुपालकी भाँति आपमें लीन हो गया। इस प्रकार आपका यह अवतार उन सभी लोगोंके मोक्षके लिये ही हुआ है, जिन्होंने अपने मनको पहलेसे आपमें लगा रखा था॥ ३॥

त्वय्यायातेऽथ जाते किल कुरुसदसि द्यूतके संयतायाः
क्रन्दन्त्या याज्ञसेन्याः सकरुणमकृथाश्चेलमालामनन्ताम्।
अन्नान्तप्राप्तशर्वांशजमुनिचकितद्रौपदीचिन्तितोऽथ
प्राप्तः शाकान्नमश्नन् मुनिगणमकृथास्तृप्तिमन्तं वनान्ते॥ ४॥

आपके इन्द्रप्रस्थसे द्वारका चले आनेपर कौरवोंकी सभामें कपट-

द्यूतका समारम्भ हुआ। उसमें पाण्डवोंके हार जानेपर दुःशासन द्रौपदीको पकड़कर सभामें खींच लाया और उसे नंगी करना चाहा, तब रोती हुई द्रौपदीने आपको पुकारा। उस समय आपने दयावश उसकी साड़ीको इतना बढ़ा दिया कि उसका कहीं ओर-छोर नहीं था। पाण्डवोंके वनवासके समय भोजनोपरान्त पधारे हुए दुर्वासा मुनिके शापसे भयभीत हुई द्रौपदीके ध्यान करनेपर आप वहाँ भी जा पहुँचे और पात्रमें लगे हुए शाकान्नको खाकर शिष्योंसहित दुर्वासा मुनिको तृप्त कर दिया॥ ४॥

युद्धोद्योगेऽथ मन्त्रे मिलति सति वृतः फल्गुनेन त्वमेकः
कौरव्ये दत्तसैन्यः करिपुरमगमो दौत्यकृत् पाण्डवार्थम्।
भीष्मद्रोणादिमान्ये तव खलु वचने धिक्कृते कौरवेण
व्यावृण्वन् विश्वरूपं मुनिसदसि पुरीं क्षोभयित्वाऽऽगतोऽभूः॥ ५॥

युद्धोद्योगके अवसरपर सैन्य-संगठनके समय अर्जुनने अकेले आपको ही मन्त्रणार्थ वरण किया, तब आपने दुर्योधनको अपनी यादवी सेना प्रदान की। पुनः पाण्डवोंकी कार्यसिद्धिके लिये आप दूत बनकर हस्तिनापुर गये। वहाँ भीष्म, द्रोणाचार्य आदिने आपके कथनको स्वीकार किया, परंतु दुर्योधनने उसे अनसुना कर दिया। तब आपने मुनियोंकी उस सभामें अपना विश्वरूप प्रकट किया और हस्तिनापुरको क्षुब्ध करके आप लौट आये॥ ५॥

जिष्णोस्त्वं कृष्ण सूतः खलु समरमुखे बन्धुघाते दयालुं
खिन्नं तं वीक्ष्य वीरं किमिदमयि सखे नित्य एकोऽयमात्मा।
को वध्यः कोऽत्र हन्ता तदिह वधभियं प्रोज्झ्य मय्यर्पितात्मा
धर्म्यं युद्धं चरेति प्रकृतिमनयथा दर्शयन् विश्वरूपम्॥ ६॥

कृष्ण! आपने अर्जुनका सारथ्य स्वीकार किया। तत्पश्चात् युद्धके मुहानेपर बन्धु-वधरूप कार्यके उपस्थित होनेपर अर्जुनको दया उत्पन्न हो गयी। तब उस वीरको खिन्न एवं युद्धसे विमुख हुआ देखकर आप बोले—'अयि सखे! यह क्या बात है? अरे! यह आत्मा तो सदा

अद्वितीय एवं अविनाशी है। भला, यहाँ कौन मारा जाता है? और कौन मारता है? अतः इस विषयमें वधकी आशङ्काको त्यागकर आत्माको मुझमें समर्पित करके क्षात्रधर्मसम्मत युद्धमें लग जाओ।'—यों समझाते हुए आपने अपना विश्वरूप दिखलाकर अर्जुनके मोहको भंग किया—उन्हें स्वाभाविक स्थितिमें ले आये॥ ६॥

भक्तोत्तंसेऽथ भीष्मे तव धरणिभरक्षेपकृत्यैकसक्ते
नित्यं नित्यं विभिन्दत्यवनिभृदयुतं प्रासादे च पार्थे।
निश्शस्त्रत्वप्रतिज्ञां विजहदरिवरं धारयन् क्रोधशाली-
वाधावन् प्राञ्जलिं तं नतशिरसमथो वीक्ष्य मोदादपागाः॥ ७॥

भक्तश्रेष्ठ भीष्मने आपके भूमि-भारापहरणरूप कार्यमें संलग्न होकर जब प्रतिदिन दस हजार राजाओंका संहार करते हुए अर्जुनको हतोत्साह कर दिया, तब आप क्रोधीका-सा नाट्य करते हुए 'मैं शस्त्र नहीं ग्रहण करूँगा'—उस प्रतिज्ञाको तोड़कर सुदर्शनचक्र धारण करके भीष्मपर झपटे। उस समय भीष्म हाथ जोड़कर नतमस्तक हो गये। यह देखकर आप हर्षित होकर लौट पड़े॥ ७॥

युद्धे द्रोणस्य हस्तिस्थिररणभगदत्तेरितं वैष्णवास्त्रं
वक्षस्याधत्त चक्रस्थगितरविमहाः प्रार्दयत्सिन्धुराजम्।
नागास्त्रे कर्णमुक्ते क्षितिमवनमयन् केवलं कृत्तमौलिं
तत्रे तत्रापि पार्थं किमिव नहि भवान् पाण्डवानामकार्षीत्॥ ८॥

द्रोणाचार्यके युद्धमें हाथीपर बैठकर युद्ध करनेवाले भगदत्तद्वारा चलाये गये वैष्णवास्त्रको आपने अपने वक्षःस्थलपर रोक लिया। पुनः सुदर्शनचक्रद्वारा सूर्यके तेजको स्थगित करके सिन्धुराज जयद्रथका वध कराया। पुनः कर्णद्वारा नागास्त्रके छोड़े जानेपर पृथ्वीको नीचे दबाकर वहाँ भी आपने अर्जुनकी रक्षा की। उस समय अर्जुनका केवल केशसहित किरीट कट गया था। इस प्रकार आपने पाण्डवोंका कौन-सा उपकार नहीं किया?॥ ८॥

युद्धादौ तीर्थगामी स खलु हलधरो नैमिषक्षेत्रमृच्छ-
न्नप्रत्युत्थायि सूतक्षयकृदथ सुतं तत्पदे कल्पयित्वा।
यज्ञघ्नं बल्वलं पर्वणि परिदलयन् स्नाततीर्थो रणान्ते
सम्प्राप्तो भीमदुर्योधनरणमशमं वीक्ष्य यातः पुरीं ते॥ ९ ॥

महाभारत-युद्धके प्रारम्भमें बलरामजी तीर्थयात्राके लिये चले गये थे। घूमते-घामते वे नैमिषारण्यमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने आसनसे उठकर स्वागत न करनेके कारण रोमहर्षण सूतको मार डाला और पुनः मुनियोंके कहनेपर उनके पुत्रको उस स्थानपर नियुक्त करके वे तीर्थोंमें स्नान करते हुए भ्रमण करने लगे। फिर पर्वके समय किये जाते हुए यज्ञको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले बल्वल दैत्यको मारकर महाभारत-युद्धकी समाप्तिपर वे हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ मना करनेपर भी भीम और दुर्योधनके गदायुद्धको शान्त होते न देखकर वे आपकी पुरी द्वारकाको चले गये॥ ९॥

संसुप्तद्रौपदेयक्षपणहतधियं द्रौणिमेत्य त्वदुक्त्या
तन्मुक्तं ब्राह्ममस्त्रं समहृत विजयो मौलिरत्नं च जह्रे।
उच्छित्त्यै पाण्डवानां पुनरपि च विशत्युत्तरागर्भमस्त्रे
रक्षन्नङ्गुष्ठमात्रः किल जठरमगाश्चक्रपाणिर्विभो त्वम्॥ १० ॥

विभो! सोये हुए द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंका वध कर देनेसे जिसकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, उस द्रोणकुमार अश्वत्थामाके निकट जाकर अर्जुनने आपकी आज्ञासे उसके द्वारा छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रका संहार कर दिया और उसके ललाटमें स्थित मणि भी छीन ली। पुनः पाण्डवोंका मूलोच्छेद करनेके लिये उसके द्वारा प्रयोग किये गये ब्रह्मास्त्रके उत्तराके गर्भमें प्रवेश करनेपर आप उसके रक्षार्थ अँगूठेके बराबर शरीर धारण करके हाथमें चक्र लेकर उत्तराके उदरमें घुस गये॥ १०॥

धर्मौघं धर्मसूनोरभिदधदखिलं छन्दमृत्युः स भीष्म-
स्त्वां पश्यन् भक्तिभूम्नैव हि सपदि ययौ निष्कलब्रह्मभूयम्।
संयाज्याथाश्वमेधैस्त्रिभिरतिमहितैर्धर्मजं पूर्णकामं
सम्प्राप्तो द्वारकां त्वं पवनपुरपते! पाहि मां सर्वरोगात्॥ ११ ॥

स्वच्छन्दमृत्यु भीष्मने धर्मनन्दन युधिष्ठिरको सारे धर्मोंका उपदेश दिया। तत्पश्चात् वे आपका दर्शन करते हुए आपकी अनपायिनी भक्तिके ही प्रतापसे शीघ्र ही निष्कल ब्रह्मस्वरूप—मोक्षको प्राप्त हो गये। तदनन्तर आपने युधिष्ठिरसे अत्यन्त ऐश्वर्यशाली तीन अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान कराया। इस प्रकार उनकी कामना पूर्ण करके आप द्वारकाको लौट गये। पवनपुरपते! सम्पूर्ण रोगोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति शाल्वादिवधवर्णनं भारतयुद्धवर्णनं च षडशीतितमदशकं समाप्तम्॥

सप्ताशीतितमदशकम्

सुदामा-चरित

कुचेलनामा भवतः सतीर्थ्यतां गतः स सांदीपनिमन्दिरे द्विजः।
त्वदेकरागेण धनादिनिःस्पृहो दिनानि निन्ये प्रशमी गृहाश्रमी॥ १॥

कुचेल (सुदामा) नामके एक निर्धन ब्राह्मण थे। वे महर्षि सांदीपनिके आश्रममें आपके साथ ही ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक विद्याध्ययन कर रहे थे, अतः आपके सहपाठी थे। आपमें अनन्य अनुराग होनेके कारण उनकी धनादिकी स्पृहा नष्ट हो गयी थी। वे जितेन्द्रिय द्विज गृहस्थाश्रम स्वीकार करके कालक्षेप कर रहे थे॥ १॥

समानशीलापि तदीयवल्लभा तथैव नो चित्तजयं समेयुषी।
कदाचिदूचे बत वृत्तिलब्धये रमापतिः किं न सखा निषेव्यते॥ २॥

यद्यपि उनकी पत्नी भी उन्हींके सदृश शील-स्वभाववाली थी, तथापि उनके समान उसका अपने चित्तपर अधिकार नहीं था अर्थात् वह धनादिसे निःस्पृह नहीं थी। अतः एक दिन उसने अपने पतिदेवसे कहा—'भला, जब लक्ष्मीपति ही आपके सखा हैं, तब जीविका-निर्वाहके लिये आप उनकी सेवामें क्यों नहीं जाते?'॥ २॥

इतीरितोऽयं प्रियया क्षुधार्तया जुगुप्समानोऽपि धने मदावहे।
तदा त्वदालोकनकौतुकाद्ययौ वहन् पटान्ते पृथुकानुपायनम्॥ ३॥

तब क्षुधा-पीड़ित पत्नीके यों कहनेपर सुदामा उन्मत्त बना देनेवाले धनकी निन्दा करते हुए भी आपके दर्शनकी कामनासे दुपट्टेके छोरमें उपहार-स्वरूप कुछ तण्डुल (या चिउड़े) बाँधकर द्वारकाको चल पड़े॥ ३ ॥

गतोऽयमाश्चर्यमयीं भवत्पुरीं गृहेषु शैब्याभवनं समेयिवान्।
प्रविश्य वैकुण्ठमिवाप निर्वृतिं तवातिसम्भावनया तु किं पुनः ॥ ४ ॥

तदनन्तर आश्चर्यमयी कारीगरीसे सुशोभित आपकी पुरीमें पहुँचकर सुदामा महलोंको देखते हुए शैब्याके भवनपर गये। उसके भीतर प्रवेश करनेपर उन्हें ऐसा सुख प्राप्त हुआ मानो वैकुण्ठमें ही आ गये हों। फिर आपके द्वारा अतिशय आदर-सत्कार पानेपर उन्हें कितना आनन्द मिला होगा, उसके लिये क्या कहना है॥ ४॥

प्रपूजितं तं प्रियया च वीजितं करे गृहीत्वाकथयः पुराकृतम्।
यदिन्धनार्थं गुरुदारचोदितैरपर्तुवर्षं तदमर्षि कानने॥ ५ ॥

वहाँ आपके द्वारा भलीभाँति सत्कृत होकर जब सुदामा पलंगपर विराजमान हुए और रुक्मिणीजी पंखा झलने लगीं, तब आप उनका हाथ अपने हाथमें लेकर गुरुकुल-वासके समय घटित घटनाका वर्णन करते हुए कहने लगे—'सखे! क्या वह दिन स्मरण है, जब गुरुपत्नीकी आज्ञासे हम दोनों इन्धन लानेके लिये वनमें गये हुए थे, वहाँ वर्षा-ऋतु न होनेपर भी घनघोर वर्षा हुई थी, जिसे हमलोगोंने सहन किया था?'॥ ५ ॥

त्रपाजुषोऽस्मात् पृथुकं बलादथ प्रगृह्य मुष्टौ सकृदाशिते त्वया।
कृतं कृतं नन्वियतेति सम्भ्रमाद्रमा किलोपेत्य करं रुरोध ते॥ ६ ॥

सुदामा अपने साथ लाया हुआ तण्डुल आपको देनेमें सकुचा रहे थे, तब आपने बलपूर्वक उसे खींच लिया और ज्यों ही एक मुट्ठी तण्डुल मुखमें डाला, त्यों ही रमास्वरूपा रुक्मिणी सम्भ्रमपूर्वक आपके निकट आ पहुँचीं और 'बस-बस, इतना ही पर्याप्त है'—यों कहती हुई उन्होंने आपके हाथको पकड़ लिया॥ ६ ॥

भक्तेषु भक्तेन स मानितस्त्वया पुरीं वसन्नेकनिशां महासुखम्।
बतापरेद्युर्द्रविणं विना ययौ विचित्ररूपस्तव खल्वनुग्रहः॥ ७॥

इस प्रकार भक्तोंके बीचमें मित्र भक्त आपके द्वारा प्रीतिपूर्वक

सम्मानित हुए सुदामा अतिशय आनन्दपूर्वक एक रात द्वारकापुरीमें रहे। परंतु खेद है, दूसरे दिन प्रातःकाल बिना कुछ धन प्राप्त किये ही बिदा हुए। भगवन्! आपका अनुग्रह भी विचित्र रूपोंवाला है अर्थात् आप किस रूपमें किसपर कृपा करते हैं—यह कहा नहीं जा सकता॥ ७॥

यदि ह्ययाचिष्यमदास्यदच्युतो वदामि भार्यां किमिति व्रजन्नसौ।
त्वदुक्तिलीलास्मितमग्नधीः पुनः क्रमादपश्यन् मणिदीप्रमालयम्॥ ८॥

मार्गमें सुदामा कभी यह सोचते थे कि यदि मैं याचना करता तो अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्ण मुझे धन अवश्य देते। [परंतु मैंने याचना नहीं की, अतः उन्होंने कुछ दिया नहीं।] अब घर चलकर पत्नीसे क्या कहूँगा। पुनः उसी क्षण उनकी बुद्धि आपके सम्भाषण, लीला और मन्द मुस्कानके आनन्दमें निमग्न हो जाती। इस प्रकार क्रमशः आगे बढ़ते हुए उन्हें अपना भवन दिखायी पड़ा, जो मणियोंकी प्रभासे जगमगा रहा था॥ ८॥

किं मार्गविभ्रंश इति भ्रमन् क्षणं गृहं प्रविष्टः स ददर्श वल्लभाम्।
सखीपरीतां मणिहेमभूषितां बुबोध च त्वत्करुणां महाद्भुताम्॥ ९॥

उसे देखकर सुदामाको क्षणभर भ्रम हो गया कि कहीं मैं मार्ग तो नहीं भूल गया? पुनः घरके भीतर प्रवेश करके उन्होंने अपनी पत्नीको देखा, जो मणि तथा स्वर्णनिर्मित आभूषणोंसे विभूषित थी और बहुत-सी सखियाँ उसे घेरे हुए थीं। तब सुदामाको आपकी अत्यन्त अद्भुत करुणाका ज्ञान हो आया॥ ९॥

स रत्नशालासु वसन्नपि स्वयं समुन्नमद्भक्तिभरोऽमृतं ययौ।
त्वमेवमापूरितभक्तवाञ्छितो मरुत्पुराधीश हरस्व मे गदान्॥ १०॥

उस रत्ननिर्मित महलमें निवास करते हुए भी सुदामाकी भक्ति क्रमशः बढ़ती ही गयी, जिससे अन्तमें वे मोक्षको प्राप्त हो गये। मरुत्पुराधीश! इस प्रकार भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले आप मेरे रोगोंको हर लीजिये॥ १०॥

॥ इति कुचेलोपाख्यानं (सुदाम्नोपाख्यानं) सप्ताशीतितमदशकं समाप्तम्॥

अष्टाशीतितमदशकम्

देवकीके मरे हुए पुत्रोंको वापस लाना, श्रुतदेव और बहुलाश्वपर कृपा तथा अर्जुनका गर्व-हरण

प्रागेवाचार्यपुत्राहृतिनिशमनया स्वीयषट्सूनुवीक्षां
काङ्क्षन्त्या मातुरुक्त्या सुतलभुवि बलिं प्राप्य तेनार्चितस्त्वम्।
धातुः शापाद्धिरण्यान्वितकशिपुभवान् शौरिजान् कंसभग्ना-
नानीयैनान् प्रदर्श्य स्वपदमनयथाः पूर्वपुत्रान् मरीचेः॥ १॥

'श्रीकृष्णने आचार्यपुत्रको यमपुरीसे वापस लाकर गुरुदक्षिणा सम्पन्न की है'—यह वृत्तान्त बहुत दिनोंसे सुनते रहनेके कारण माता देवकीको भी अपने मरे हुए छहों पुत्रोंको देखनेकी इच्छा जाग उठी। तब माताकी आज्ञासे आप सुतललोकमें बलिके पास गये। बलिने भक्तिभावपूर्वक आपका पूजन किया। तत्पश्चात् जो पहले महर्षि मरीचिके पुत्र थे और ब्रह्माके शापसे हिरण्यकशिपुके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे, उन्होंने ही पुनः वसुदेवजीके पुत्ररूपमें जन्म लिया था; जिन्हें कंसने मार डाला था। उन छहों बालकोंको लाकर आपने माताको दिखलाया और पुनः उन्हें अपने निवासस्थान वैकुण्ठको भेज दिया॥ १॥

श्रुतदेव इति श्रुतं द्विजेन्द्रं बहुलाश्वं नृपतिं च भक्तिपूर्णम्।
युगपत्त्वमनुग्रहीतुकामो मिथिलां प्रापिथ तापसैः समेतः॥ २॥

श्रुतदेव नामसे विख्यात एक द्विजश्रेष्ठ और मिथिला-नरेश बहुलाश्व—ये दोनों आपकी भक्तिसे भरे-पूरे थे। इनपर एक ही साथ अनुग्रह करनेके लिये आप तापसोंसहित मिथिलापुरीमें गये॥ २॥

गच्छन् द्विमूर्तिरुभयोर्युगपन्निकेत-
मेकेन भूरिविभवैर्विहितोपचारः।
अन्येन तद्दिनभृतैश्च फलौदनाद्यै-
स्तुल्यं प्रसेदिथ ददाथ च मुक्तिमाभ्याम्॥ ३॥

वहाँ दो रूप धारण करके आप एक ही समय दोनोंके घर पधारे।

एक—बहुलाश्वने राजसी सामग्रियोंसे आपका पूजन किया था और दूसरे—श्रुतदेवने उस दिन प्राप्त हुए फल-ओदन आदि पूजन-सामग्रीके द्वारा ही आपकी अर्चना की थी। परंतु आपने उन दोनोंपर समानरूपसे ही अपना प्रसाद प्रकट किया और उन्हें एक-सी ही मुक्ति प्रदान की॥ ३॥

भूयोऽथ द्वारवत्यां द्विजतनयमृतिं तत्प्रलापानपि त्वं
को वा दैवं निरुन्ध्यादिति किल कथयन् विश्ववोढाप्यसोढाः।
जिष्णोर्गर्वं विनेतुं त्वयि मनुजधिया कुण्ठितां चास्य बुद्धिं
तत्त्वारूढां विधातुं परमतमपदप्रेक्षणेनेति मन्ये॥ ४॥

तदनन्तर द्वारकापुरीमें निखिल विश्वके संचालक होते हुए भी आपने जो एक ब्राह्मणके पुत्रकी मृत्युको तथा उस ब्राह्मणके कटु वचनको भी 'भला, दैवका निवारण करनेमें कौन समर्थ हो सकता है?'—यों कहते हुए सहन किया; इसका कारण मुझे यह प्रतीत होता है कि आप परमतम पदके दर्शन कराके अर्जुनका गर्व दूर करना तथा आपमें मानवबुद्धि होनेके कारण कुण्ठित हुई अर्जुनकी बुद्धिको तत्त्वज्ञान-सम्पन्न बनाना चाहते थे॥ ४॥

नष्टा अष्टास्य पुत्राः पुनरपि तव तूपेक्षया कष्टवादः
स्पष्टो जातो जनानामथ तदवसरे द्वारकामाप पार्थः।
मैत्र्या तत्रोषितोऽसौ नवमसुतमृतौ विप्रवर्यप्ररोदं
श्रुत्वा चक्रे प्रतिज्ञामनुपहृतसुतः संनिवेक्ष्ये कृशानुम्॥ ५॥

उस ब्राह्मणके आठ पुत्र नष्ट हो चुके थे, फिर भी आपकी उपेक्षासे लोगोंमें आपके प्रति सुस्पष्ट ही खेदपूर्ण अपवाद-चर्चा चल रही थी। उसी समय अर्जुन द्वारकापुरीमें आये और मित्रताके नाते वहाँ कुछ दिनतक टिके रह गये। नवें पुत्रकी मृत्युके अवसरपर उस द्विजश्रेष्ठके रोदन एवं आर्तनादको सुनकर अर्जुनने यह प्रतिज्ञा की कि 'यदि मैं आपके (आगे उत्पन्न होनेवाले) पुत्रको नहीं बचा सकूँ तो अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा'॥ ५॥

मानी स त्वामपृष्ट्वा द्विजनिलयगतो बाणजालैर्महास्त्रै
रुन्धानः सूतिगेहं पुनरपि सहसा दृष्टनष्टे कुमारे।
याम्यामैन्द्रीं तथान्याः सुरवरनगरीर्विद्ययाऽऽसाद्य सद्यो
मोघोद्योगः पतिष्यन् हुतभुजि भवता सस्मितं वारितोऽभूत्॥ ६ ॥

[प्रसवकाल आनेपर] मानी अर्जुन आपसे बिना पूछे ही उस ब्राह्मणके घर गये और आग्नेयादि महान् अस्त्रोंद्वारा बाणोंका जाल-सा फैलाकर उन्होंने उस सूतिकागृहको आच्छादित कर दिया। फिर भी जन्म लेते ही वह बालक दीखकर भी सहसा अदृश्य हो गया। तब अर्जुन तुरंत ही योग-विद्याके बलसे यमपुरी, इन्द्रपुरी तथा वरुण-कुबेरादि अन्यान्य सुरश्रेष्ठोंकी पुरियोंमें जाकर उस बालककी खोज करने लगे, परंतु उनका उद्योग निष्फल हो गया अर्थात् उस बालकका पता न लगा। तब द्वारका लौटकर वे अग्निमें कूदना ही चाहते थे कि आप मुस्कराते हुए उनके पास जा पहुँचे और उन्हें उस कर्मसे रोक दिया॥ ६ ॥

सार्धं तेन प्रतीचीं दिशमतिजविना स्यन्दनेनाभियातो
लोकालोकं व्यतीतस्तिमिरभयमथो चक्रधाम्ना निरुन्धन्।
चक्रांशुक्लिष्टदृष्टिं स्थितमथ विजयं पश्य पश्येति वारां
पारे त्वं प्राददर्शः किमपि हि तमसां दूरदूरं पदं ते॥ ७॥

तदनन्तर अर्जुनके साथ आप अपने परम वेगशाली रथके द्वारा पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए। चलते-चलते जब लोकालोक पर्वतको लाँघ गये तो वहाँ गहन अन्धकारका भय प्राप्त हुआ। उस अन्धकार-भयको सुदर्शनचक्रके प्रकाशसे चीरते हुए आप उसकी अन्तिम सीमापर जा पहुँचे। उस समय अर्जुनकी दृष्टि चक्रकी किरणोंके प्रकाशसे चौंधिया गयी थी। तब 'अर्जुन! देखो, वह देखो'—यों कहते हुए आपने उन्हें जलराशिके पार विराजमान और अन्धकारसे बहुत दूर स्थित अपने किसी अनिर्देश्य पदका दर्शन कराया॥ ७॥

तत्रासीनं भुजङ्गाधिपशयनतले दिव्यभूषायुधाद्यै-
रावीतं पीतचेलं प्रतिनवजलदश्यामलं श्रीमदङ्गम्।

मूर्तीनामीशितारं परमिह तिसृणामेकमर्थं श्रुतीनां
त्वामेव त्वं परात्मन् प्रियसखसहितो नेमिथ क्षेमरूपम्॥ ८॥

परमात्मन्! वहाँ भुजङ्गराज शेषनागकी शय्यापर आसीन, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित, दिव्य आयुध आदिसे घिरे, श्रीसम्पन्न विग्रहपर पीताम्बर धारण किये, दूसरे नूतन जलधरकी-सी श्यामकान्तिवाले, ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों मूर्तियोंके नियन्ता, ऋग्वेदादि तीनों वेदोंके एकमात्र प्रतिपाद्य तथा परम कल्याणस्वरूप अपने-आपको ही आपने प्रिय सखा अर्जुनसहित नमस्कार किया॥ ८॥

युवां मामेव द्वावधिकविवृतान्तर्हिततया
विभिन्नौ संद्रष्टुं स्वयमहमहार्षम् द्विजसुतान्।
नयेतं द्रागेतानिति खलु वितीर्णान् पुनरमून्
द्विजायादायादाः प्रणुतमहिमा पाण्डुजनुषा॥ ९॥

तब आपसे अभिन्न परमेश्वरने कहा—'तुम दोनों मेरे ही अंशभूत हो; एकका ऐश्वर्य अधिक प्रकट है और एकका अन्तर्हित है, इसी कारण तुम दोनों नर-नारायणरूपसे भिन्न हो गये हो। तुम दोनों कृष्ण और अर्जुनको अपने निकट देखनेके लिये मैंने ही ब्राह्मण-पुत्रोंको मँगा लिया था। अब इन्हें शीघ्र ही ले जाओ।' इस प्रकार उनके द्वारा दिये गये उन बालकोंको लाकर आपने पुनः उन ब्राह्मणदेवको समर्पित कर दिया। उस समय पाण्डुनन्दन अर्जुन आपकी महिमाका गान करने लगे॥ ९॥

एवं नानाविहारैर्जगदभिरमयन् वृष्णिवंशं प्रपुष्ण-
न्नीजानो यज्ञभेदैरतुलविहृतिभिः प्रीणयन्नेणनेत्राः।
भूभारक्षेपदम्भात् पदकमलजुषां मोक्षणायावतीर्णः
पूर्णं ब्रह्मैव साक्षाद्यदुषु मनुजतारूषितस्त्वं व्यलासीः॥ १०॥

इस प्रकार नाना प्रकारकी लीलाओंद्वारा जगत्को आनन्द-प्रदान, वृष्णिवंशका विशेषरूपसे पोषण, विभिन्न यज्ञोंद्वारा यजन और अनुपम लीला-विहारोंद्वारा मृगनयनी रानियोंको तृप्तिदान करते हुए आप

साक्षात् पूर्ण ब्रह्म ही भू-भारहरणके बहाने अपने चरण-कमलसेवी भक्तजनोंको मुक्त करनेके लिये यदुकुलमें मनुष्यरूपसे अवतीर्ण होकर सुशोभित हो रहे थे॥ १०॥

प्रायेण द्वारवत्यामवृतदयि तदा नारदस्त्वद्रसार्द्र-
स्तस्माल्लेभे कदाचित्खलु सुकृतनिधिस्त्वत्पिता तत्त्वबोधम्।
भक्तानामग्रयायी स च खलु मतिमानुद्धवस्त्वत्त एव
प्राप्तो विज्ञानसारं स किल जनहितायाधुनाऽऽस्ते बदर्याम्॥ ११॥

भगवन्! उस समय देवर्षि नारद आपके भक्ति-रससे आर्द्र होनेके कारण प्रायः द्वारकामें रहा करते थे। एक बार पधारे हुए उन्हीं नारदजीसे आपके पुण्यशाली पिता वसुदेवजीने तत्त्वज्ञान प्राप्त किया। बुद्धिमान् उद्धव भक्तोंके अग्रणी थे, उन्हें विज्ञानका सार-तत्त्व आपसे ही प्राप्त हुआ था। वे आज भी बदरिकाश्रममें भक्तोंको ज्ञानोपदेश करनेके लिये विद्यमान हैं॥ ११॥

सोऽयं कृष्णावतारो जयति तव विभो यत्र सौहार्दभीति-
स्नेहद्वेषानुरागप्रभृतिभिरतुलैरश्रमैर्योगभेदैः ।
आर्तिं तीर्त्वा समस्ताममृतपदमगुः सर्वतः सर्वलोकाः
स त्वं विश्वार्तिशान्त्यै पवनपुरपते भक्तिपूर्त्यै च भूयाः॥ १२॥

विभो! आपका यह कृष्णावतार सबसे उत्कृष्ट और सर्वत्र विजयी है; क्योंकि इस अवतारमें सभी लोग सर्वत्र सौहार्द, भय, स्नेह, द्वेष और अनुराग आदि विभिन्न प्रकारके अनुपम एवं श्रमरहित योगके उपायोंद्वारा सारी विपत्तियोंसे उद्धार पाकर अमृतपद—मोक्षको प्राप्त हो गये। पवनपुरपते! वही आप हमारे लिये भी सारी पीड़ाओंको हरनेवाले तथा भक्तिकी पूर्ति करनेवाले हों॥ १२॥

॥ इति संतानगोपालोपाख्यानमष्टाशीतितमदशकं समाप्तम्॥

एकोननवतितमदशकम्

वृकासुर-वध तथा त्रिदेवोंमें विष्णुकी श्रेष्ठताका वर्णन

रमाजाने जाने यदिह तव भक्तेषु विभवो
न सम्पद्यः सद्यस्तदिह मदकृत्त्वादशमिनाम्।
प्रशान्तिं कृत्वैव प्रदिशसि ततः काममखिलं
प्रशान्तेषु क्षिप्रं न खलु भवदीये च्युतिकथा॥ १॥

लक्ष्मीपते! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप अपने भक्तोंको जो शीघ्र ही ऐश्वर्यरूप फल नहीं प्रदान करते, उसका कारण यही है कि ऐश्वर्य मदकारक होता है। इसीलिये अशान्त जनोंको पूर्णतः शान्त करके ही आप उन्हें उनकी सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करते हैं और जो पहलेसे ही शान्त हैं, उनपर शीघ्र ही कृपा कर देते हैं। इसी कारण आपके भक्तोंमें च्युतिका प्रसंग ही नहीं आता॥ १॥

सद्यः प्रसादरुषितान् विधिशंकरादीन्
केचिद्विभो निजगुणानुगुणं भजन्तः।
भ्रष्टा भवन्ति बत कष्टमदीर्घदृष्ट्या
स्पष्टं वृकासुर उदाहरणं किलास्मिन्॥ २॥

विभो! कुछ लोग अपने-अपने वासनानुकूल क्षणे तुष्ट और क्षणे रुष्ट होनेवाले ब्रह्मा-शंकर आदि देवोंकी भक्ति करते हैं; परंतु खेद है कि अदीर्घदृष्टि होनेके कारण वे शीघ्र ही भ्रष्ट हो जाते हैं। इस विषयमें वृकासुर स्पष्ट ही उदाहरण है॥ २॥

शकुनिजः स तु नारदमेकदा
त्वरिततोषमपृच्छदधीश्वरम्।
स च दिदेश गिरीशमुपासितुं
न तु भवन्तमबन्धुमसाधुषु॥ ३॥

एक बार शकुनि-पुत्र वृकासुरने नारदजीसे पूछा—'मुने! त्रिदेवोंमें

शीघ्र प्रसन्न होनेवाला देव कौन है?' तब नारदजीने शिवजीकी ही उपासना करनेके लिये उसे सलाह दी, आपकी उपासना नहीं बतायी; क्योंकि आप असाधु (दुष्ट)-जनोंके बन्धु (सहायक) नहीं हैं॥ ३॥

तपस्तप्त्वा घोरं स खलु कुपितः सप्तमदिने
शिरश्छित्त्वा सद्यः पुरहरमुपस्थाप्य पुरतः।
अतिक्षुद्रं रौद्रं शिरसि करदानेन निधनं
जगन्नाथाद्वव्रे भवति विमुखानां क्व शुभधीः॥ ४॥

तब उसने घोर तप करना आरम्भ किया। सातवें दिन कुपित होकर उसने अपना सिर काटकर चढ़ा देनेका विचार किया। यह देख शिवजी तुरंत उसके सामने प्रकट हो गये। तब वृकासुरने उन जगदीश्वरसे 'मैं जिसके सिरपर हाथ रख दूँ वह भस्म हो जाय'—ऐसे अत्यन्त क्षुद्र एवं क्रूर वरकी याचना की। भला, आपसे विमुख रहनेवालोंकी बुद्धि शुभ कैसे हो सकती है॥ ४॥

मोक्तारं बन्धमुक्तो हरिणपतिरिव प्राद्रवत् सोऽथ रुद्रं
दैत्याद् भीत्या स्म देवो दिशि दिशि वलते पृष्ठतो दत्तदृष्टिः।
तूष्णीके सर्वलोके तव पदमधिरोक्ष्यन्तमुद्वीक्ष्य शर्वं
दूरादेवाग्रतस्त्वं पटुवटुवपुषा तस्थिषे दानवाय॥ ५॥

वरदान प्राप्त करके वृकासुर उसी प्रकार शिवजीके पीछे पड़ गया, जैसे बन्धनसे मुक्त हुआ सिंह मुक्त करनेवालेपर ही आक्रमण कर बैठता है। तब महादेवजी उस दैत्यसे भयभीत होकर पीछेकी ओर देखते हुए प्रत्येक दिशामें भागते फिरे, परंतु सभी लोगोंने उन्हें देखकर चुप्पी साध ली, किसीने उनकी रक्षा नहीं की। तत्पश्चात् वे आपके वैकुण्ठधामकी ओर ऊँचे उठने लगे। उन्हें दूरसे ही आते देखकर आप आगे बढ़ आये और सुन्दर ब्रह्मचारीका वेष धारण करके उस दानवके मार्गमें खड़े होकर उससे बोले॥ ५॥

भद्रं ते शाकुनेय भ्रमसि किमधुना त्वं पिशाचस्य वाचा
संदेहश्चेन्मदुक्तौ तव किमु न करोष्यङ्गुलीमङ्ग मौलौ।

इत्थं त्वद्वाक्यमूढः शिरसि कृतकरः सोऽपतच्छिन्नपातं
भ्रंशो ह्येवं परोपासितुरपि च गतिः शूलिनोऽपि त्वमेव॥ ६॥

'शकुनि-नन्दन! तुम्हारा कल्याण हो। इस समय तुम उस पिशाचकी बात मानकर क्यों भटक रहे हो? प्यारे! यदि तुम्हें मेरे कथनमें संदेह हो तो तुम अपने ही मस्तकपर हाथ रखकर उसकी परीक्षा क्यों नहीं कर लेते?' इस प्रकार आपके वचनोंसे मोहित हुआ वृकासुर सिरपर हाथ रखते ही छिन्नमूल वृक्षकी तरह धराशायी हो गया। (इससे ऐसा प्रतीत होता है कि) परमेश्वर शिवकी उपासना करनेवालेका भी मूर्खताके कारण इस प्रकार नाश हो जाता है। उस दिन आप ही शिवजीके भी आश्रय हुए॥ ६॥

भृगुं किल सरस्वतीनिकटवासिनस्तापसा-
स्त्रिमूर्तिषु समादिशन्नधिकसत्त्वतां वेदितुम्।
अयं पुनरनादरादुदितरुद्धरोषे विधौ
हरेऽपि च जिहिंसिषौ गिरिजया धृते त्वामगात्॥ ७॥

एक बार सरस्वतीके निकट निवास करनेवाले तापसोंने ब्रह्मा, विष्णु, शिव—इन त्रिदेवोंमें कौन अधिक सत्त्वशाली है, इसकी परख करनेके लिये भृगु मुनिको भेजा। भृगु मुनि पहले ब्रह्माके पास गये। वहाँ इनके प्रणाम न करनेसे ब्रह्माको क्रोध हो आया, परंतु तुरंत ही उन्होंने उसे दबा दिया। तब भृगुजी शिवजीके निकट गये। शिवजी भी अनादर करनेके कारण मुनिको मार डालनेके लिये उद्यत हो गये, परंतु गिरिजाने उन्हें पकड़ लिया। तत्पश्चात् वे आपके समीप गये॥ ७॥

सुप्तं रमाङ्कभुवि पङ्कजलोचनं त्वां
विप्रे विनिघ्नति पदेन मुदोत्थितस्त्वम्।
सर्वं क्षमस्व मुनिवर्य भवेत् सदा मे
त्वत्पादचिह्नमिह भूषणमित्यवादीः॥ ८॥

आप लक्ष्मीकी गोदमें सिर रखकर शयन कर रहे थे। तब उन विप्रवरने आप कमलनयनकी छातीमें चरण-प्रहार किया। जिससे आप तुरंत ही उठ पड़े और हर्षपूर्वक यों कहने लगे—'मुनिश्रेष्ठ! मेरे सब अपराधोंको

क्षमा कर दीजिये। आजसे आपका यह चरण-चिह्न मेरे वक्षःस्थलपर श्रीवत्स नामक आभूषण होकर सदा विराजमान रहेगा'॥ ८॥

निश्चित्य ते च सुदृढं त्वयि बद्धभावाः
सारस्वता मुनिवरा दधिरे विमोक्षम्।
त्वामेवमच्युत पुनश्च्युतिदोषहीनं
सत्त्वोच्चयैकतनुमेव वयं भजामः॥ ९॥

[विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ हैं—] ऐसा निश्चय करके वे सरस्वती-तटवर्ती मुनिवर आपमें सुदृढ़ भक्तिभावना करके मोक्षको प्राप्त हो गये। अच्युत! जो च्युति-दोषसे रहित तथा एकमात्र सत्त्वकी ही राशिरूप शरीरवाले हैं, ऐसे आपका ही हम लोग भजन करते हैं॥ ९॥

जगत्सृष्ट्यादौ त्वां निगमनिवहैर्वन्दिभिरिव
स्तुतं विष्णो सच्चित्परमरसनिर्द्वैतवपुषम्।
परात्मानं भूमन् पशुपवनिताभाग्यनिवहं
परीतापश्रान्त्यै पवनपुरवासिन् परिभजे॥ १०॥

विष्णो! जैसे वन्दीगण गुणगान करते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण वेद-समूहोंने मूर्तिमान् होकर जगत्‌की सृष्टिके आदिमें आपके सच्चिदानन्दमय अद्वितीय परमात्मरूपका स्तवन किया था। पवनपुरवासी भूमन्! गोपाङ्गनाओंके सौभाग्यस्वरूप आप परमात्माका कष्ट-निवृत्तिके हेतु मैं भजन करता हूँ॥ १०॥

॥ इति वृकासुरवधवर्णनम् एकोननवतितमदशकं समाप्तम्॥

नवतितमदशकम्

आगमोंका भगवद्विषयक तात्पर्य-निरूपण

वृकभृगुमुनिमोहिन्यम्बरीषादिवृत्ते-
ष्वयि तव हि महत्त्वं सर्वशर्वादिजैत्रम्।
स्थितमिह परमात्मन् निष्कलार्वागभिन्नं
किमपि यदवभातं तद्धि रूपं तवैव॥ १॥

अयि परमात्मन्! वृकासुर, भृगुमुनि, मोहिनी-अवतार तथा अम्बरीष आदिके वृत्तान्तोंमें निश्चय ही आपका महत्त्व शिव आदि समस्त देवताओंको जीतनेवाला अर्थात् सबसे बढ़कर है। निष्कल ब्रह्म एवं अन्य देवताओंसे अभिन्न जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह सब निस्संदेह आपका ही रूप है॥ १॥

मूर्तित्रयेश्वरसदाशिवपञ्चकं यत्
प्राहुः परात्मवपुरेव सदाशिवोऽस्मिन्।
तत्रेश्वरस्तु स विकुण्ठपदस्त्वमेव
त्रित्वं पुनर्भजसि सत्यपदे त्रिभागे॥ २॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश्वर, सदाशिव नामक मूर्तिभेदसे शैवलोग जिस पञ्चब्रह्मका वर्णन करते हैं, उस पञ्चकमें सदाशिव तो आप परमात्मरूप विष्णु ही हैं। इसी प्रकार आप ही वैकुण्ठवासी ईश्वर कहे जाते हैं। पुनः ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप तीन भागवाले सत्यलोकमें आप ही त्रिविध मूर्तियोंको भी धारण करते हैं॥ २॥

तत्रापि सात्त्विकतनुं तव विष्णुमाहु-
र्धाता तु सत्त्वविरलो रजसैव पूर्णः।
सत्त्वोत्कटत्वमपि चास्ति तमोविकार-
चेष्टादिकं च तव शंकरनाम्नि मूर्तौ॥ ३॥

उन तीनों मूर्तियोंमें भी जो आपकी सात्त्विकी मूर्ति है, उसे विष्णु कहते हैं और जिसमें सत्त्वगुण थोड़ा तथा रजोगुण भरपूर है, वह ब्रह्माकी मूर्ति कही जाती है। इसी प्रकार आपकी शंकर नामक मूर्तिमें सत्त्वगुणकी प्रधानता होते हुए भी तमोगुणके विकार-जन्य चेष्टाएँ देखी जाती हैं॥ ३॥

तं च त्रिमूर्त्यतिगतं परपूरुषं त्वां
शर्वात्मनापि खलु सर्वमयत्वहेतोः।
शंसन्त्युपासनविधौ तदपि स्वतस्तु
त्वद्रूपमित्यतिदृढं बहु नः प्रमाणम्॥ ४॥

तीनों मूर्तियोंसे परे ईश्वरपदवाच्य परमपुरुष आपका सर्वमय होनेके

कारण उपासनाके लिये शिवरूपसे भी वर्णन किया जाता है, तथापि परमार्थतः वह आपका ही रूप है। इस विषयमें हमारे लिये बहुत-से अत्यन्त प्रबल प्रमाण हैं॥ ४॥

श्रीशंकरोऽपि भगवान् सकलेषु तावत्
त्वामेव मानयति यो न हि पक्षपाती।
त्वन्निष्ठमेव स हि नामसहस्रकादि
व्याख्याद् भवत्स्तुतिपरश्च गतिं गतोऽन्ते॥ ५॥

भगवान् शंकराचार्य भी, जो किसी देवविशेषके पक्षपाती नहीं थे, समस्त प्राणियोंमें आपको ही उपस्थित मानते थे; इसीलिये उन्होंने विष्णुपरक सहस्रनाम आदिकी व्याख्या की है और अन्त समयमें आपका ही स्तवन करते हुए वे मोक्षको प्राप्त हुए॥ ५॥

मूर्तित्रयातिगमुवाच च मन्त्रशास्त्र-
स्यादौ कलायसुषमं सकलेश्वरं त्वाम्।
ध्यानं च निष्कलमसौ प्रणवे खलूक्त्वा
त्वामेव तत्र सकलं निजगाद नान्यम्॥ ६॥

शंकरभगवत्पादने मन्त्रशास्त्रके आदिमें मूर्तित्रयसे परे चतुर्थ परमेश्वर, केरावके फूलके समान नीली कान्तिसे सुशोभित तथा सर्वेश्वररूपसे आपका वर्णन किया है। प्रणवमें भी उन्होंने निष्कल-ध्यानरूपसे वर्णन करके आपको ही सर्वस्व बतलाया है, किसी अन्य देवको नहीं॥ ६॥

समस्तसारे च पुराणसंग्रहे
विसंशयं त्वन्महिमैव वर्ण्यते।
त्रिमूर्तियुक्सत्यपदत्रिभागतः
परं पदं ते कथितं न शूलिनः॥ ७॥

समस्त शास्त्रोंके निचोड़रूप पुराणोंमें निस्संदेह आपकी ही महिमाका वर्णन किया गया है और उनमें मूर्तित्रयसे युक्त सत्यलोकस्थ तीनों लोकोंसे परे जो लोक है, वह आपका वैकुण्ठलोक ही कहा गया है, शिवलोक नहीं॥ ७॥

यद् ब्राह्मकल्प इह भागवतद्वितीय-
स्कन्धोदितं वपुरनावृतमीश धात्रे।
तस्यैव नाम हरिशर्वमुखं जगाद
श्रीमाधवः शिवपरोऽपि पुराणसारे॥ ८॥

ईश! इस ब्राह्मकल्पमें भगवान्‌ने ब्रह्माको श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धमें वर्णित जिस स्वरूपका दर्शन कराया था, उसीको श्रीमाधवाचार्यने शिवपरायण होते हुए भी पुराणसार नामक ग्रन्थमें हरिशर्वमुख नामसे वर्णन किया है॥ ८॥

ये स्वप्रकृत्यनुगुणा गिरिशं भजन्ते
तेषां फलं हि दृढयैव तदीयभक्त्या।
व्यासो हि तेन कृतवानधिकारिहेतोः
स्कान्दादिकेषु तव हानिवचोऽर्थवादैः॥ ९ ॥

जो लोग अपनी प्रकृतिके अनुसार शिवजीका भजन करते हैं, उन्हें अपनी सुदृढ़ शिवभक्तिके अनुकूल फल मिलेगा ही। इसी कारण व्यासजीने स्कन्द आदि पुराणोंमें शिव-भक्तिके अधिकारियोंके निमित्त अर्थवाद-रूपसे आपके प्रति न्यूनतापादक वचनोंका उल्लेख किया है॥ ९॥

भूतार्थकीर्तिरनुवादविरुद्धवादौ
त्रेधार्थवादगतयः खलु रोचनार्थाः।
स्कान्दादिकेषु बहवोऽत्र विरुद्धवादा-
स्त्वत्तामसत्वपरिभूत्युपशिक्षणाद्याः ॥ १०॥

भूतार्थवाद, अनुवाद और विरुद्धवाद (प्रमाणान्तरसे विरुद्धार्थका कथन)—ये तीन अर्थवादके स्वरूप हैं, जो सब-के-सब रोचनार्थक हैं। स्कन्द आदि पुराणोंमें ऐसे बहुत-से विरुद्धवाद मिलते हैं, जो तामसत्व और पराजय आदिको प्रकट करनेवाले हैं (वस्तुतः वे आपकी न्यूनता प्रकट करनेके लिये नहीं हैं)॥ १०॥

यत् किंचिदप्यविदुषापि विभो मयोक्तं
तन्मन्त्रशास्त्रवचनाद्यभिदृष्टमेव ।
व्यासोक्तिसारमयभागवतोपगीत
क्लेशान् विधूय कुरु भक्तिभरं परात्मन्॥ ११ ॥

विभो! कुछ भी न जानते हुए मैंने जो कुछ आपके गुणोंका वर्णन किया है, वह मन्त्रशास्त्रके वचनोंके अनुसार ही किया है (कपोल-कल्पना नहीं की है)। व्यासोक्तिरूप पुराणोंके सारभूत श्रीमद्भागवत-पुराणद्वारा प्रतिपाद्य परात्मन्! मेरे कष्टोंको नष्ट करके मुझे भक्तिभावसे पूर्ण कर दीजिये॥ ११ ॥

॥ इति आगमादीनां परमतात्पर्यनिरूपणं नवतितमदशकं समाप्तम्॥

एकादशस्कन्धपरिच्छेदः

एकनवतितमदशकम्

निःश्रेयस-प्रदायिनी भक्तिका स्वरूप-वर्णन

श्रीकृष्ण त्वत्पदोपासनमभयतमं बद्धमिथ्यार्थदृष्टे-
मर्त्यस्यार्तस्य मन्ये व्यपसरति भयं येन सर्वात्मनैव।
यत्तावत् त्वत्प्रणीतानिह भजनविधीनास्थितो मोहमार्गे
धावन्नप्यावृताक्षः स्खलति न कुहचिद् देवदेवाखिलात्मन्॥ १॥

समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप देवदेवेश्वर श्रीकृष्ण! जिसकी दृष्टि मिथ्या अर्थ—शरीरादिमें आबद्ध है, उस जनन-मरणधर्मा आर्त प्राणीके लिये आपके चरणोंकी उपासना ही सर्वश्रेष्ठ अभयस्थान है—ऐसी मेरी मान्यता है; क्योंकि उससे भयका सर्वथा ही मूलोच्छेद हो जाता है। आपका चरणोपासक जगतमें आपके द्वारा विहित भागवत-धर्मोंका आश्रय लेकर मोहमार्गमें आँख मूँदकर दौड़ता हुआ भी कहीं लड़खड़ाता या गिरता नहीं है॥ १॥

भूमन् कायेन वाचा मुहुरपि मनसा त्वद्बलप्रेरितात्मा
यद्यत् कुर्वे समस्तं तदिह परतरे त्वय्यसावर्पयामि।
जात्यापीह श्वपाकस्त्वयि निहितमनःकर्मवागिन्द्रियार्थ-
प्राणो विश्वं पुनीते न तु विमुखमनास्त्वत्पदाद्विप्रवर्यः॥ २॥

भूमन्! आपके बलसे प्रेरित हुआ मैं इस जन्ममें शरीर, वचन, मन और इन्द्रियोंसे बारंबार जो कुछ भी कर्म करता हूँ, वह सारा-का-सारा आप परमात्मामें समर्पित कर देता हूँ; क्योंकि इस जगत्में जिसके मन, कर्म, वचन, इन्द्रिय, इन्द्रियोंके विषय तथा प्राण आपमें निहित हैं, वह जन्मसे चाण्डाल होते हुए भी सारे विश्वको पावन बना देता है, किंतु आपके चरणोंसे विमुख मनवाला कुलीन ब्राह्मण ऐसा नहीं कर सकता (वह तो विश्वको कौन कहे, अपनेको भी शुद्ध करनेमें असमर्थ है)॥ २॥

भीतिर्नाम द्वितीयाद् भवति ननु मनःकल्पितं च द्वितीयं
तेनैक्याभ्यासशीलो हृदयमिह यथाशक्ति बुद्ध्या निरुन्ध्याम्।
मायाविद्धे तु तस्मिन् पुनरपि न तथा भाति मायाधिनाथं
तं त्वां भक्त्या महत्या सततमनुभजन्नीश भीतिं विजह्याम्॥ ३॥

ईश! यह तो प्रसिद्ध ही है कि भय दूसरेसे ही होता है और वह दूसरी वस्तु मनके द्वारा कल्पित होती है। इसलिये मैं '**ब्रह्मैवेदं सर्वम्**'— यों ऐक्यका अभ्यासी होकर बुद्धिद्वारा अपने हृदयका यथाशक्ति निरोध करूँगा। परंतु उस हृदयके मायाग्रस्त हो जानेपर पुनः वह ऐक्य प्रतिभासित नहीं होता, इस कारण महती भक्तिद्वारा आप मायापतिका अनवरत भजन करता हुआ मैं संसार-भयका विनाश कर डालूँ॥ ३॥

भक्तेरुत्पत्तिवृद्धी तव चरणजुषां सङ्गमेनैव पुंसा-
मासाद्ये पुण्यभाजां श्रिय इव जगति श्रीमतां सङ्गमेन।
तत्सङ्गो देव भूयान्मम खलु सततं तन्मुखादुन्मिषद्भि-
स्त्वन्माहात्म्यप्रकारैर्भवति च सुदृढा भक्तिरुद्धूतपापा॥ ४॥

इस जगत्में जैसे धनवानोंकी संगतिसे धन-धान्यादि सम्पत्तिकी उत्पत्ति और वृद्धि सुलभ हो जाती है, उसी प्रकार पुण्यशाली पुरुषोंकी भक्तिकी उत्पत्ति और वृद्धि आपके चरण-सेवी भक्तोंके सङ्गसे ही हो सकती है; इसलिये देव! ऐसे भक्तोंका सत्सङ्ग मुझे निरन्तर प्राप्त होता रहे, जिनके मुखसे निकले हुए आपके विभिन्न प्रकारके माहात्म्य-श्रवणसे आपमें पापविनाशिनी सुदृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है॥ ४॥

श्रेयोमार्गेषु भक्तावधिकबहुमतिर्जन्मकर्माणि भूयो
गायन् क्षेमाणि नामान्यपि तदुभयतः प्रद्रुतं प्रद्रुतात्मा।
उद्यद्धासः कदाचित् कुहचिदपि रुदन् क्वापि गर्जन् प्रगाय-
न्नुन्मादीव प्रनृत्यन्नयि कुरु करुणां लोकबाह्यश्चरेयम्॥ ५॥

अयि भगवन्! ऐसी कृपा कीजिये कि मैं श्रेयः-प्राप्तिके साधनोंमें एकमात्र भक्तिमार्गमें ही अधिक श्रद्धालु होकर बारंबार आपके अवतारों, तज्जन्य लीलाओं, नामों तथा पुरुषार्थपूर्ण कार्योंका गान

करता रहूँ और इस प्रकार आपके जन्म-कर्मके कीर्तन तथा मङ्गलमय नामोंके कीर्तन—दोनोंके प्रभावसे शीघ्र ही द्रवीभूत होकर कभी खिलखिलाकर हँसता, कभी रोता, कभी उच्च स्वरसे गरजता, कभी गाता और कभी उन्मादीकी तरह नृत्य करता हुआ लोकातीत स्थितिमें पहुँचकर विचरण करूँ॥ ५॥

भूतान्येतानि भूतात्मकमपि सकलं पक्षिमत्स्यान्मृगादीन्
मर्त्यान् मित्राणि शत्रूनपि यमितमतिस्त्वन्मयान्यानमानि।
त्वत्सेवायां हि सिध्येन्मम तव कृपया भक्तिदार्ढ्यं विराग-
स्त्वत्तत्त्वस्यावबोधोऽपि च भुवनपते यत्नभेदं विनैव॥ ६॥

भुवनेश्वर! इन पाँचों भूतोंको, भूतात्मक सकल चराचर जगत्‌को, पक्षी, मत्स्य, मृग आदि समस्त जल-स्थलनिवासी जीवोंको, मित्रों, शत्रुओं और उदासीनोंको 'ये सब श्रीहरिके स्वरूप हैं'—यों अनुभव करता हुआ मैं अनन्यभावसे उन्हें नमस्कार करूँ। आपकी ऐसी सेवा सम्पन्न होनेपर आपकी कृपा अवश्य ही प्राप्त होगी। उस कृपाके प्रभावसे मेरी सुदृढ़ भक्ति, विषयविरक्ति तथा आपके तत्त्वका सम्यक् ज्ञान—ये तीनों बिना विभिन्न प्रयासोंके ही सिद्ध हो जायँगे॥ ६॥

नो मुह्यन् क्षुत्तृडाद्यैर्भवसरणिभवैस्त्वन्निलीनाशयत्वा-
च्चिन्तासातत्यशाली निमिषलवमपि त्वत्पदादप्रकम्पः।
इष्टानिष्टेषु तुष्टिव्यसनविरहितो मायिकत्वावबोधा-
ज्ज्योत्स्नाभिस्त्वन्नखेन्दोरधिकशिशिरितेनात्मना संचरेयम्॥ ७॥

भगवन्! आपमें समाहित-चित्त होनेके कारण संसारमार्गमें होनेवाले भूख-प्यास आदि क्लेशोंसे मोहित न होकर मैं अनवरत आपके ध्यानमें संलग्न रहूँ, आपके पादारविन्दसे निमिष-लव मात्र भी विचलित न होकर, 'ये सब भोग मायिक हैं'—यों अनुभव करनेके कारण मैं इष्टकी प्राप्तिमें सुख और अनिष्टकी प्राप्तिमें दुःखसे रहित हो जाऊँ तथा आपके चरणोंके नख-चन्द्रकी ज्योत्स्नासे अतिशय शीतल मनवाला होकर सर्वत्र विचरण करूँ॥ ७॥

भूतेष्वेषु त्वदैक्यस्मृतिसमधिगतौ नाधिकारोऽधुना चेत्
त्वत्प्रेम त्वत्कमैत्री जडमतिषु कृपा द्विट्सु भूयादुपेक्षा।
अर्चायां वा समर्चाकुतुकमुरुतरश्रद्धया वर्धतां मे
त्वत्संसेवी तथापि द्रुतमुपलभते भक्तलोकोत्तमत्वम्॥ ८॥

प्रभो! इन प्राणियोंमें आपके ऐक्यानुभवकी प्राप्तिमें यदि अभी मेरा अधिकार न हो तो कम-से-कम आपमें प्रेम, आपके भक्तोंसे मैत्री, जड-बुद्धिवालोंपर दया और शत्रुओंके प्रति उपेक्षाका भाव तो मुझे हो ही जाय। यदि मैं इसका भी अभी अधिकारी न होऊँ तो अतिशय श्रद्धापूर्वक आपके अर्चाविग्रहकी समर्चामें मेरा अनुराग उत्तरोत्तर बढ़ता रहे; क्योंकि आपका भजन करनेवाला अधम-से-अधम प्राणी भी स्वल्प कालमें ही भक्तोंमें अग्रगण्य हो जाता है॥ ८॥

आवृत्य त्वत्स्वरूपं क्षितिजलमरुदाद्यात्मना विक्षिपन्ती
जीवान् भूयिष्ठकर्मावलिविवशगतीन् दुःखजाले क्षिपन्ती।
त्वन्माया माभिभून्मामयि भुवनपते कल्पते तत्प्रशान्त्यै
त्वत्पादे भक्तिरेवेत्यवददयि विभो सिद्धयोगी प्रबुद्धः॥ ९॥

अयि भुवनपते! आपकी माया आपके ब्रह्म-स्वरूपको आच्छादित करके उसे पृथ्वी, जल, वायु आदिके रूपसे प्रकट करनेवाली है तथा विभिन्न प्रकारके कर्म-समूहोंसे जिनकी गति पराधीन हो गयी है, उन जीवोंको संसार-सागरमें ढकेलनेवाली है। अयि विभो! वह माया मेरा पराभव न करे। उसकी शान्तिका एकमात्र उपाय आपके चरणोंकी भक्ति ही है—ऐसा सिद्धयोगी प्रबुद्धने बतलाया है॥ ९॥

दुःखान्यालोक्य जन्तुष्वलमुदितविवेकोऽहमाचार्यवर्या-
ल्लब्ध्वा त्वद्रूपतत्त्वं गुणचरितकथाद्युद्भवद्भक्तिभूमा।
मायामेनां तरित्वा परमसुखमये त्वत्पदे मोदिताहे
तस्यायं पूर्वरङ्गः पवनपुरपते! नाशयाशेषरोगान्॥ १०॥

जीवोंके दुःखोंको देखकर मुझमें प्रभूत विवेक उत्पन्न हो जाय कि

ये पुत्र-मित्र, धन आदि दुःख ही देनेवाले हैं। फिर मैं सद्गुरुकी शरण लेकर उनसे आपके स्वरूपका तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लूँ और आपके गुणों एवं चरितोंके कथनसे मुझमें भूरितर भक्ति उत्पन्न हो जाय, जिससे मैं उसके प्रभावसे इस मायाको पार करके आपके परमसुखमय पादपद्मोंके आश्रयमें रहकर परमानन्दका अनुभव करूँगा। उस माया-विजय नाटकका यह पूर्वरङ्ग (प्रारम्भिक नान्दीपाठ) है। पवनपुरपते! मेरे सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति भक्तिस्वरूपवर्णनम् एकनवतितमदशकं समाप्तम्॥

द्विनवतितमदशकम्

कर्ममिश्रित भक्तिके स्वरूपका वर्णन

वेदैः सर्वाणि कर्माण्यफलपरतया वर्णितानीति बुद्ध्वा
तानि त्वय्यर्पितान्येव हि समनुचरन्यानि नैष्कर्म्यमीश।
मा भूद्वेदैर्निषिद्धे कुहचिदपि मनःकर्मवाचां प्रवृत्ति-
र्दुर्वर्जं चेदवाप्तं तदपि खलु भवत्यर्पये चित्प्रकाशे॥ १॥

वेदोंने समस्त कर्मोंका नैष्कर्म्यके उद्देश्यसे ही वर्णन किया है—ऐसा जानकर मैंने उन कर्मोंको आपके ही अर्पित कर दिया और जो कर्मनिवृत्ति-साध्य हैं, उनका अनुष्ठान करने लगा। ईश! अब वेदनिषिद्ध किसी भी कर्ममें मेरे मन, कर्म (शरीर), वचनकी प्रवृत्ति न हो। यदि संयोगवश मुझे किसी निषिद्ध कर्मकी प्राप्ति हो तो उसे भी मैं चित्प्रकाशस्वरूप आपको ही अर्पित करता हूँ॥ १॥

यस्त्वन्यः कर्मयोगस्तव भजनमयस्तत्र चाभीष्टमूर्तिं
हृद्यां सत्त्वैकरूपां दृषदि हृदि मृदि क्वापि वा भावयित्वा।
पुष्पैर्गन्धैर्निवेद्यैरपि च विरचितैः शक्तितो भक्तिपूतै-
र्नित्यं वर्यां सपर्यां विदधदयि विभो त्वत्प्रसादं भजेयम्॥ २॥

अयि विभो! सकाम अनुष्ठानसे भिन्न जो दूसरा आपका भजनमय कर्मयोग है, उस मार्गमें मैं पत्थर, मिट्टी अथवा हृदय—कहीं भी अपने इष्टदेवकी शुद्ध सत्त्वमयी मनोहर मूर्तिकी कल्पना करके भक्ति-भावपूर्वक यथाशक्ति सम्पादित पुष्प-गन्ध-नैवेद्य आदि सामग्रियों-द्वारा नित्य उत्तम पूजाका अनुष्ठान करता हुआ आपके कृपा-प्रसादका भागी बनूँ॥ २॥

स्त्रीशूद्रास्त्वत्कथादिश्रवणविरहिता आसतां ते दयार्हा-
स्त्वत्पादासन्नयातान् द्विजकुलजनुषो हन्त शोचाम्यशान्तान्।
वृत्त्यर्थं ते यजन्तो बहुकथितमपि त्वामनाकर्णयन्तो
दृप्ता विद्याभिजात्यैः किमु न विदधते तादृशं मा कृथा माम्॥ ३॥

भगवन्! स्त्री और शूद्र, जो आपकी कथा आदिके श्रवणसे हीन हैं, वे तो दयाके पात्र हैं ही, उनकी बात छोड़िये। मुझे सोच तो उन लोगोंका है, जो द्विजकुलमें जन्म लेकर आपके चरणोंके निकट पहुँचनेके अधिकारी होकर भी अशान्त—विषयपरायण हो रहे हैं। वे जीविकानिर्वाहके निमित्त (हिंसापूर्ण) यज्ञोंका अनुष्ठान कराते हैं। श्रुतियोंमें अनेकों प्रकारसे आपका वर्णन होनेपर भी उसे वे अनसुनी कर रहे हैं। विद्या और उत्तम कुलके अभिमानसे उन्मत्त होकर वे क्या नहीं करते हैं। अतः प्रभो! मुझे वैसा आत्मघाती मत बनाइये॥ ३॥

पापोऽयं कृष्ण रामेत्यभिलपति निजं गूहितुं दुश्चरित्रं
निर्लज्जस्यास्य वाचा बहुतरकथनीयानि मे विघ्नितानि।
भ्राता मे वन्ध्यशीलो भजति किल सदा विष्णुमित्थं बुधांस्ते
निन्दन्त्युच्चैर्हसन्ति त्वयि निहितमतींस्तादृशं मा कृथा माम्॥ ४॥

"यह पापी अपने दुष्कर्मको छिपानेके लिये 'हरे कृष्ण! हरे राम!' इत्यादि व्यर्थ ही बकता रहता है। इस निर्लज्जके कोलाहलपूर्ण वचनसे मेरे बहुत-से वक्तव्योंमें विघ्न पड़ गया। मेरा भाई निरर्थक ही सदा विष्णुका भजन करता है।"—यों कहते हुए वे अशान्त जन विद्वानोंकी निन्दा करते हैं और आपसे प्रेम करनेवालोंका खुलकर परिहास करते हैं। प्रभो! मुझे वैसा दुष्कर्मी मत बनाना॥ ४॥

श्वेतच्छायं कृते त्वां मुनिवरवपुषं प्रीणयन्ते तपोभि-
स्त्रेतायां स्रुक्स्रुवाद्यङ्कितमरुणतनुं यज्ञरूपं यजन्ते।
सेवन्ते तन्त्रमार्गैर्विलसदरिगदं द्वापरे श्यामलाङ्गं
नीलं संकीर्तनाद्यैरिह कलिसमये मानुषास्त्वां भजन्ते॥ ५॥

कृतयुगमें आपके शरीरका वर्ण शुक्ल होता है और आप ब्रह्मचारी-रूपमें प्रकट होते हैं। उस समय मानव तपस्याद्वारा आपको प्रसन्न करते हैं। त्रेतामें आप अरुणवर्णके हो जाते हैं और स्रुक्-स्रुवा आदिसे सुशोभित आप यज्ञेशका लोग यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं। द्वापरमें आपकी अङ्गकान्ति अतसी-कुसुम-सदृश श्यामल होती है और आप चक्र-गदा आदि आयुधोंसे विभूषित रहते हैं। उस समय मानव तन्त्र-मार्गोंद्वारा आपकी उपासना करते हैं। कलियुगमें आप कृष्णवर्णके हो जाते हैं, उस समय लोग नाम-संकीर्तन आदि उपायोंद्वारा आपका भजन करते हैं॥ ५॥

सोऽयं कालेयकालो जयति मुररिपो यत्र संकीर्तनाद्यै-
र्निर्यत्नैरेव मार्गैरखिलद नचिरात् त्वत्प्रसादं भजन्ते।
जातास्त्रेताकृतादावपि हि किल कलौ सम्भवं कामयन्ते
दैवात् तत्रैव जातान् विषयविषरसैर्मा विभो वञ्चयास्मान्॥ ६॥

मुरारे! वही यह कलियुग सभी युगोंसे उत्कृष्ट हो रहा है; क्योंकि इस कलियुगमें लोग आयासरहित संकीर्तन आदि उपायोंद्वारा शीघ्र ही आपके कृपा-प्रसादको प्राप्त कर लेते हैं। सर्वस्व-दानी! इसीलिये कृतयुग और त्रेतामें उत्पन्न हुए लोग भी कलियुगमें जन्मकी कामना करते हैं। विभो! उसी कलियुगमें दैववश उत्पन्न हुए हमलोगोंकी विषयरूपी विष-रसद्वारा प्रवञ्चना मत कीजिये (अपनी प्राप्ति कराकर कृतार्थ कर दीजिये)॥ ६॥

भक्तास्तावत्कलौ स्युर्द्रमिलभुवि ततो भूरिशस्तत्र चोच्चैः
कावेरीं ताम्रपर्णीमनु किल कृतमालां च पुण्यां प्रतीचीम्।
हा मामप्येतदन्तर्भवमपि च विभो किंचिदञ्चद्रसं त्व-
य्याशापाशैर्निबध्य भ्रमय न भगवन् पूरय त्वन्निषेवाम्॥ ७॥

पहले भी कलियुगमें द्रमिल-प्रदेश (द्रविड़ देश)-में बहुत-से भक्त हो गये हैं। उस द्रमिल-प्रदेशमें भी पुण्यवती कावेरी, ताम्रपर्णी, कृतमाला और पश्चिमवाहिनी [नर्मदा]-के तटपर तो उनसे भी उच्चकोटिके भगवद्भक्त हो गये हैं। विभो! हाय! मेरा भी जन्म उस द्रमिल-प्रदेशके अन्तर्गत ही है और मैं आपकी भक्तिका भी कुछ रस ले रहा हूँ; अतः भगवन्! मुझे आशापाशसे निगडित करके भवाटवीमें भ्रमण मत कराइये, बल्कि मुझमें अपनी भक्तिको पूर्ण कर दीजिये॥ ७॥

दृष्ट्वा धर्मद्रुहं तं कलिमपकरुणं प्राङ् महीक्षित् परीक्षि-
द्धन्तुं व्याकृष्टखड्गोऽपि न विनिहतवान् सारवेदी गुणांशात्।
त्वत्सेवाद्याशु सिध्येदसदिह न तथा त्वत्परे चैष भीरु-
र्यत्तु प्रागेव रोगादिभिरपहरते तत्र हा शिक्षयैनम्॥ ८॥

पूर्वकालमें भूपाल परीक्षित्ने इस धर्मद्रोही निर्दय कलियुगको देखकर उसे मार डालनेके लिये तलवार खींच ली थी; परंतु वे तो गुणके सार-अंशको जाननेवाले थे, अतः उन्होंने उसका वध नहीं किया। इस कलियुगमें आपकी भक्ति शीघ्र ही सिद्ध हो जाती है, परंतु दुष्कर्म उतनी जल्दी सिद्ध नहीं होता। साथ ही यह कलियुग भगवद्भक्तोंसे भय भी खाता है। यह भजनारम्भसे पूर्व ही रोगादिद्वारा लोगोंको भजनसे निवारण करनेकी चेष्टा करता है। हाय! उसी रोगने मुझे आ घेरा है, अतः भगवन्! उसका अपहरण करनेके लिये आप इस कलियुगको शिक्षा दीजिये॥ ८॥

गङ्गा गीता च गायत्र्यपि च तुलसिका गोपिकाचन्दनं तत्
शालग्रामाभिपूजा परपुरुष तथैकादशी नामवर्णाः।
एतान्यष्टाप्ययत्नान्ययि कलिसमये त्वत्प्रसादप्रसिध्या
क्षिप्रं मुक्तिप्रदानीत्यभिदधुर्ऋषयस्तेषु मां सज्जयेथाः॥ ९॥

अयि परमपुरुष! गङ्गा, गीता, गायत्री, तुलसी, गोपीचन्दन, शालग्राम-पूजन, एकादशी-व्रत और नाम-जप—ये आठों पदार्थ कलियुगमें

अनायास ही उपलब्ध होनेवाले हैं और आपकी कृपाके प्रभावसे ये शीघ्र ही मुक्ति प्रदान करनेवाले भी हैं—ऐसा ऋषियोंका कथन है। अतः भगवन्! मेरे मनको उन्हींमें संलग्न कर दीजिये॥ ९॥

देवर्षीणां पितॄणामपि न पुनरृणी किङ्करो वा स भूमन्
योऽसौ सर्वात्मना त्वां शरणमुपगतः सर्वकृत्यानि हित्वा।
तस्योत्पन्नं विकर्माप्यखिलमपनुदस्येव चित्तस्थितस्त्वं
तन्मे पापोत्थतापान् पवनपुरपते रुन्धि भक्तिं प्रणीयाः॥ १०॥

भूमन्! जो पुरुष समस्त कर्मोंका परित्याग करके सर्वभावसे आपके शरणापन्न हो गया है, वह पुनः न तो देव, ऋषि और पितरोंका ऋणी ही होता है और न किंकर ही; क्योंकि उसके चित्तमें स्थित आप उसके द्वारा संघटित हुए सम्पूर्ण निषिद्ध कर्मोंका विनाश ही कर देते हैं। इसीलिये हे पवनपुरपते! मेरे पापजनित संतापको दूर कर दीजिये और अपनी अनपायिनी भक्ति प्रदान कीजिये॥ १०॥

॥ इति कर्ममिश्रभक्तिस्वरूपवर्णनं द्विनवतितमदशकं समाप्तम्॥

त्रिनवतितमदशकम्

पचीस गुरुओंकी शिक्षाका वर्णन

बन्धुस्नेहं विजह्यां तव हि करुणया त्वय्युपावेशितात्मा
सर्वं त्यक्त्वा चरेयं सकलमपि जगद्वीक्ष्य मायाविलासम्।
नानात्वाद् भ्रान्तिजन्यात् सति खलु गुणदोषावबोधे विधिर्वा
व्यासेधो वा कथं तौ त्वयि निहितमतेर्वीतवैषम्यबुद्धेः॥ १॥

प्रभो! आपकी ही कृपासे आपमें चित्त निवेशित करके मैं कौटुम्बिक स्नेहका त्याग कर दूँ और सारे जगत्को मायाका विलास समझकर सारे विधि-निषेधमय कर्मोंका परित्याग करके विचरण करूँ; क्योंकि वर्णाश्रमादि भेद भ्रान्तिजन्य होनेके कारण गुण-दोषका ज्ञान होनेपर ही विधि-निषेध होते हैं। परंतु जिसकी बुद्धि आपमें निहित

है अतएव जिसका नानात्वभ्रम नष्ट हो गया है, ऐसे मेरे लिये विधि-निषेध कैसे हो सकते हैं॥ १॥

क्षुत्तृष्णालोपमात्रे सततकृतधियो जन्तवः सन्त्यनन्ता-
स्तेभ्यो विज्ञानवत्त्वात् पुरुष इह वरस्तज्जनिर्दुर्लभैव।
तत्राप्यात्माऽऽत्मनः स्यात् सुहृदपि च रिपुर्यस्त्वयि न्यस्तचेता-
स्तापोच्छित्तेरुपायं स्मरति स हि सुहृत् स्वात्मवैरी ततोऽन्यः॥ २॥

इस भूतलपर भूख-प्यासकी निवृत्तिके लिये सतत प्रयत्न करनेवाले पशु आदि असंख्य जीव हैं, परंतु विज्ञानसम्पन्न होनेके कारण मनुष्य उन सबसे श्रेष्ठ है। इसीलिये मनुष्य-जन्मका प्राप्त होना दुर्लभ ही है। मनुष्योंमें भी आत्मा ही अपना मित्र तथा आत्मा ही अपना शत्रु है। जो आपमें दत्तचित्त होकर मोक्षोपायको जानता है, वह सुहृद् है और उससे भिन्न अपना वैरी है॥ २॥

त्वत्कारुण्ये प्रवृत्ते क इव नहि गुरुर्लोकवृत्तेऽपि भूमन्
सर्वाक्रान्तापि भूमिर्नहि चलति ततः सत्क्षमां शिक्षयेयम्।
गृह्णीयामीश तत्तद्विषयपरिचयेऽप्यप्रसक्तिं समीराद्
व्याप्तत्वं चात्मनो मे गगनगुरुवशाद्भातु निर्लेपता च॥ ३॥

भूमन्! लोकव्यवहारमें भी दया होनेपर स्थावर-जंगम वस्तुओंमेंसे कौन गुरु (शिक्षाप्रद) नहीं हो सकता है? अर्थात् सभी हो सकते हैं। भूमि सबसे आक्रान्त होनेपर भी अपने स्थानसे विचलित नहीं होती है, अतः पृथ्वीसे मैं उत्तम क्षमाकी शिक्षा लूँगा। ईश! भिन्न-भिन्न विषयोंके साथ सम्पर्क होनेपर भी उनमें आसक्त न होनेकी शिक्षा मैं वायुसे ग्रहण करूँगा। आत्मा शरीरके बाहर-भीतर व्याप्त है, साथ ही वह निर्लेप भी है—यह शिक्षा मुझे आकाशरूपी गुरुसे प्राप्त होगी॥ ३॥

स्वच्छः स्यां पावनोऽहं मधुर उदकवद्वह्निवन्मा स्म गृह्णां
सर्वान्नीनोऽपि दोषं तरुषु तमिव मां सर्वभूतेष्ववेयाम्।
पुष्टिर्नष्टिः कलानां शशिन इव तनोर्नात्मनोऽस्तीति विद्यां
तोयादिव्यस्तमार्तण्डवदपि च तनुष्वेकतां त्वत्प्रसादात्॥ ४॥

भगवन्! आपकी कृपासे मैं जलकी भाँति निर्मल, पावन तथा मधुर स्वभाववाला होऊँ। सर्वभक्षी होनेपर भी मैं अग्नि-सदृश दोषभागी न होऊँ। जैसे वृक्षोंमें अग्नि व्याप्त है, उसी प्रकार मैं भी सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मरूपसे वर्तमान हूँ—ऐसा ज्ञान प्राप्त करूँ। चन्द्रमाकी कलाओंका जैसे क्षय और पोषण होता है, किंतु चन्द्रमाका नहीं, वैसे ही शरीरके ही अवयवोंमें षड्भावविकार होते रहते हैं, उनसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं होता तथा जैसे एक ही सूर्य विभिन्न घटोदकोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रतिभासित होता है वस्तुतः वह है एक ही, उसी प्रकार विभिन्न शरीरोंमें विभिन्न रूपसे लक्षित होनेपर भी आत्मा एक ही है—ऐसा अभेद-ज्ञान मैं सूर्यसे प्राप्त करूँ॥ ४॥

स्नेहाद् व्याधास्तपुत्रप्रणयमृतकपोतायितो मा स्म भूवं
प्राप्तं प्राश्नन् सहेय क्षुधमपि शयुवत् सिन्धुवत् स्यामगाधः।
मा पप्तं योषिदादौ शिखिनि शलभवद् भृङ्गवत् सारभागी
भूयासं किंतु तद्वद्धनचयनवशान्माहमीश प्रणेशम्॥ ५॥

ईश! व्याधद्वारा पकड़े गये पुत्रोंके प्रेमवश प्राण समर्पण करनेवाले कपोतके समान मैं स्नेहवश कुटुम्बमें आसक्त न होऊँ। अजगरकी तरह यदृच्छाप्राप्त पदार्थोंको खाकर भूखको भी सहन करनेमें समर्थ बनूँ। सिन्धु-तुल्य अगाध होऊँ। जैसे पतिंगे अग्निपर मोहित होकर उसमें कूदकर जल मरते हैं, उसी तरह स्त्रियोंपर भोग्यबुद्धिसे आसक्त होकर मैं भी नष्ट न हो जाऊँ। भौंरेकी तरह सारग्राही बनूँ। परंतु कहीं ऐसा न हो कि जैसे भ्रमर पुष्प-रसको एकत्रित करनेमें तन्मय हो जाता है और सायंकाल पुष्पके बंद हो जानेपर उसीमें बँध जाता है, वैसे ही मैं भी धन-संग्रहके वशीभूत होकर नष्ट हो जाऊँ॥ ५॥

मा बध्यासं तरुण्या गज इव वशया नार्जयेयं धनौघं
हर्तान्यस्तं हि माध्वीहर इव मृगवन्मा मुहं ग्राम्यगीतैः।
नात्यासज्जेय भोज्ये झष इव बडिशे पिङ्गलावन्निराशः
सुप्यां भर्तव्ययोगात् कुरर इव विभो सामिषोऽन्यैर्न हन्यै॥ ६॥

विभो! जैसे मैथुनकी इच्छावाली हथिनीके अङ्ग-सङ्गसे गजेन्द्र

बन्धनमें पड़ जाता है, उसी प्रकार तरुणी स्त्रीमें आसक्त होकर मैं भी बन्धनका भागी न बनूँ। (मधुमक्खीकी भाँति त्याग-भोगविहीन) धनराशिका संचय न करूँ; क्योंकि शहद निकालनेवाले पुरुषकी तरह उसे दूसरे ही लोग हरण कर लेंगे। शिकारीकी वीणाके शब्दपर मुग्ध हुए मृगकी भाँति मैं ग्राम्य-गीतोंसे मोहित न होऊँ। जैसे काँटेमें लगे हुए मांसमें स्वादवश मछली आसक्त हो जाती है, उसी प्रकार मेरी स्वादिष्ट भोज्य पदार्थोंमें अधिक आसक्ति न हो। मैं पिङ्गलाके समान भर्तव्ययोगसे निराश होकर सुखपूर्वक शयन करूँ। आमिषयुक्त एक कुररपक्षीको देखकर जैसे दूसरे बलवान् कुरर झपट पड़ते हैं, उसी प्रकार मैं भी रक्षणीय धनके सम्बन्धसे अन्य बलवानोंद्वारा मार न डाला जाऊँ॥ ६॥

वर्तेय त्यक्तमानः सुखमतिशिशुवन्निस्सहायश्चरेयं
कन्याया एकशेषो वलय इव विभो वर्जितान्योन्यघोषः।
त्वच्चित्तो नावबुध्यै परमिषुकृदिव क्ष्माभृदायानघोषं
गेहेष्वन्यप्रणीतेष्वहिरिव निवसान्युन्दुरोर्मन्दिरेषु॥ ७॥

विभो! अबूझ शिशु-तुल्य मानापमानका त्याग करके मैं सुखपूर्वक व्यवहार करूँ। जैसे कुमारी कन्याने शब्दके भयसे अपनी सभी चूड़ियोंको तोड़कर केवल एकको ही छोड़ रखा था, उसी प्रकार मैं भी पारस्परिक व्यर्थके वार्तालापोंसे दूर रहकर अकेला ही विचरण करूँ। मनोयोगपूर्वक कार्यमें संलग्न रहनेके कारण जैसे बाणकर्ताको निकटसे जाते हुए राजाकी सवारीका शब्द नहीं सुन पड़ा, वैसे ही मैं भी आपमें ऐसा दत्तचित्त हो जाऊँ जिससे मुझे दूसरेका भान ही न हो। जैसे सर्प चूहोंके बनाये हुए बिलोंमें निवास करता है, उसी प्रकार मैं भी गृहासक्तिका त्याग करके दूसरोंद्वारा बनाये हुए घरोंमें निवास करता हुआ काल-यापन करूँ॥ ७॥

त्वय्येव त्वत्कृतं त्वं क्षपयसि जगदित्यूर्णनाभात् प्रतीयां
त्वच्चिन्ता त्वत्स्वरूपं कुरुत इति दृढं शिक्षये पेशकारात्।

विड्भस्मात्मा च देहो भवति गुरुवरो यो विवेकं विरक्तिं
धत्ते संचिन्त्यमानो मम तु बहुरुजापीडितोऽयं विशेषात्॥ ८॥

जैसे मकड़ी स्वनिर्मित तन्तुवितानको पुनः अपनेमें ही समेट लेती है, उसी प्रकार आप स्वरचित जगत्को स्वयं अपनेमें ही लीन कर लेते हैं—ऐसा ज्ञान मैं मकड़ीसे ग्रहण करूँ। आपका ध्यान आपके सारूप्यको प्राप्त करानेवाला है—ऐसी सुदृढ़ शिक्षा मैं भृंगी कीटसे प्राप्त करूँ। जिसका अन्तिम परिणाम दूसरोंद्वारा खाये जानेपर विष्ठा और जलाये जानेपर भस्म है, वह यह मेरा शरीर भी एक श्रेष्ठ गुरु है; क्योंकि सम्यक् विचार करनेपर यह विवेक-विरक्तिका आधार बनता है। किंतु मेरा यह शरीर तो अनेकों व्याधियोंसे पीड़ित है, इसलिये विशेष रूपसे विवेक-विरक्तिका कारण हो रहा है॥ ८॥

ही ही मे देहमोहं त्यज पवनपुराधीश यत्प्रेमहेतो-
र्गेहे वित्ते कलत्रादिषु च विवशितास्त्वत्पदं विस्मरन्ति।
सोऽयं वह्नेः शुनो वा परमिह परतः साम्प्रतं चाक्षिकर्ण-
त्वग्जिह्वाद्या विकर्षन्त्यवशमत इतः कोऽपि न त्वत्पदाब्जे॥ ९॥

पवनपुराधीश! हाय! हाय! जिस शरीरमें प्रेम होनेके कारण लोग गेह, वित्त, कलत्रादिमें आसक्त होकर उन्हींके योगक्षेमकी चिन्तामें ग्रस्त रहते हैं, जिससे उन्हें आपके चरणोंकी विस्मृति हो जाती है; मेरे उस देहकी ममताको छुड़ा दीजिये। वही यह शरीर प्राण निकल जानेपर अग्नि अथवा कुत्तेका भोजन हो जाता है तथा जीवित रहनेपर आँख, कान, त्वचा, जिह्वा आदि इन्द्रियाँ इसे परवशकी भाँति इधर-उधर अपने-अपने विषयोंकी ओर खींचती रहती हैं। इनमेंसे कोई भी इसे आपके चरणकमलकी ओर प्रेरित नहीं करती॥ ९॥

दुर्वारो देहमोहो यदि पुनरधुना तर्हि निश्शेषरोगान्
हत्वा भक्तिं द्रढिष्ठां कुरु तव पदपङ्केरुहे पङ्कजाक्ष।
नूनं नानाभवान्ते समधिगतमिमं मुक्तिदं विप्रदेहं
क्षुद्रे हा हन्त मा मा क्षिप विषयरसे पाहि मां मारुतेश॥ १०॥

कमलनयन! यदि इस समय पुनः इस देह-मोहका परित्याग करना दुष्कर है तो इस जन्ममें मेरे समस्त रोगोंका विनाश करके अपने चरण-कमलमें मेरी भक्ति सुदृढ़ कर दीजिये। निश्चय ही यह मुक्तिदायक ब्राह्मण-शरीर मुझे अनेकों जन्मोंके पश्चात् प्राप्त हुआ है। हाय! हाय! इसे क्षुद्र विषयभोगोंमें मत लगाइये, मत लगाइये। मारुतेश! मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति गुरुशिक्षावर्णनं त्रिनवतितमदशकं समाप्तम्॥

चतुर्नवतितमदशकम्

तत्त्वज्ञानोत्पत्तिप्रकार, बन्ध-मोक्षस्वरूप तथा अभक्त-निन्दापूर्वक भक्ति-प्रार्थना

शुद्धा निष्कामधर्मैः प्रवरगुरुगिरा तत्स्वरूपं परं ते
शुद्धं देहेन्द्रियादिव्यपगतमखिलव्याप्तमावेदयन्ते।
नानात्वस्थौल्यकार्श्यादि तु गुणजवपुस्सङ्गतोऽध्यासितं ते
वह्नेर्दारुप्रभेदेष्विव महदणुतादीप्तताशान्ततादि॥ १॥

निष्काम-धर्मोंके अनुष्ठानसे शुद्ध हुए भक्तजन श्रेष्ठ गुरुके उपदेशसे आपके उस शुद्ध परब्रह्मस्वरूपका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, जो देह-इन्द्रिय आदिसे व्यतिरिक्त तथा सबमें व्याप्त है। आपके उस स्वरूपकी जो स्थूलता और कृशतारूपसे नानात्वकी प्रतीति होती है, वह तो मायामय शरीरोपाधिद्वारा उसी प्रकार कल्पित है, जैसे विभिन्न काष्ठोंमें स्थित अग्निमें अपने आधारानुकूल महत्त्व, अणुत्व, दीप्तिमत्त्व तथा शान्तत्वकी प्रतीति होती है॥ १॥

आचार्याख्याधरस्थारणिसमनुमिलच्छिष्यरूपोत्तरार-
ण्यावेधोद्भासितेन स्फुटतरपरिबोधाग्निना दह्यमाने।
कर्मालीवासनातत्कृततनुभुवनभ्रान्तिकान्तारपूरे
दाह्याभावेन विद्याशिखिनि च विरते त्वन्मयी खल्ववस्था॥ २॥

आचार्य नामक नीचेके मन्थनकाष्ठसे जब शिष्यरूप ऊपरका मन्थनकाष्ठ सम्मिलित होता है, तब दोनोंके संघर्षसे सम्यग् ज्ञानरूप अग्नि प्रकट हो जाती है। उस ज्ञानाग्निके द्वारा जब सजातीयकर्मोत्पादक संस्कारजनित शरीरादिप्रपञ्चविषयक अज्ञानरूप वनसमूह भस्म हो जाता है, तब इन्धनाभावके कारण वह ज्ञानाग्नि स्वयं शान्त हो जाती है। उस समय केवल त्वन्मयी अवस्था शेष रह जाती है अर्थात् भक्त सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाता है॥ २॥

एवं त्वत्प्राप्तितोऽन्यो न हि खलु निखिलक्लेशहानेरुपायो
नैकान्तात्यन्तिकास्ते कृषिवदगदषाड्गुण्यषट्कर्मयोगाः।
दुर्वैकल्यैरकल्या अपि निगमपथास्तत्फलान्यप्यवाप्ता
मत्तास्त्वां विस्मरन्तः प्रसजति पतने यान्त्यनन्तान् विषादान्॥ ३॥

इस प्रकार आपकी प्राप्तिके अतिरिक्त सम्पूर्ण क्लेशोंकी निवृत्तिका कोई अन्य उपाय नहीं है। जो आरोग्य आदिके उपाय औषध, अर्थोपार्जनके उपाय षाड्गुण्य, षट्कर्म तथा वेदोक्त उपाय हैं, वे सभी कृषिकी भाँति न तो सकल दुःखोंका निवारण ही कर सकते हैं, न दुःखोंकी पुनरावृत्तिको ही रोक सकते हैं तथा जो वैदिक मार्ग हैं, वे भी अपरिहरणीय विगुणताके कारण क्लेश-निवारणमें असमर्थ हैं। यदि किसी प्रकार किन्हींको उसके फलस्वरूप स्वर्गकी प्राप्ति हो भी गयी तो वे स्वर्ग-सुखसे उन्मत्त होकर आपको भूल जाते हैं जिससे पुण्यक्षय होनेसे पतनका प्रसङ्ग उपस्थित होनेपर असंख्य विषादोंके भागी होते हैं॥ ३॥

त्वल्लोकादन्यलोकः क्व नु भयरहितो यत् परार्द्धद्वयान्ते
त्वद्भीतः सत्यलोकेऽपि न सुखवसतिः पद्मभूः पद्मनाभ।
एवम्भावे त्वधर्मार्जितबहुतमसां का कथा नारकाणां
तं मे त्वं छिन्धि बन्धं वरद कृपणबन्धो कृपापूरसिन्धो॥ ४॥

पद्मनाभ! आपके वैकुण्ठलोकके अतिरिक्त कौन ऐसा लोक है जो भयसे रहित है? दो परार्ध बीतनेपर जिसका अन्त हो जाता है उस सत्यलोकमें भी कमलयोनि ब्रह्मा (कालस्वरूप) आपसे भयभीत

रहनेके कारण सुखपूर्वक निवास नहीं कर पाते हैं। दीनबन्धो! जब ब्रह्माकी यह दशा है, तब जिन्होंने अधर्मोंद्वारा बहुत-से क्लेशोंकी राशि इकट्ठी कर रखी है उन नारकी जनोंकी कथा क्या कही जाय? अतः कृपाके अथाह सागर वरदानी भगवन्! आप मेरे बन्धनको काट दीजिये अर्थात् मुझे मोक्ष प्रदान कीजिये॥ ४॥

याथार्थ्यात् त्वन्मयस्यैव हि मम न विभो वस्तुतो बन्धमोक्षौ
मायाविद्यातनुभ्यां तव तु विरचितौ स्वप्नबोधोपमौ तौ।
बद्धे जीवद्विमुक्तिं गतवति च भिदा तावती तावदेको
भुङ्क्ते देहद्रुमस्थो विषयफलरसान्नापरो निर्व्यथात्मा॥ ५॥

विभो! यथार्थमें तो मैं आपका ही अभिन्न स्वरूप हूँ, अतः मेरे लिये वस्तुतः बन्ध-मोक्ष हैं ही नहीं; तथापि आपकी माया और विद्यारूप दोनों शक्तियोंद्वारा इन (बन्ध-मोक्ष)-का निर्माण हुआ है। अतः ये दोनों स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थाके समान हैं। इन दोनों बद्ध-मुक्त जीवोंमें विलक्षणता यह है कि संसारी (बद्ध) जीव तथा जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त हुआ मुक्त जीव—ये दोनों शरीररूपी वृक्षपर बैठे हैं। इनमेंसे एक तो विषयरूपी फलोंके रसको चख रहा है, परंतु दूसरा नहीं। वह अपनी ज्ञानशक्तिके प्रभावसे पीड़ाका भी अनुभव नहीं कर रहा है॥ ५॥

जीवन्मुक्तत्वमेवंविधमिति वचसा किं फलं दूरदूरे
तन्नामाशुद्धबुद्धेर्न च लघु मनसः शोधनं भक्तितोऽन्यत्।
तन्मे विष्णो कृषीष्ठास्त्वयि कृतसकलप्रार्पणं भक्तिभारं
येन स्यां मङ्क्षु किंचिद्गुरुवचनमिलत्त्वत्प्रबोधस्त्वदात्मा॥ ६॥

जीवन्मुक्तत्व ऐसा प्रभावशाली है—यों कथनमात्रसे क्या फल है? उसकी प्राप्ति तो हो सकती नहीं; क्योंकि अशुद्ध बुद्धिवाले पुरुषके लिये जीवन्मुक्ति बहुत दूर है। तथा मनकी शुद्धिके लिये भक्तिके सिवा कोई अन्य सरल उपाय है भी नहीं। अतः विष्णो! जिसमें शरीर तथा तत्सम्बन्धी सभी पदार्थोंका समर्पण हो जाता है, वह अपनी अनपायिनी भक्ति मुझे प्रदान कीजिये; जिसके प्रभावसे मैं शीघ्र ही गुरूपदेशद्वारा उत्पन्न हुए ब्रह्मज्ञानसे युक्त होकर आपके सारूप्यको प्राप्त कर लूँ॥ ६॥

**शब्दब्रह्मण्यपीह प्रयतितमनसस्त्वां न जानन्ति केचित्
कष्टं बन्ध्यश्रमास्ते चिरतरमिह गां बिभ्रते निष्प्रसूतिम्।
यस्यां विश्वाभिरामाः सकलमलहरा दिव्यलीलावताराः
सच्चित्सान्द्रं च रूपं तव न निगदितं तां न वाचं भ्रियासम्॥ ७॥**

इस जगत्में कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो शब्दब्रह्म (साङ्गवेद)-में परिश्रम करनेपर भी परब्रह्मस्वरूप आपको नहीं जानते हैं अर्थात् आपकी उपासना नहीं करते हैं। कष्ट है कि उनका वह परिश्रम व्यर्थ ही गया। वे दीर्घकालतक भक्ति-ज्ञानरूप फलोत्पादनसे रहित जल्प-वितण्डारूप वाणीको धारण करते हैं अथवा प्रसवरहित अतएव दुग्धहीन गौका पोषण करते हैं। परंतु जिस वाणीमें सबको आनन्दित करनेवाली, समस्त पापापहारिणी अवतारसम्बन्धी दिव्य लीलाओंका वर्णन नहीं है तथा आपके सच्चिदानन्दस्वरूपका निरूपण नहीं है, उस वाणीको मैं व्यवहारमें न लाऊँ॥ ७॥

**यो यावान् यादृशो वा त्वमिति किमपि नैवावगच्छामि भूम-
न्नेवं चानन्यभावस्त्वदनुभजनमेवाद्रिये चैद्यवैरिन्।
त्वल्लिङ्गानां त्वदङ्घ्रिप्रियजनसदसां दर्शनस्पर्शनादि-
र्भूयान्मे त्वत्प्रपूजानतिनुतिगुणकर्मानुकीर्त्यादरोऽपि॥ ८॥**

भूमन्! आप जिस स्वरूपवाले हैं, आपकी जैसी महिमा है और आप जिस धर्मवाले हैं—यह सब मैं कुछ भी नहीं जानता। इसलिये शिशुपालके शत्रु! मैं अनन्यभावपूर्वक आपके भजनमें ही मन लगाये हुए हूँ। अतः मुझे आपकी प्रतिमाओं तथा आपके चरणसेवी प्रियजनोंकी सभाओंके दर्शन-स्पर्श आदिका सौभाग्य प्राप्त हो और आपके समग्रोपचारयुक्त पूजन, नमस्कार, स्तवन तथा सत्त्वादि गुणोंद्वारा किये गये सृष्टि आदि कर्मोंके अनुकीर्तनमें भी मेरा मन सादर लगा रहे॥ ८॥

**यद्यल्लभ्येत तत्तत्तव समुपहृतं देव दासोऽस्मि तेऽहं
त्वद्गेहोन्मार्जनाद्यं भवतु मम मुहुः कर्म निर्मायमेव।
सूर्याग्निब्राह्मणात्मादिषु लसितचतुर्बाहुमाराधये त्वां
त्वत्प्रेमार्द्रत्वरूपो मम सततमभिष्यन्दतां भक्तियोगः॥ ९॥**

देव! जो-जो वस्तु मुझे प्राप्त हो, वह सब आपके अर्पण करता रहूँ। मैं आपका दास हूँ। मेरे द्वारा बारंबार आपके मन्दिरमें झाड़ू लगाने आदिका कार्य निश्छलभावसे चलता रहे। मैं सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण और आत्मा आदिमें चार भुजाओंसे सुशोभित आपकी आराधना करता रहूँ और मेरे हृदयमें आपके प्रेमसे आर्द्रस्वरूप भक्तियोग निरन्तर प्रवाहरूपसे बहता रहे॥ ९॥

ऐक्यं ते दानहोमव्रतनियमतपस्सांख्ययोगैर्दुरापं
त्वत्सङ्गेनैव गोप्यः किल सुकृतितमाः प्रापुरानन्दसान्द्रम्।
भक्तेष्वन्येषु भूयस्स्वपि बहु मनुषे भक्तिमेव त्वमासां
तन्मे त्वद्भक्तिमेव द्रढय हर गदान् कृष्ण वातालयेश॥ १०॥

श्रीकृष्ण! आपका घनीभूत आनन्दरूप सारूप्य-मोक्ष दान, हवन, व्रत, नियम, तप और सांख्ययोगद्वारा भी दुष्प्राप्य है, परंतु पुण्यशालिनी गोपिकाओंने उसे आपके सङ्गसे ही प्राप्त कर लिया। इसी कारण अन्य उद्धवादि बहुत-से भक्तोंके उपस्थित रहनेपर भी आप गोपिकाओंकी ही भक्तिको अधिक आदर देते हैं। अतः अपने चरणोंमें मेरी भक्तिको सुदृढ़ कर दीजिये। वातालयेश! मेरे रोगोंको हर लीजिये॥ १०॥

॥ इति तत्त्वज्ञानोत्पत्तिप्रकारादिवर्णनं चतुर्नवतितमदशकं समाप्तम्॥

पञ्चनवतितमदशकम्

भक्तिद्वारा विशुद्धचित्तकी ही भगवत्स्वरूप-ध्यानयोग्यताका वर्णन

आदौ हैरण्यगर्भीं तनुमविकलजीवात्मिकामास्थितस्त्वं
जीवत्वं प्राप्य मायागुणगणखचितो वर्तसे विश्वयोने।
तत्रोद्वृद्धेन सत्त्वेन तु गुणयुगलं भक्तिभावं गतेन
च्छित्त्वा सत्त्वं च हित्वा पुनरनुपहितो वर्तिताहे त्वमेव॥ १॥

विश्वयोने! सृष्टिके आदिमें आप सम्पूर्ण जीवमय हिरण्यगर्भसम्बन्धी शरीर धारण करते हैं अर्थात् ब्रह्माके रूपमें प्रकट होते हैं। तत्पश्चात् जीवत्वको प्राप्त होकर मायाके गुणसमूहोंसे संयुक्त हो संसारीका-सा व्यवहार करते हैं। उस समय बढ़े हुए अतएव भक्तिभावको प्राप्त हुए सत्त्वगुणसे रज-तम—इन दोनों गुणोंका छेदन करके पुनः सत्त्वगुणको भी त्यागकर उपाधिरहित हो जाते हैं और एकमात्र आप ही शेष रहते हैं, उस अवस्थामें मैं आपसे अभिन्न हो जाता हूँ॥ १॥

सत्त्वोन्मेषात् कदाचित् खलु विषयरसे दोषबोधेऽपि भूमन्
भूयोऽप्येषु प्रवृत्तिः सतमसि रजसि प्रोद्धते दुर्निवारा।
चित्तं तावद् गुणाश्च ग्रथितमिह मिथस्तानि सर्वाणि रोद्धुं
तुर्ये त्वय्येकभक्तिः शरणमिति भवान् हंसरूपी न्यगादीत्॥ २॥

भूमन्! 'सत्त्वगुणके उद्रेकसे कभी-कभी विषय-रसके आस्वादनमें दोषका ज्ञान होनेपर भी रजोगुण और तमोगुणके उत्कृष्ट होनेपर उन विषयोंमें प्रवृत्तिको रोकना दुष्कर हो जाता है; क्योंकि उस समय विषय और चित्त परस्पर ग्रथित हो जाते हैं, अतः उन सबका त्याग करनेके लिये अवस्थात्रयातीत आपकी भक्ति ही एकमात्र शरण है'—ऐसा उपदेश हंसरूपधारी आपने ब्रह्माके समक्ष सनकादिकोंको दिया था॥ २॥

सन्ति श्रेयांसि भूयांस्यपि रुचिभिदया कर्मिणां निर्मितानि
क्षुद्रानन्दाश्च सान्ता बहुविधगतयः कृष्ण तेभ्यो भवेयुः।
त्वं चाचख्याथ सख्ये ननु महिततमां श्रेयसां भक्तिमेकां
त्वद्भक्त्यानन्दतुल्यः खलु विषयजुषां सम्मदः केन वा स्यात्॥ ३॥

श्रीकृष्ण! कर्माधिकारियोंके रुचि-भेदसे निर्मित बहुत-से श्रेयः-साधन वर्णित हैं और उन श्रेयः-साधनोंसे अनेक प्रकारकी गतियाँ भी प्राप्त होती हैं, परंतु वे गतियाँ स्वल्प सुखवाली तथा सान्त होती हैं। उन श्रेयः-साधनोंमें केवल भक्ति ही अतिशय श्रेष्ठ है—ऐसा आपने अपने सखा उद्धवसे वर्णन किया है; क्योंकि आपकी भक्तिसे जो

आनन्द सुलभ होता है उसके तुल्य सुख विषयी जनोंको किस विषयसे प्राप्त हो सकता है? अर्थात् किसीसे भी नहीं॥ ३॥

त्वद्भक्त्या तुष्टबुद्धेः सुखमिह चरतो विच्युताशस्य चाशाः
सर्वाः स्युः सौख्यमय्यः सलिलकुहरगस्येव तोयैकमय्यः।
सोऽयं खल्विन्द्रलोकं कमलजभवनं योगसिद्धीश्च हृद्या
नाकाङ्क्षत्येतदास्तां स्वयमनुपतिते मोक्षसौख्येऽप्यनीहः॥ ४॥

आपकी भक्तिके आश्रयसे जिसकी बुद्धि संतुष्ट हो गयी है अतएव जो विषय-तृष्णासे रहित हो गया है, वह सर्वत्र सुखपूर्वक विचरण करता है; क्योंकि उसके लिये सारी दिशाएँ उसी प्रकार सुखमयी हो जाती हैं, जैसे अगाध जलाशयमें पहुँच जानेपर जल-जन्तुके लिये सर्वत्र जल-ही-जल दीखता है। वह भक्त इन्द्रलोक, सत्यलोक तथा मनोहर योगसिद्धियोंकी भी आकांक्षा नहीं करता। इनकी बात तो जाने दीजिये, वह तो अनायास प्राप्त हुए मोक्ष-सुखके प्रति भी निरीह हो जाता है॥ ४॥

त्वद्भक्तो बाध्यमानोऽपि च विषयरसैरिन्द्रियाशान्तिहेतो-
र्भक्त्यैवाक्रम्यमाणैः पुनरपि खलु तैर्दुर्बलैर्नाभिजय्यः।
सप्तार्चिर्दीपितार्चिर्दहति किल यथा भूरिदारुप्रपञ्चं
त्वद्भक्त्योघे तथैव प्रदहति दुरितं दुर्मदः क्वेन्द्रियाणाम्॥ ५॥

यद्यपि विषय-वासनाएँ इन्द्रियोंकी अशान्तिके कारण आपके भक्तको अपनी ओर आकर्षित करनेकी चेष्टा करती हैं, परंतु वे उसपर विजय नहीं कर पातीं; क्योंकि बलवती भक्ति आक्रमण करके उन्हें पुनः दुर्बल बना देती है। जैसे दहकती हुई लपटोंवाली अग्नि महती काष्ठराशिको जला डालती है, उसी प्रकार आपकी भक्तिके प्रवाहमें पड़कर पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। भला, भक्तिके आगे इन्द्रियोंका गर्व कहाँ ठहर सकता है?॥ ५॥

चित्तार्द्रीभावमुच्चैर्वपुषि च पुलकं हर्षबाष्पं च हित्वा
चित्तं शुध्येत् कथं वा किमु बहुतपसा विद्यया वीतभक्तेः।

त्वद्गाथास्वादसिद्धाञ्जनसततमरीमृज्यमानोऽयमात्मा
चक्षुर्वत्तत्त्वसूक्ष्मं भजति न तु तथाभ्यस्तया तर्ककोट्या॥ ६॥

भगवत्स्मरणसे चित्तका आनन्दविह्वल हो जाना, शरीरमें रोमाञ्च हो आना, आँखोंमें हर्षके आँसू छलक आना आदि प्रत्यक्ष चिह्नोंसे लक्षित होनेवाली भक्तिके बिना चित्तकी शुद्धि कैसे हो सकती है? भक्तिहीनकी घोर तपस्या तथा उत्कट विद्यासे ही क्या लाभ? अर्थात् भक्ति बिना वे निष्फल हो जाते हैं। आपके गुणगानरूपी सिद्धाञ्जनसे बारंबार परिशोधित किया हुआ यह आत्मा निर्मल नेत्रकी भाँति जिस खूबीसे सूक्ष्म तत्त्वको ग्रहण करता है, वैसा बारंबार करोड़ों तर्कोंके द्वारा नहीं कर सकता॥ ६॥

ध्यानं ते शीलयेयं समतनुसुखबद्धासनो नासिकाग्र-
न्यस्ताक्षः पूरकाद्यैर्जितपवनपथश्चित्तपद्मं त्ववाञ्चम्।
ऊर्ध्वाग्रं भावयित्वा रविविधुशिखिनः संविचिन्त्योपरिष्टा
त्तत्रस्थं भावये त्वां सजलजलधरश्यामलं कोमलाङ्गम्॥ ७॥

अब मैं आपके ध्यानका अभ्यास करूँगा—मैं शरीर (मस्तक और ग्रीवा)-को सीधा करके सुखासन बाँधकर बैठ जाऊँगा और नेत्रोंको नासिकाके अग्रभागपर स्थिर करके पूरक, कुम्भक, रेचक आदि प्राणायामोंद्वारा वायुमार्गको जीत लूँगा। तत्पश्चात् अपने अधोमुख हृदयकमलको ऊर्ध्वमुख करके उसकी कर्णिकामें सूर्य, चन्द्र और अग्निको उत्तरोत्तरक्रमसे धारणा करूँगा। पुनः उस अग्निके मध्यमें सजल जलधरकी-सी श्यामल कान्तिसे सुशोभित कोमल अङ्गोंवाले आपकी भावना करूँगा॥ ७॥

आनीलश्लक्ष्णकेशं ज्वलितमकरसत्कुण्डलं मन्दहास-
स्यन्दार्द्रं कौस्तुभश्रीपरिगतवनमालोरुहाराभिरामम्।
श्रीवत्साङ्कं सुबाहुं मृदुलसदुदरं काञ्चनच्छायचेलं
चारुस्निग्धोरुमम्भोरुहललितपदं भावयेऽहं भवन्तम्॥ ८॥

जिनकी घुँघराली अलकें अत्यन्त नीली एवं कोमल हैं, जिनके

कानोंमें चमकीले मकराकृत कुण्डल झलमला रहे हैं तथा मन्द हास मानो अमृत-द्रवसे आर्द्र हो रहा है, कौस्तुभमणिकी कान्तिसे युक्त वनमाला तथा अन्यान्य हार-समूहोंसे जिनकी अद्भुत शोभा हो रही है, जिनके वक्षःस्थलके दाहिने भागमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित हो रहा है, सुन्दर भुजाओं तथा त्रिवलीयुक्त कोमल उदरसे जिनकी निराली शोभा हो रही है, जिनके श्रीविग्रहपर स्वर्ण-सदृश कान्तिमान् पीताम्बर फहरा रहा है, जिनकी जंघाएँ बड़ी सुन्दर एवं मांसल हैं तथा जिनके चरण अरुण-कमलके-से मनोहर हैं, ऐसे शोभाशाली आपकी मैं चिन्तना करूँगा॥ ८॥

सर्वाङ्गेष्वङ्ग रङ्गत्कुतुकमति मुहुर्धारयन्नीश चित्तं
तत्राप्येकत्र युञ्जे वदनसरसिजे सुन्दरे मन्दहासे।
तत्रालीनं तु चेतः परमसुखचिदद्वैतरूपे वितन्व-
न्नन्यन्नो चिन्तयेयं मुहुरिति समुपारूढयोगो भवेयम्॥ ९॥

हे ईश! मैं अपने कुतूहलपूर्ण चित्तको बारंबार आपके सर्वाङ्गोंमें नियोजित करूँगा। पुनः उन सर्वाङ्गोंमें भी उसे सब जगहसे समेटकर एकमात्र आपके मन्द-मुस्कानसे सुशोभित मुखकमलपर नियुक्त कर दूँगा। जब वह श्रीमुखपर सुस्थिर हो जायगा, तब उसे अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्ममें निवेशित करके किसी अन्यकी चिन्तना ही नहीं करूँगा। इस प्रकार बारंबार प्रयत्न करता हुआ मैं योगारूढ हो जाऊँगा॥ ९॥

इत्थं त्वद्ध्यानयोगे सति पुनरणिमाद्यष्टसंसिद्धयस्ता
दूरश्रुत्यादयोऽपि ह्यहमहमिकया सम्पतेयुर्मुरारे।
त्वत्सम्प्राप्तौ विलम्बावहमखिलमिदं नाद्रिये कामयेऽहं
त्वामेवानन्दपूर्णं पवनपुरपते पाहि मां सर्वतापात्॥ १०॥

इस प्रकार आपके ध्यानयोगके सिद्ध हो जानेपर वे सत्त्वोत्कर्षजनित अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ तथा दूर-श्रवण आदि क्षुद्र सिद्धियाँ भी 'पहले मैं, पहले मैं'—यों होड़ लगाती हुई आ पहुँचेंगी। परंतु मुरारे! वे सभी

आपकी प्राप्तिमें रोड़ा अटकानेवाली हैं, अतः मैं उन सबका आदर नहीं करूँगा। मैं तो आनन्दसे परिपूर्ण आपको ही प्राप्त करना चाहता हूँ। पवनपुरपते! सभी कष्टोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति भगवत्स्वरूपध्यानयोग्यतावर्णनं पञ्चनवतितमदशकं समाप्तम्॥

षण्णवतितमदशकम्

भगवद्विभूति तथा कर्म, ज्ञान और भक्तिके अधिकारीका वर्णन एवं चित्तोपशमके लिये प्रार्थना

त्वं हि ब्रह्मैव साक्षात् परमुरुमहिमन्नक्षराणामकार-
स्तारो मन्त्रेषु राज्ञां मनुरसि मुनिषु त्वं भृगुर्नारदोऽपि।
प्रह्लादो दानवानां पशुषु च सुरभिः पक्षिणां वैनतेयो
नागानामस्यनन्तः सुरसरिदपि च स्रोतसां विश्वमूर्ते॥ १॥

महान् महिमशाली विश्वमूर्ते! आप ही साक्षात् परब्रह्म हैं। आप ही अक्षरोंमें अकार, मन्त्रोंमें प्रणव और राजाओंमें आदिराज मनु हैं। ब्रह्मर्षियोंमें भृगु, देवर्षियोंमें नारद, दानवोंमें प्रह्लाद, पशुओंमें सुरभि, पक्षियोंमें गरुड़, नागोंमें अनन्त और नदियोंमें गङ्गा भी आप ही हैं॥ १॥

ब्रह्मण्यानां बलिस्त्वं क्रतुषु च जपयज्ञोऽसि वीरेषु पार्थो
भक्तानामुद्धवस्त्वं बलमसि बलिनां धाम तेजस्विनां त्वम्।
नास्त्यन्तस्त्वद्विभूतेर्विकसदतिशयं वस्तु सर्वं त्वमेव
त्वं जीवस्त्वं प्रधानं यदिह भवदृते तन्न किंचित् प्रपञ्चे॥ २॥

आप ब्राह्मण-भक्तोंमें बलि हैं। यज्ञोंमें जप-यज्ञ, वीरोंमें अर्जुन और भक्तोंमें उद्धवके रूपमें आप ही वर्तमान हैं। आप ही बलवानोंके बल तथा तेजस्वियोंके तेज हैं। कहाँतक कहूँ, आपकी विभूतिका अन्त नहीं है। अतः जितनी अतिशय विकासयुक्त वस्तुएँ हैं, उन सबके रूपमें आप ही हैं। आप ही जीव तथा आप ही प्रधान (प्रकृति) हैं। इस प्रपञ्चमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपसे रहित हो॥ २॥

धर्मं वर्णाश्रमाणां श्रुतिपथविहितं त्वत्परत्वेन भक्त्या
कुर्वन्तोऽन्तर्विरागे विकसति शनकैः संत्यजन्तो लभन्ते।
सत्तास्फूर्तिप्रियत्वात्मकमखिलपदार्थेषु भिन्नेष्वभिन्नं
निर्मूलं विश्वमूलं परममहमिति त्वद्विबोधं विशुद्धम्॥ ३॥

वर्णों तथा आश्रमोंके वेदमार्ग-प्रतिपादित धर्मका भगवदर्पण-बुद्धिसे भक्तिपूर्वक आचरण करते हुए जब शनैः-शनैः अन्तःकरणमें विराग उत्पन्न हो जाता है, तब साधक उन विहित कर्मोंका भी विधिपूर्वक त्याग करके परमहंस हो जाते हैं। तत्पश्चात् सत्ता, स्फूर्ति और प्रियत्व जिसका स्वरूप है तथा जो स्वभावतः पृथक्-पृथक् दीखनेवाले सम्पूर्ण पदार्थोंमें एकरूपसे स्थित, निष्कारण और जगज्जन्मादिका कारण है, वह परब्रह्म ही मेरा स्वरूप है—इस प्रकारका आपका स्वरूपभूत विशुद्ध ज्ञान उन्हें प्राप्त हो जाता है॥ ३॥

ज्ञानं कर्मापि भक्तिस्त्रितयमिह भवत्प्रापकं तत्र ताव-
न्निर्विण्णानामशेषे विषय इह भवेज्ज्ञानयोगेऽधिकारः।
सक्तानां कर्मयोगस्त्वयि हि विनिहितो ये तु नात्यन्तसक्ता
नाप्यत्यन्तं विरक्तास्त्वयि च धृतरसा भक्तियोगो ह्यमीषाम्॥ ४॥

ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग—ये तीनों ही आपकी प्राप्ति करानेवाले हैं। इनमें जिनका समस्त विषयोंमें विराग हो गया है, वे ज्ञानयोगके अधिकारी हैं और जो विरक्त नहीं हुए हैं, उनका भगवदर्पण-बुद्धिसे किये जानेवाले कर्मयोगमें अधिकार है। किंतु जो न तो विषयोंमें अत्यन्त आसक्त हैं न अत्यन्त विरक्त ही हैं, परंतु आपकी कथा आदिमें श्रद्धा रखनेवाले हैं, उनके लिये भक्तियोग ही अधिकरणीय है॥ ४॥

ज्ञानं त्वद्भक्ततां वा लघु सुकृतवशान्मर्त्यलोके लभन्ते
तस्मात् तत्रैव जन्म स्पृहयति भगवन् नाकगो नारको वा।
आविष्टं मां तु दैवाद्भवजलनिधिपोतायिते मर्त्यदेहे
त्वं कृत्वा कर्णधारं गुरुमनुगुणवातायितस्तारयेथाः॥ ५॥

भगवन्! इस मृत्युलोकमें पुण्यके फलस्वरूप ज्ञान तथा आपकी

भक्तिको मनुष्य अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। इसी कारण स्वर्गवासी तथा नरकनिवासी सभी लोग मृत्युलोकमें ही जन्म ग्रहण करनेकी स्पृहा करते हैं। उसी मर्त्यलोकमें दैववश मैं भवसागरसे पार होनेके लिये नौकास्वरूप इस मर्त्यदेहमें प्रविष्ट हुआ हूँ। अब आप मुझे कर्णधारस्वरूप गुरुकी प्राप्ति कराकर स्वयं अनुकूल वायुका-सा आचरण करते हुए इस भवसागरसे पार कर दीजिये॥ ५॥

अव्यक्तं मार्गयन्तः श्रुतिभिरपि नयैः केवलज्ञानलुब्धाः
क्लिश्यन्तेऽतीव सिद्धिं बहुतरजनुषामन्त एवाप्नुवन्ति।
दूरस्थः कर्मयोगोऽपि च परमफले नन्वयं भक्तियोग-
स्त्वामूलादेव हृद्यस्त्वरितमयि भवत्प्रापको वर्धतां मे॥ ६॥

अयि भगवन्! केवल ज्ञानपर लुभाये हुए लोग श्रुतियों तथा युक्तियोंद्वारा अव्यक्त ब्रह्मकी खोज करते हुए अत्यन्त क्लेश सहते हैं, तब कहीं बहुत-से जन्मोंके अन्तमें ही उन्हें सिद्धिकी प्राप्ति होती है और कर्मयोग भी परम फल—मोक्ष-प्राप्तिके विषयमें बहुत दूर है। केवल यह भक्तियोग ही ऐसा है, जो आरम्भसे ही मनोहर तथा शीघ्र ही आपकी प्राप्ति करा देनेवाला है; अतः मेरे हृदयमें उसीकी वृद्धि होती रहे॥ ६॥

ज्ञानायैवातियत्नं मुनिरपवदते ब्रह्मतत्त्वं तु शृण्वन्
गाढं त्वत्पादभक्तिं शरणमयति यस्तस्य मुक्तिः कराग्रे।
त्वद्ध्यानेऽपीह तुल्या पुनरसुकरता चित्तचाञ्चल्यहेतो-
रभ्यासादाशु शक्यं तदपि वशयितुं त्वत्कृपाचारुताभ्याम्॥ ७॥

मुनि वेदव्यास पुराणोंमें जगह-जगह केवल ज्ञानके लिये अतिशय प्रयत्न करनेका प्रतिषेध करते हैं। परंतु जो ब्रह्मतत्त्वको सुनकर आपके चरणोंमें सुदृढ़ भक्ति करके शरणापन्न हो जाता है, मुक्ति उसके करतलगत हो जाती है। यद्यपि आपके ध्यानमें भी चित्तकी चञ्चलताके कारण वैसी ही दुष्करता है, तथापि आपकी कृपा तथा श्रीविग्रहके सौन्दर्यके बलसे बारंबार अभ्यास करनेपर चित्त शीघ्र ही वशमें किया जा सकता है॥ ७॥

निर्विण्णः कर्ममार्गे खलु विषमतमे त्वत्कथादौ च गाढं
जातश्रद्धोऽपि कामानयि भुवनपते नैव शक्नोमि हातुम्।
तद्भूयो निश्चयेन त्वयि निहितमना दोषबुद्ध्या भजंस्तान्
पुष्णीयां भक्तिमेव त्वयि हृदयगते मङ्क्षु नङ्क्ष्यन्ति सङ्गाः॥ ८॥

अयि भुवनपते! यद्यपि दुःखबहुल कर्ममार्गसे विरक्त होकर आपकी कथा आदिमें मेरी गाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है, तथापि पुत्र-वित्त आदिकी कामनाओंका त्याग करनेके लिये मैं अपनेको असमर्थ ही पा रहा हूँ। इसी कारण बारंबार निश्चय करके आपमें दत्तचित्त होकर दोषबुद्धिसे उन कामनाओंका सेवन करते हुए भी मैं भक्तिका ही पोषण करता रहूँ, जिस भक्तिके प्रभावसे हृदयमें आपके आ विराजनेपर विषय-वासनाएँ तुरंत ही नष्ट हो जाती हैं॥ ८॥

कश्चित् क्लेशार्जितार्थक्षयविमलमतिर्नुद्यमानो जनौघैः
प्रागेवं प्राह विप्रो न खलु मम जनाः कालकर्मग्रहा वा।
चेतो मे दुःखहेतुस्तदिह गुणगणं भावयत् सर्वकारी-
त्युक्त्वा शान्तो गतस्त्वां मम च कुरु विभो तादृशीं चित्तशान्तिम्॥ ९॥

पूर्वकालमें एक ब्राह्मण थे, उनका महान् क्लेशसे उपार्जित धन जब नष्ट हो गया, तब निर्विण्ण होनेके कारण उनकी बुद्धि विमल हो गयी (और वे घरसे निकल पड़े)। मार्गमें जन-समूह उन्हें तरह-तरहसे पीड़ित करने लगा। तब उन्होंने ऐसी गाथा गायी—'मेरे दुःखका कारण ये मनुष्यगण, काल, कर्म और ग्रह आदि नहीं हैं, इसका कारण तो मेरा चित्त ही है। वही चित्त (आत्मामें कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि) गुणसमूहोंका आरोप करके सब कुछ करता है।' ऐसा कहकर वे शान्त हो गये और अन्तमें आपके सारूप्यको प्राप्त हो गये। विभो! मेरे भी चित्तको उसी प्रकार शान्त कर दीजिये॥ ९॥

ऐलः प्रागुर्वशीं प्रत्यतिविवशमनाः सेवमानश्चिरं तां
गाढं निर्विद्य भूयो युवतिसुखमिदं क्षुद्रमेवेति गायन्।

त्वद्भक्तिं प्राप्य पूर्णः सुखतरमचरत् तद्वदुद्धूय सङ्गं
भक्तोत्तंसं क्रिया मां पवनपुरपते हन्त मे रुन्धि रोगान्॥ १०॥

प्राचीन कालमें इलानन्दन पुरूरवा अपनेसे आयी हुई उर्वशीके प्रति अत्यन्त आसक्त होकर चिरकालतक उसके साथ विहार करते रहे। समय-भङ्ग होनेके कारण जब वह स्वर्ग चली गयी, तब राजाको अतिशय वैराग्य हो गया और उन्होंने यह गाथा गायी—'यह स्त्री-सुख अतिशय क्षुद्र है।' तत्पश्चात् आपकी भक्ति प्राप्त करके सफल-मनोरथ हो वे सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करने लगे। पवनपुरपते! उसी प्रकार मेरी विषयासक्तिको नष्ट करके मुझे भी भक्तश्रेष्ठ बना दीजिये और मेरे रोगोंको दूर कर दीजिये॥ १०॥

॥ इति भगवद्विभूतिवर्णनादि षण्णवतितमदशकं समाप्तम्॥

द्वादशस्कन्धपरिच्छेदः

सप्तनवतितमदशकम्

उत्तम भक्तिके लिये प्रार्थना और मार्कण्डेय-चरित

त्रैगुण्याद्भिन्नरूपं भवति हि भुवने हीनमध्योत्तमं य-
ज्ज्ञानं श्रद्धा च कर्ता वसतिरपि सुखं कर्म चाहारभेदाः।
त्वत्क्षेत्रत्वन्निषेवादि तु यदिह पुनस्त्वत्परं तत्तु सर्वं
प्राहुर्नैर्गुण्यनिष्ठं तदनुभजनतो मङ्क्षु सिद्धो भवेयम्॥ १॥

इस भुवनमें जो ज्ञान, श्रद्धा, कर्ता, वासस्थान, सुख, कर्म और विभिन्न प्रकारके आहार आदि वस्तुएँ हैं, वे सभी त्रिगुणमय होनेके कारण उत्तम, मध्यम और नीचके भेदसे भिन्न रूपवाली हैं। परंतु जो आपके क्षेत्र और आपकी सेवा आदि हैं, वे सब भवत्परक ही हैं। उन्हें निर्गुण कहा जाता है। उनका अनुभजन (निरन्तर सेवन) करके मैं भी शीघ्र ही सिद्ध हो जाऊँ॥ १॥

त्वय्येव न्यस्तचित्तः सुखमयि विचरन् सर्वचेष्टास्त्वदर्थं
त्वद्भक्तैः सेव्यमानानपि चरितचरानाश्रयन् पुण्यदेशान्।
दस्यौ विप्रे मृगादिष्वपि च सममतिर्मुच्यमानावमान-
स्पर्द्धासूयादिदोषः सततमखिलभूतेषु सम्पूजये त्वाम्॥ २॥

अयि भगवन्! मुझे ऐसा कर दीजिये कि मैं आपमें ही दत्तचित्त होकर सुखपूर्वक विचरण करूँ। आपके निमित्त ही सारे कर्म करूँ। आपके भक्तोंद्वारा सेवित तथा आश्रित पुण्यदेशोंमें ही निवास करूँ। दस्युमें, ब्राह्मणमें और पशुओंमें भी मेरी बुद्धि एक-सी बनी रहे। मैं अपमान, स्पर्धा और असूया आदि दोषोंसे रहित हो समस्त प्राणियोंमें निरन्तर आपकी पूजा करता रहूँ॥ २॥

त्वद्भावो यावदेषु स्फुरति न विशदं तावदेवं ह्युपास्तिं
कुर्वन्नैकात्म्यबोधे झटिति विकसति त्वन्मयोऽहं चरेयम्।

त्वद्धर्मस्यास्य तावत् किमपि न भगवन् प्रस्तुतस्य प्रणाश-
स्तस्मात् सर्वात्मनैव प्रदिश मम विभो भक्तिमार्गं मनोज्ञम्॥ ३॥

भगवन्! जबतक इन समस्त जीवोंमें अन्तर्यामीरूपसे आपकी स्थितिका विशद अनुभव नहीं हो जाता, तबतक उपर्युक्त प्रकारसे मैं आपकी उपासना करता रहूँ। तत्पश्चात् शीघ्र ही आपके साथ एकात्मताका अनुभव होनेपर मैं त्वन्मय (भगवत्स्वरूप) होकर विचरण करूँ। आपके इस भागवत-धर्मके प्रारम्भ होनेपर आदिसे अन्ततक किंचिन्मात्र भी इसका क्षय नहीं होता, इसलिये विभो! मुझे उस मनोरम भक्तिमार्गका ही सब प्रकारसे दान कीजिये॥ ३॥

तं चैनं भक्तियोगं द्रढयितुमयि मे साध्यमारोग्यमायु-
र्दिष्ट्या तत्रापि सेव्यं तव चरणमहो भेषजायेव दुग्धम्।
मार्कण्डेयो हि पूर्वं गणकनिगदितद्वादशाब्दायुरुच्चैः
सेवित्वा वत्सरं त्वां तव भटनिवहैर्द्रावयामास मृत्युम्॥ ४॥

अयि प्रभो! उस पूर्वोक्त भक्तियोगको स्थिर करनेके लिये मुझे आरोग्य और आयुकी भी उपलब्धि करनी पड़ेगी। परंतु सौभाग्यकी बात है कि उस कार्यमें भी मुझे आपके चरणकी ही सेवा करनी होगी; ठीक उसी तरह, जैसे रोगनिवृत्त्यर्थ दुग्ध-पान अनिवार्य होता है। ज्योतिषियोंने पहलेसे ही जिनकी बारह वर्षकी ही आयु बता रखी थी, उन मार्कण्डेयजीने एक वर्षतक तीव्र समाधि-योगके द्वारा आपकी उपासना करके आपके दूतोंद्वारा मृत्युको मार भगाया था॥ ४॥

मार्कण्डेयश्चिरायुः स खलु पुनरपि त्वत्परः पुष्पभद्रा-
तीरे निन्ये तपस्यन्नतुलसुखरतिः षट् तु मन्वन्तराणि।
देवेन्द्रः सप्तमस्तं सुरयुवतिमरुन्मन्मथैर्मोहयिष्यन्
योगोष्मप्लुष्यमाणैर्न तु पुनरशकत् त्वज्जनं निर्जयेत् कः॥ ५॥

जब मार्कण्डेयजीको दीर्घायु प्राप्त हो गयी, तब वे पुनः आपके भजनमें तत्पर हो गये; क्योंकि निरतिशय सुखरूप आपके भजनमें उनकी बड़ी श्रद्धा थी। पुष्पभद्रा नदीके तटपर तपस्या करते हुए उन्होंने

छः मन्वन्तरका समय व्यतीत किया। सातवें मन्वन्तरके प्रारम्भमें सप्तम देवराज इन्द्रने अप्सराओं, वासन्ती शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु और कामदेवको भेजकर मार्कण्डेयजीको मोहित करनेकी चेष्टा की; परंतु उनके योगकी ऊष्मासे इन्द्रानुचरोंके शरीर संतप्त हो उठे, अतः वे भाग खड़े हुए और इन्द्र उनके द्वारा मार्कण्डेयजीको मोहित न कर सके। भला, आपके भक्तको कौन जीत सकता है?॥ ५॥

प्रीत्या नारायणाख्यस्त्वमथ नरसख प्राप्तवानस्य पार्श्वं
तुष्ट्या तोष्टूयमानः स तु विविधवरैर्लोभितो नानुमेने।
द्रष्टुं मायां त्वदीयां किल पुनरवृणोद्भक्तितृप्तान्तरात्मा
मायादुःखानभिज्ञस्तदपि मृगयते नूनमाश्चर्यहेतोः॥ ६॥

तदनन्तर हे नरके सखा ! नारायणस्वरूप आप उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उनके पास आ गये। तब मार्कण्डेयजी प्रसन्नतापूर्वक आपकी स्तुति करने लगे। आपने विविध प्रकारके वरदानोंद्वारा उन्हें लुब्ध करना चाहा, परंतु उन्होंने किसी भी वरको स्वीकार नहीं किया; क्योंकि उनका मन आपकी भक्तिसे ही पूर्णतया तृप्त था। तत्पश्चात् उन्होंने आपकी माया देखनेकी इच्छा प्रकट की; क्योंकि जिसे मायाजनित दुःखका ज्ञान नहीं रहता, वह आश्चर्यवश उसका भी अनुभव करना चाहता है॥ ६॥

याते त्वय्याशु वाताकुलजलदगलत्तोयपूर्णातिघूर्णत्-
सप्तार्णोराशिमग्ने जगति स तु जले सम्भ्रमन् वर्षकोटीः।
दीनः प्रैक्षिष्ट दूरे वटदलशयनं कंचिदाश्चर्यबालं
त्वामेव श्यामलाङ्गं वदनसरसिजन्यस्तपादाङ्गुलीकम्॥ ७॥

आपके जाते ही आकाशमें घनघोर घटा घिर आयी, प्रचण्ड आँधी चलने लगी, जिससे इधर-उधर दौड़ते हुए बादल घोर वृष्टि करने लगे, उस जलसे परिपूर्ण होकर सातों समुद्र अपनी मर्यादा तोड़कर बहने लगे और उस जलराशिमें सारा जगत् डूब गया। उस प्रलयार्णवमें मार्कण्डेय करोड़ों वर्षोंतक भ्रमण करते रहे। अन्तमें व्याकुल हो जानेपर उन्हें

बहुत दूर वट-पत्रपर शयन करता हुआ कोई आश्चर्यमय बालक दिखायी पड़ा। वह बालरूपधारी आप ही थे। आपके श्यामल अङ्गसे निराली छटा छिटक रही थी और आपने अपने मुखकमलमें पादाङ्गुष्ठ डाल रखा था॥ ७॥

दृष्ट्वा त्वां हृष्टरोमा त्वरितमुपगतः स्प्रष्टुकामो मुनीन्द्रः
श्वासेनान्तर्निविष्टः पुनरिह सकलं दृष्टवान् विष्टपौघम्।
भूयोऽपि श्वासवातैर्बहिरनुपतितो वीक्षितस्त्वत्कटाक्षै-
र्मोदादाश्लेष्टुकामस्त्वयि पिहिततनौ स्वाश्रमे प्राग्वदासीत्॥ ८॥

आपको देखकर हर्षावेशके कारण मुनिवर मार्कण्डेयका शरीर पुलकित हो उठा। वे तुरंत ही आपका स्पर्श करनेकी अभिलाषासे निकट गये, परंतु आपकी श्वासवायुके साथ वे आपके भीतर प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्हें पुनः चौदहों भुवनोंसहित सारा ब्रह्माण्ड दृष्टिगोचर हुआ। पुनः बाहर निकलती हुई श्वासवायुके साथ वे बाहर निकल आये। तब आपने कनखियोंद्वारा उनकी ओर देखा। उस समय वे हर्षित होकर आपका आलिङ्गन करनेके लिये दौड़े, परंतु आप अन्तर्धान हो गये और मुनिने पूर्ववत् अपनेको अपने आश्रममें स्थित पाया॥ ८॥

गौर्या सार्धं तदग्रे पुरभिदथ गतस्त्वत्प्रियप्रेक्षणार्थी
सिद्धानेवास्य दत्त्वा स्वयमयमजरामृत्युतादीन् गतोऽभूत्।
एवं त्वत्सेवयैव स्मररिपुरपि स प्रीयते येन तस्मा-
न्मूर्तित्रय्यात्मकस्त्वं ननु सकलनियन्तेति सुव्यक्तमासीत्॥ ९॥

तदनन्तर त्रिपुरका भेदन करनेवाले शिव पार्वतीके साथ आपके भक्तका दर्शन करनेकी इच्छासे मार्कण्डेयके समक्ष प्रकट हो गये और उन्हें अजरता-अमरता आदि वर, जो स्वयं उनको अपने तपोबलसे ही प्राप्त थे, प्रदान करके वे अपने स्थानको लौट गये। इस प्रकार आपकी ही भक्तिसे स्मरारि शिव भी प्रसन्न हो जाते हैं, इस कारण यह स्पष्ट हो गया कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों आपके ही स्वरूप हैं और आप ही सबके नियन्ता हैं॥ ९॥

त्र्यंशेऽस्मिन् सत्यलोके विधिहरिपुरभिन्मन्दिराण्यूर्ध्वमूर्ध्वं
तेभ्योऽप्यूर्ध्वं तु मायाविकृतिविरहितो भाति वैकुण्ठलोकः।
तत्र त्वं कारणाम्भस्यपि पशुपकुले शुद्धसत्त्वैकरूपी
सच्चिद्ब्रह्माद्वयात्मा पवनपुरपते पाहि मां सर्वरोगात्॥ १०॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लोकरूपी अंशसे युक्त इस सत्यलोकमें क्रमशः उत्तरोत्तर ब्रह्मा, विष्णु और शिवके मन्दिर हैं। उन सबसे भी ऊपर मायाके विकारोंसे रहित वैकुण्ठलोक सुशोभित है। उस वैकुण्ठलोकमें कारणोदकमें तथा गोप-कुलमें भी निवास करनेवाले आप शुद्धसत्त्वैकरूपधारी अद्वितीय सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म हैं। पवनपुरपते! सब रोगोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इत्युत्तमभक्तिप्रार्थनामार्कण्डेयोपाख्यानं च सप्तनवतितमदशकं समाप्तम्॥

अष्टनवतितमदशकम्

ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति आदिका निरूपण

यस्मिन्नेतद्विभातं यत इदमभवद्येन चेदं य एत-
द्योऽस्मादुत्तीर्णरूपः खलु सकलमिदं भासितं यस्य भासा।
यो वाचां दूरदूरे पुनरपि मनसां यस्य देवा मुनीन्द्रा
नो विद्युस्तत्त्वरूपं किमु पुनरपरे कृष्ण तस्मै नमस्ते॥ १॥

श्रीकृष्ण! जिसके ब्रह्मस्वरूपको देवगण तथा मुनीश्वर नहीं जान सके, तब, भला, औरोंकी क्या गणना है? जो मन-वचनके अगोचर है, जिसके प्रकाशसे यह सारा जगत् प्रकाशित हो रहा है, जिसमें यह प्रतिष्ठित है, जिससे यह उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह पुनः लीन हो जाता है, जो इस जगत्-रूपमें वर्तमान है और जिसका स्वरूप इस जगत्से व्यतिरिक्त है, ऐसे आपको नमस्कार है॥ १॥

जन्माथो कर्म नाम स्फुटमिह गुणदोषादिकं वा न यस्मिन्
लोकानामूतये यः स्वयमनुभजते तानि मायानुसारी।

विभ्रच्छक्तीररूपोऽपि च बहुतररूपोऽवभात्यद्भुतात्मा
तस्मै कैवल्यधाम्ने पररसपरिपूर्णाय विष्णो नमस्ते॥ २॥

विष्णो! जिसमें परमार्थतः जन्म, कर्म, गुण, दोष आदि कुछ भी नहीं है, तथापि जो जगत्पर अनुग्रह करनेके हेतु मायाका आश्रय लेकर स्वयं ही उन जन्म-कर्मादिकोंको अङ्गीकार करता है, विभिन्न शक्तियोंको धारण करता है और रूपरहित होते हुए भी स्थावर-जङ्गमभेदसे अनेकों रूपोंमें दृष्टिगोचर हो रहा है, अतएव जिसका स्वरूप महान् आश्चर्यजनक है तथा जो कैवल्यका धाम एवं परमानन्दरससे परिपूर्ण है, ऐसे आपको प्रणाम है॥ २॥

नो तिर्यञ्चं न मर्त्यं न च सुरमसुरं न स्त्रियं नो पुमांसं
न द्रव्यं कर्म जातिं गुणमपि सदसद्वापि ते रूपमाहुः।
शिष्टं यत् स्यान्निषेधे सति निगमशतैर्लक्षणावृत्तितस्तत्
कृच्छ्रेणावेद्यमानं परमसुखमयं भाति तस्मै नमस्ते॥ ३॥

आपके रूपको न तो तिर्यक्, न मानव, न सुर-असुर, न स्त्री और न पुरुष ही कहा जा सकता है तथा द्रव्य, कर्म, जाति, गुण, सत् अथवा असत् भी उसे नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार 'नेति-नेति'—इस श्रुतिवचनके द्वारा निषेध करनेपर जो अवशिष्ट रहता है वही आपका रूप है, उपनिषदादि सैकड़ों श्रुतियाँ लक्षणावृत्तिका आश्रय लेकर बड़ी कठिनाईसे उसका प्रतिपादन करती हैं, वह परमानन्दरूपसे प्रकाशित हो रहा है। ऐसे रूपवाले आपको अभिवादन है॥ ३॥

मायायां बिम्बितस्त्वं सृजसि महदहङ्कारतन्मात्रभेदै-
र्भूतग्रामेन्द्रियाद्यैरपि सकलजगत्स्वप्नसङ्कल्पकल्पम्।
भूयः संहृत्य सर्वं कमठ इव पदान्यात्मना कालशक्त्या
गम्भीरे जायमाने तमसि वितिमिरो भासि तस्मै नमस्ते॥ ४॥

पुनः आप मायामें प्रतिबिम्बित होकर महत्तत्त्व, अहंकार पञ्चतन्मात्रा, पञ्चभूत, एकादश इन्द्रियोंकी सहायतासे स्वप्नसंकल्पवत् सारे जगत्की सृष्टि करते हैं। तत्पश्चात् जैसे कछुआ अपने पैरोंको अपनेमें समेट लेता

है, उसी प्रकार आप भी कालशक्तिके सहारे सारे जगत्को अपनेमें लीन करके आत्मस्वरूपसे प्रकाशित होते हैं। उस समय गहन अन्धकारके प्रकट होनेपर अर्थात् सुषुप्ति-अवस्थामें भी आपका ज्ञान सदा प्रकाशित रहता है, ऐसे आपको नमस्कार है॥ ४॥

शब्दब्रह्मेति कर्मेत्यणुरिति भगवन् काल इत्यालपन्ति
त्वामेकं विश्वहेतुं सकलमयतया सर्वथा कल्प्यमानम्।
वेदान्तैर्यत्तु गीतं पुरुषपरचिदात्माभिधं तत्तु तत्त्वं
प्रेक्षामात्रेण मूलप्रकृतिविकृतिकृत् कृष्ण तस्मै नमस्ते॥ ५॥

भगवन्! एकमात्र आपको ही कुछ लोग जगत्का कारण, कुछ लोग शब्दब्रह्म, कुछ लोग कर्म, कुछ लोग परमाणु और कुछ लोग कालरूपसे वर्णन करते हैं और सर्वात्मक होनेके कारण आपके लिये ऐसी कल्पना सर्वथा उपयुक्त भी है। परंतु वेदान्त जिसका पुरुष, परम शुद्ध चैतन्य और सर्वानुगत आत्मरूपसे अभिधान करता है, वही ब्रह्म है। श्रीकृष्ण वह ब्रह्म आप ही हैं, आप अपने ईक्षणमात्रसे मूलप्रकृतिमें विकार (क्षोभ) उत्पन्न कर देते हैं। आपको प्रणाम है॥ ५॥

सत्त्वेनासत्तया वा न च खलु सदसत्त्वेन निर्वाच्यरूपा
धत्ते यासावविद्या गुणफणिमतिवद्विश्वदृश्यावभासम्।
विद्यात्वं सैव याता श्रुतिवचनलवैर्यत्कृपास्यन्दलाभे
संसारारण्यसद्यस्त्रुटनपरशुतामेति तस्मै नमस्ते॥ ६॥

जो अविद्या न सती, न असती है और न सदसती ही है, अतः जिसके स्वरूपका वर्णन करना अशक्य है, जो रज्जुमें सर्पकी भ्रान्ति-सदृश सकल जगत्को अवभासित करनेवाला रूप धारण करती है, वही अविद्या जिसकी कृपाके प्रवाहमें पड़नेपर वेदान्त-वाक्योंद्वारा विद्यारूपिणी होकर संसाररूपी वनको तत्काल काट डालनेके लिये फरसेका-सा काम करती है, ऐसे आपको अभिवादन है॥ ६॥

भूषासु स्वर्णवद्वा जगति घटशरावादिके मृत्तिकाव-
त्तत्त्वे संचिन्त्यमाने स्फुरति तदधुनाप्यद्वितीयं वपुस्ते।

स्वप्नद्रष्टुः प्रबोधे तिमिरलयविधौ जीर्णरज्जोश्च यद्व-
द्विद्यालाभे तथैव स्फुटमपि विकसेत् कृष्ण तस्मै नमस्ते॥ ७॥

श्रीकृष्ण! आपका वह जगत्कारणभूत अद्वितीय स्वरूप तत्त्वका विचार करते समय आभूषणोंमें स्वर्ण तथा घट-शराव आदिमें मृत्तिकाकी भाँति इस समय भी जगत्में प्रकाशित हो रहा है, वही स्वरूप ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो जानेपर उसी प्रकार स्पष्टरूपसे प्रकाशित हो जाता है, जैसे निद्रा भङ्ग होनेपर स्वप्नद्रष्टाका अज्ञानकल्पित प्रपञ्च नष्ट हो जाता है तथा दीपादिद्वारा अन्धकारके नष्ट हो जानेपर जीर्ण रज्जुमें सर्पकी भ्रान्ति नष्ट हो जाती है। ऐसे स्वरूपवाले आपको नमस्कार है॥ ७॥

यद्भीत्योदेति सूर्यो दहति च दहनो वाति वायुस्तथान्ये
यद्भीताः पद्मजाद्याः पुनरुचितबलीनाहरन्तेऽनुकालम्।
येनैवारोपिताः प्राङ्निजपदमपि ते च्यावितारश्च पश्चा-
त्तस्मै विश्वं नियन्त्रे वयमपि भवते कृष्ण कुर्मः प्रणामम्॥ ८॥

श्रीकृष्ण! जिसके भयसे सूर्य उदय होते हैं, अग्नि जलाती है और वायु बहती है तथा ब्रह्मा आदि अन्य देवगण जिससे भयभीत होकर समयानुसार यथोचित पूजा प्रदान करते हैं, जिसके द्वारा वे पहले अपने-अपने स्थानपर नियुक्त किये गये हैं तथा अवधि समाप्त होनेपर जिसके द्वारा वे उस स्थानसे च्युत कर दिये जायँगे, उस विश्वके नियन्तारूप आपको हमलोग भी प्रणाम करते हैं॥ ८॥

त्रैलोक्यं भावयन्तं त्रिगुणमयमिदं त्र्यक्षरस्यैकवाच्यं
त्रीशानामैक्यरूपं त्रिभिरपि निगमैर्गीयमानस्वरूपम्।
तिस्रोऽवस्था विदन्तं त्रियुगजनिजुषं त्रिक्रमाक्रान्तविश्वं
त्रैकाल्ये भेदहीनं त्रिभिरहमनिशं योगभेदैर्भजे त्वाम्॥ ९॥

सत्त्व-रज-तम—इन तीनों गुणोंसे युक्त इस त्रिलोकीकी जो नियमपूर्वक रचना करनेवाले हैं, त्र्यक्षरस्वरूप प्रणवके जो एकमात्र वाच्य हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों मूर्तियोंका ऐक्य जिनका स्वरूप है, तीनों वेद जिनके स्वरूपका गान करते हैं, जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंके

ज्ञाता, सत्ययुग, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें अवतार धारण करनेवाले, तीन पगसे विश्वको आक्रान्त कर लेनेवाले तथा भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमें भेदरहित हैं, ऐसे आपका मैं कर्म-ज्ञान-भक्ति नामक तीनों योगोंद्वारा निरन्तर भजन करता हूँ॥ ९॥

सत्यं शुद्धं विबुद्धं जयति तव वपुर्नित्यमुक्तं निरीहं
निर्द्वन्द्वं निर्विकारं निखिलगुणगणव्यञ्जनाधारभूतम्।
निर्मूलं निर्मलं तन्निरवधिमहिमोल्लासि निर्लीनमन्त-
र्निस्सङ्गानां मुनीनां निरुपमपरमानन्दसान्द्रप्रकाशम्॥ १०॥

जो सत्य, शुद्ध, स्वप्रकाशसिद्ध, नित्यमुक्त, स्पृहारहित, निर्द्वन्द्व, निर्विकार, सम्पूर्ण गुणसमूहोंकी उत्पत्तिका आधारभूत, निष्कारण, निर्मल, असीम वैभवसे सम्पन्न, आसक्तिरहित मुनियोंके अन्तःकरणमें प्रतिष्ठित तथा अनुपम परमानन्दके घनीभूत प्रकाशसे युक्त है, आपका वह स्वरूप उत्कृष्टरूपसे प्रकाशित हो रहा है॥ १०॥

दुर्वारं द्वादशारं त्रिशतपरिमिलत्षष्टिपर्वाभिवीतं
सम्भ्राम्यत्क्रूरवेगं क्षणमनु जगदाच्छिद्य संधावमानम्।
चक्रं ते कालरूपं व्यथयतु न तु मां त्वत्पदैकावलम्बं
विष्णो कारुण्यसिन्धो पवनपुरपते पाहि सर्वामयौघात्॥ ११॥

विष्णो! जिसका निवारण करना अशक्य है, बारह महीने जिसके द्वादश अरे हैं, जो तीन सौ साठ दिनरूप पर्वोंसे अभिव्याप्त है, अतिशय तीव्र वेगसे जो बारंबार चक्कर काट रहा है तथा प्रतिक्षण जगत्का विनाश करनेके लिये उसके पीछे दौड़ लगा रहा है, वह आपका कालरूप चक्र मुझे पीड़ित न करे; क्योंकि करुणासागर! मुझे एकमात्र आपके चरणोंका ही अवलम्ब है। पवनपुरपते! सम्पूर्ण रोगसमूहोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ ११॥

॥ इति ब्रह्मणो जगदुत्पत्त्यादिनिरूपणम् अष्टनवतितमदशकं समाप्तम्॥

एकोनशततमदशकम्

भगवन्महिमाका वर्णन

विष्णोर्वीर्याणि को वा कथयतु धरणेः कश्च रेणून्मिमीते
यस्यैवाङ्घ्रित्रयेण त्रिजगदभिमितं मोदते पूर्णसम्पत्।
योऽसौ विश्वानि धत्ते प्रियमिह परमं धाम तस्याभियायां
तद्भक्ता यत्र माद्यन्त्यमृतरसमरन्दस्य यत्र प्रवाहः॥ १॥

भला, विष्णुके बल-पराक्रमका वर्णन कौन कर सकता है? पृथ्वीके रेणुकणोंकी गणना करनेमें कौन समर्थ है? जिनके ही तीन पगोंद्वारा मापा गया त्रिभुवन सम्पत्तिसे पूर्ण होकर आनन्दका अनुभव करता है, जो अपने योगबलसे सारे विश्वको धारण करते हैं, उन विष्णुके परम प्रिय धाम वैकुण्ठको मैं प्राप्त हो जाऊँ, जहाँ सर्वत्र मोक्ष-सुखरूपी अमृतका प्रवाह बहता रहता है, जिससे वहाँ पहुँचे हुए भगवद्भक्तजन आनन्दविभोर बने रहते हैं॥ १॥

आद्यायाशेषकर्त्रे प्रतिनिमिषनवीनाय भर्त्रे विभूते-
र्भक्तात्मा विष्णवे यः प्रदिशति हविरादीनि यज्ञार्चनादौ।
कृष्णाद्यं जन्म यो वा महदिह महतो वर्णयेत् सोऽयमेव
प्रीतः पूर्णो यशोभिस्त्वरितमभिसरेत् प्राप्यमन्ते पदं तत्॥ २॥

जो आदिमें उत्पन्न होनेवाले अतएव सबके कर्ता, पल-पलमें नित्य- नूतन तथा विभूतिके भर्ता (लक्ष्मीपति) हैं, उन विष्णुके लिये जो भक्ति-भावसे यजन-पूजन आदिमें हविष्य आदि समर्पित करता है तथा जो उन महान् विष्णुके श्रीकृष्ण आदि महामहिम अवतारोंका वर्णन करता है, वही इस जगत्में यथेष्ट सुखानुभवसे प्रसन्न तथा उत्तम कीर्तिसे सम्पन्न होकर शरीरपात होनेपर शीघ्र ही उस प्रापणीय वैकुण्ठलोकको प्राप्त होता है (दूसरेको उसकी प्राप्ति दुर्लभ है)॥ २॥

हे स्तोतारः कवीन्द्रास्तमिह खलु यथा चेतयध्वे तथैव
व्यक्तं वेदस्य सारं प्रणुवत जननोपात्तलीलाकथाभिः।

जानन्तश्चास्य नामान्यखिलसुखकराणीति सङ्कीर्तयध्वं
हे विष्णो कीर्तनाद्यैस्तव खलु महतस्तत्त्वबोधं भजेयम्॥ ३॥

हे स्तुति करनेवाले काव्यकुशल कविगण! तुमलोग जैसा जानते हो उसी तरह विभिन्न अवतारोंमें की गयी लीला-कथाओंद्वारा विष्णुकी स्तुति करो। वे विष्णु प्रमाणसिद्ध तथा वेदोंके प्रधान प्रतिपाद्य हैं। हे परमार्थके ज्ञाताओ! विष्णुके नाम सम्पूर्ण सुखोंके प्रदाता हैं, अतः उनका संकीर्तन करो। हे विष्णो! महान् ऐश्वर्यशाली आपके तत्त्वज्ञानको मैं भी कीर्तनादि भक्तिद्वारा प्राप्त करना चाहता हूँ॥ ३॥

विष्णोः कर्माणि सम्पश्यत मनसि सदा यैः सधर्मानबध्नाद्
यानीन्द्रस्यैष भृत्यः प्रियसख इव च व्यातनोत् क्षेमकारी।
वीक्षन्ते योगसिद्धाः परपदमनिशं यस्य सम्यक्प्रकाशं
विप्रेन्द्रा जागरूकाः कृतबहुनुतयो यच्च निर्भासयन्ते॥ ४॥

जिन कर्मोंद्वारा विष्णुने समस्त धर्मोंको उन-उनके अधिकारियोंके साथ संयोजित किया है तथा उन्हीं विष्णुने जगत्की रक्षामें तत्पर होकर इन्द्रके भृत्य एवं प्रिय मित्रकी भाँति जिन-जिन कर्मोंका विस्तार किया है, विष्णुके उन-उन कर्मोंका तुमलोग सदा मनमें चिन्तन करो। योगसिद्ध मुनिगण विष्णुके सम्यक् प्रकाशित परमपदका निरन्तर दर्शन करते हैं और ध्यानपरायण विप्रगण सतत जागरूक रहकर विभिन्न प्रकारकी स्तुति करते हुए उस परमपदको प्रकाशित करते हैं॥ ४॥

नो जातो जायमानोऽपि च समधिगतस्त्वन्महिम्नोऽवसानं
देव श्रेयांसि विद्वान् प्रतिमुहुरपि ते नाम शंसामि विष्णो।
तं त्वां संस्तौमि नानाविधनुतिवचनैरस्य लोकत्रयस्या-
प्यूर्ध्वं विभ्राजमाने विरचितवसतिं तत्र वैकुण्ठलोके॥ ५॥

देव! जो उत्पन्न हो चुके हैं तथा जो उत्पन्न हो रहे हैं, उनमें कोई भी ऐसा नहीं है जो आपकी महिमाका पार पा सके। अतः विष्णो! 'यही श्रेय है'—यों निश्चय करके मैं अनवरत आपके नामका कीर्तन करता रहता हूँ तथा जो इस त्रिलोकीके भी ऊपर विराजमान है उस

वैकुण्ठलोकमें निवास करनेवाले आपका नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा स्तवन करता रहता हूँ॥ ५॥

आपः सृष्ट्यादिजन्याः प्रथममयि विभो गर्भदेशे दधुस्त्वां
यत्र त्वय्येव जीवा जलशयन हरे सङ्गता ऐक्यमापन्।
तस्याजस्य प्रभो ते विनिहितमभवत् पद्ममेकं हि नाभौ
दिक्पत्रं यत्किलाहुः कनकधरणिभृत्कर्णिकं लोकरूपम्॥ ६॥

अयि विभो! सृष्टिके आदिमें उत्पन्न होनेवाले जलने पहले-पहल आपको अपने गर्भमें धारण किया अर्थात् महाप्रलयके समय आप प्रलयार्णवके जलमें शेषशय्यापर शयन करने लगे। जलशायी भगवन्! उस समय सारे जीव आपमें ही लीन होकर एकताको प्राप्त हो गये थे। प्रभो! तब शेषशायी आप अजन्माके नाभि-मूलसे एक कमल उत्पन्न हुआ। दिशाएँ उस लोकरूप कमलके पत्ते तथा महामेरु कर्णिका कहे गये हैं॥ ६॥

हे लोका विष्णुरेतद्भुवनमजनयत् तन्न जानीथ यूयं
युष्माकं ह्यन्तरस्थं किमपि तदपरं विद्यते विष्णुरूपम्।
नीहारप्रख्यमायापरिवृतमनसो मोहिता नामरूपैः
प्राणप्रीत्यैकतृप्ताश्चरथ मखपरा हन्त नेच्छा मुकुन्दे॥ ७॥

हे मनुष्यो! जिन विष्णुने इस भुवनको उत्पन्न किया है तथा इससे भिन्न जो दूसरा विष्णुरूप तुम्हारे हृदयके अंदर वर्तमान है, उन्हें तुम-लोग क्यों नहीं जाननेकी चेष्टा करते? तुमलोगोंका मन तो नीहार-तुल्य मायासे आच्छादित हो रहा है, अतः तुमलोग नाम-रूपोंसे मोहित हो एकमात्र इन्द्रिय-तृप्तिको ही प्रधान मानकर यज्ञानुष्ठानमें तत्पर हो रहे हो। खेद है, मोक्षप्रदाता मुकुन्दको पानेकी तुम्हें इच्छा ही नहीं हो रही है॥ ७॥

मूर्ध्नामक्ष्णां पदानां वहसि खलु सहस्राणि सम्पूर्य विश्वं
तत्प्रोत्क्रम्यापि तिष्ठन् परिमितविवरे भासि चित्तान्तरेऽपि।

भूतं भव्यं च सर्वं परपुरुष भवान् किं च देहेन्द्रियादि-
ष्वाविष्टो ह्युद्गतत्वादमृतसुखरसं चानुभुङ्क्षे त्वमेव॥ ८॥

परपुरुष! आपके सहस्रों मस्तक, नेत्र और चरण हैं, इसीसे आप सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डको व्याप्त किये हुए हैं। पुनः उस ब्रह्माण्डका भी अतिक्रमण करके उसके ऊपर भी आप विराजमान हैं और इस अत्यन्त संकुचित हृदयाकाशमें भी आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। भूत-वर्तमान और भविष्य जो कुछ है, सब आपका ही रूप है तथा देह और इन्द्रिय आदिमें प्रविष्ट होकर जो विषयोंका आनन्द ले रहे हैं, वही आप उन्नत होनेके कारण परमानन्दके रसका भी अनुभव करते हैं॥ ८॥

यत्तु त्रैलोक्यरूपं दधदपि च ततो निर्गतानन्त शुद्ध-
ज्ञानात्मा वर्तसे त्वं तव खलु महिमा सोऽपि तावान् किमन्यत्।
स्तोकस्ते भाग एवाखिलभुवनतया दृश्यते त्र्यंशकल्पं
भूयिष्ठं सान्द्रमोदात्मकमुपरि ततो भाति तस्मै नमस्ते॥ ९॥

अनन्त! आप जो त्रैलोक्यमय रूप धारण करते हुए भी उससे बाहर पुनः शुद्ध ज्ञानस्वरूपसे वर्तमान हैं, यह आपकी महिमा है। दूसरा आपके समान कौन है? आपका ही एक अंशमात्र अखिल भुवनरूपसे दृष्टिगोचर हो रहा है। आपका जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीन अंशोंद्वारा व्यवहार करनेयोग्य अतिशय परमानन्दसे परिपूर्ण स्वरूप है, वह इस भुवनसे भी ऊपर प्रकाशित हो रहा है। ऐसे आपको नमस्कार है॥ ९॥

अव्यक्तं ते स्वरूपं दुरधिगमतमं तत्तु शुद्धैकसत्त्वं
व्यक्तं चाप्येतदेव स्फुटममृतरसाम्भोधिकल्लोलतुल्यम्।
सर्वोत्कृष्टामभीष्टां तदिह गुणरसेनैव चित्तं हरन्तीं
मूर्तिं ते संश्रयेऽहं पवनपुरपते पाहि मां कृष्ण रोगात्॥ १०॥

श्रीकृष्ण! आपका स्वरूप अव्यक्त, अतिशय दुर्बोध एवं शुद्ध सत्त्वात्मक है तथा वही व्यक्त, प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर और ब्रह्मानन्दरूपी सागरकी तरङ्गके समान सुख-सेव्य भी है; अतः मैं आपकी उस सर्वोत्कृष्ट अभीष्ट मूर्तिका, जो अपने भक्तवात्सल्यादि गुणोंद्वारा मनको

बरबस अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली है, शरण ग्रहण करता हूँ। पवनपुरपते! रोगोंसे मेरी रक्षा कीजिये॥ १०॥

॥ इति भगवन्माहात्म्यवर्णनम् एकोनशततमदशकं समाप्तम्॥

शततमदशकम्

भगवत्-केशादि-पादान्त-रूपका वर्णन

अग्रे पश्यामि तेजो निबिडतरकलायावलीलोभनीयं
पीयूषाप्लावितोऽहं तदनु तदुदरे दिव्यकैशोरवेषम्।
तारुण्यारम्भरम्यं परमसुखरसास्वादरोमाञ्चिताङ्गै-
रावीतं नारदाद्यैर्विलसदुपनिषत्सुन्दरीमण्डलैश्च॥ १॥

भगवन्! परमानन्दमें निमग्न हुआ मैं अपने समक्ष एक प्रभा-मण्डल देख रहा हूँ। तत्पश्चात् उसके मध्यभागमें मुझे आपका वह दिव्य किशोर वेष दृष्टिगोचर हो रहा है, जो मटर-पुष्पकी घनीभूत श्यामलता-सदृश मनको लुभानेवाला, नवयौवनके समारम्भसे अत्यन्त अभिराम, परमानन्दरूपी रसके आस्वादनसे रोमाञ्चित शरीरवाले नारद आदि देवर्षियोंद्वारा समावृत तथा मूर्तिमती उपनिषद्-रूपिणी सुन्दरियोंसे सुशोभित है॥ १॥

नीलाभं कुञ्चिताग्रं घनममलतरं संयतं चारुभङ्ग्या
रत्नोत्तंसाभिरामं वलयितमुदयच्चन्द्रकैः पिच्छजालैः।
मन्दारस्रङ्निवीतं तव पृथुकबरीभारमालोकयेऽहं
स्निग्धश्वेतोर्ध्वपुण्ड्रामपि च सुललितां फालबालेन्दुवीथीम्॥ २॥

आपका वह त्रिभङ्ग-ललित वेष नीली कान्तिसे युक्त निर्मल सघन घुँघराली अलकोंसे सुशोभित, रत्नमय आभूषणोंसे अतिशय कमनीय, अपनी प्रभा बिखेरनेवाले मयूर-पिच्छसे समावृत, मन्दार-पुष्पोंकी मालासे परिवेष्टित तथा लंबी-मोटी चोटीसे विभूषित है, मैं उस रूपको

तथा ललाटमें बाल-चन्द्रकी वीथी-सदृश अतिशय शोभाशाली सुकोमल उज्ज्वल वर्णके ऊर्ध्वपुण्ड्रको भी देख रहा हूँ॥ २॥

हृद्यं पूर्णानुकम्पार्णवमृदुलहरीचञ्चलभ्रूविलासै-
रानीलस्निग्धपक्ष्मावलिपरिलसितं नेत्रयुग्मं विभो ते।
सान्द्रच्छायं विशालारुणकमलदलाकारमामुग्धतारं
कारुण्यालोकलीलाशिशिरितभुवनं क्षिप्यतां मय्यनाथे॥ ३॥

विभो! जो परिपूर्ण करुणार्णवकी सुन्दर तरङ्गोंके-से चञ्चल भ्रूविलासोंसे अतिशय मनोहर, अत्यन्त नीली एवं सुकोमल पलकोंसे सुशोभित तथा घनीभूत छायासे संयुक्त है, जिसकी आकृति विशाल अरुण कमलदलकी-सी है, पुतलियाँ मनको मोहनेवाली हैं तथा जो लीलापूर्वक करुणापूर्ण अवलोकनसे सारे भुवनको आनन्दित करनेवाला है, अपने उस नेत्रयुगलको मुझ अनाथपर भी डालिये अर्थात् मुझ आश्रयहीनपर कृपादृष्टि कीजिये॥ ३॥

उत्तुङ्गोल्लासिनासं हरिमणिमुकुरप्रोल्लसद्गण्डपाली-
व्यालोलत्कर्णपाशाञ्चितमकरमणीकुण्डलद्वन्द्वदीप्रम् ।
उन्मीलद्दन्तपङ्क्तिस्फुरदरुणतरच्छायबिम्बाधरान्तः-
प्रीतिप्रस्यन्दिमन्दस्मितशिशिरतरं वक्त्रमुद्भासतां मे॥ ४॥

जो ऊँची एवं सुघड़ नासिकासे सुशोभित है, जिसका इन्द्रनीलमणिमय दर्पण-सदृश कपोलभाग कानोंमें पहने हुए झिलमिल-झिलमिल करनेवाले दोनों मकराकृत मणिनिर्मित कुण्डलोंसे उद्दीप्त हो रहा है, जिसकी खुली हुई दन्त-पंक्तिकी निराली प्रभा फैल रही है तथा जो अरुण-कान्तिवाले होठोंके मध्य प्रेम-रसकी धारा बहानेवाली मन्द मुसकानसे अतिशय आह्लादजनक है, आपका वह श्रीमुख मुझे उद्भासित करे॥ ४॥

बाहुद्वन्द्वेन रत्नोज्ज्वलवलयभृता शोणपाणिप्रवाले-
नोपात्तां वेणुनालीं प्रसृतनखमयूखाङ्गुलीसङ्गशाराम्।
कृत्वा वक्त्रारविन्दे सुमधुरविकसद्रागमुद्भाव्यमानैः
शब्दब्रह्मामृतैस्त्वं शिशिरितभुवनैः सिञ्च मे कर्णवीथीम्॥ ५॥

जिनकी दोनों भुजाएँ प्रकाशमान रत्ननिर्मित बाजूबंदसे सुशोभित हैं, जो अपने प्रवाल-सदृश अरुण हाथोंसे नख-किरणोंको बिखेरनेवाली अंगुलियोंके सम्पर्कसे चित्र-विचित्र-सी दीखनेवाली मुरलिकाको पकड़कर अपने मुख-कमलपर लगाये हुए हैं और उससे परम मधुर राग अलाप रहे हैं, ऐसे आप समस्त भुवनोंको आनन्दित करनेवाले उस प्रत्यक्ष प्रकट हुए नादामृतसे मेरी कर्ण-गलीको सींच दीजिये॥ ५॥

उत्सर्पत्कौस्तुभश्रीततिभिररुणितं कोमलं कण्ठदेशं
वक्षः श्रीवत्सरम्यं तरलतरसमुद्दीप्तहारप्रतानम्।
नानावर्णप्रसूनावलिकिसलयिनीं वन्यमालां विलोल-
ल्लोलम्बां लम्बमानामुरसि तव तथा भावये रत्नमालाम्॥ ६॥

आपका कोमल कण्ठदेश उद्दीप्त कौस्तुभमणिकी शोभा-पंक्तियोंसे अरुणायमान हो रहा है, वक्षःस्थल श्रीवत्ससे सुशोभित है तथा हिलते हुए अतिशय प्रभाशाली हारसमूहोंसे उसकी अद्भुत शोभा हो रही है, गलेमें पहनी हुई नाना प्रकारके रंग-बिरंगे पुष्पसमूहों तथा पल्लवोंसे गुँथी वनमाला घुटनेतक लटक रही है तथा उसपर चञ्चल भौंरे मँडरा रहे हैं; इसी प्रकार आपकी छातीपर मैं रत्न-मालाकी भी भावना करता हूँ॥ ६॥

अङ्गे पञ्चाङ्गरागैरतिशयविकसत्सौरभाकृष्टलोकं
लीनानेकत्रिलोकीविततिमपि कृशां बिभ्रतं मध्यवल्लीम्।
शक्राश्मन्यस्ततप्तोज्ज्वलकनकनिभं पीतचेलं दधानं
ध्यायामो दीप्तरश्मिस्फुटमणिरशनाकिङ्किणीमण्डितं त्वाम्॥ ७॥

जिनके श्रीविग्रहपर हरिचन्दन-गोरोचन आदि पाँच सुगन्धित पदार्थोंसे बना हुआ अङ्गराग लगा हुआ है, अतएव जो अतिशय उत्कट सुगन्धसे सारे लोकोंको अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है, अनेक ब्रह्माण्ड-समूहोंको अपने अंदर लीन करनेवाला होनेपर भी जिनका कटिप्रदेश अत्यन्त कृश है, जिनके शरीरपर पीताम्बरकी उसी प्रकार शोभा हो रही है मानो इन्द्रनील मणिपर प्रतप्त एवं उद्दीप्त सुवर्ण रखा

हो तथा जो दीप्तिमती किरणोंसे प्रकाशमान मणिनिर्मित करधनीकी क्षुद्र घंटिकाओंसे सुशोभित हैं, ऐसे आपका हम ध्यान करते हैं॥ ७॥

ऊरू चारू तवोरू घनमसृणरुचौ चित्तचोरौ रमाया
विश्वक्षोभं विशङ्क्य ध्रुवमनिशमुभौ पीतचेलावृताङ्गौ।
आनम्राणां पुरस्तान्न्यसनधृतसमस्तार्थपालीसमुद्ग-
च्छायं जानुद्वयं च क्रमपृथुलमनोज्ञे च जङ्घे निषेवे॥ ८॥

आपके ऊरु (जाँघें) विशाल, मांसल एवं सुकोमल कान्तिसे युक्त हैं। वे लक्ष्मीके चित्तको चुरानेवाले हैं। 'इन्हें देखकर निश्चय ही सारा विश्व क्षुब्ध हो उठेगा'—ऐसी आशङ्कासे आप निरन्तर इन्हें पीताम्बरसे ढके रखते हैं। झुककर प्रणिपात करनेवालोंके समक्ष रखे हुए समस्त पुरुषार्थोंकी पिटारीकी-सी शोभावाले आपके दोनों जानु हैं। प्रभो! आपकी उन क्रमशः चढ़ाव-उतारवाली स्थूल एवं मनोहर पिण्डलियोंकी मैं चिन्तना करता हूँ॥ ८॥

मञ्जीरं मञ्जुनादैरिव पदभजनं श्रेय इत्यालपन्तं
पादाग्रं भ्रान्तिमज्जत्प्रणतजनमनोमन्दरोद्धारकूर्मम्।
उत्तुङ्गाताम्रराजन्नखरहिमकरज्योत्स्नया चाश्रितानां
संतापध्वान्तहन्त्रीं ततिमनुकलये मङ्गलामङ्गुलीनाम्॥ ९॥

आपके चरणोंमें सुशोभित नूपुर अपनी मधुर झनकारद्वारा मानो यह घोषित कर रहा है कि आपके चरणोंकी सेवा ही श्रेयस्करी है। आपका पादाग्र-भाग भ्रान्ति-सागरमें डूबने-उतरानेवाले प्रणतजनोंके मनरूपी मन्दराचलका उद्धार करनेके लिये मानो अवतारधारी कच्छप ही है। आपकी अँगुलियोंकी मङ्गलकारिणी पंक्ति उभड़े हुए अरुण वर्णके सुशोभित नखोंकी चाँदनी-सी उज्ज्वल प्रभासे आश्रितजनोंके संताप और अज्ञानको हरनेवाली है, आपके ऐसे चरणोंका मैं ध्यान करता हूँ॥ ९॥

योगीन्द्राणां त्वदङ्गेष्वधिकसुमधुरं मुक्तिभाजां निवासो
भक्तानां कामवर्षद्युतरुकिसलयं नाथ ते पादमूलम्।

नित्यं चित्तस्थितं मे पवनपुरपते कृष्ण कारुण्यसिन्धो
हृत्वा निश्शेषतापान् प्रदिशतु परमानन्दसंदोहलक्ष्मीम्॥ १०॥

नाथ! आपके समस्त अङ्गावयवोंमें आपका पादमूल योगीन्द्रोंके लिये अतिशय सुमधुर, मुक्तिकी अभिलाषावालोंके लिये आश्रयस्थान और भक्तोंके लिये अभीष्टपूरक कल्पतरुके पल्लव-सदृश है। करुणासागर श्रीकृष्ण! आपका वही पादमूल नित्य मेरे हृदयमें स्थित रहता है। अत: पवनपुरपते! मेरे सम्पूर्ण कष्टोंका विनाश करके मुझे परमानन्दसंदोह-लक्ष्मी—मोक्ष प्रदान कीजिये॥ १०॥

अज्ञात्वा ते महत्त्वं यदिह निगदितं विश्वनाथ क्षमेथा:
स्तोत्रं चैतत्सहस्रोत्तरमधिकतरं त्वत्प्रसादाय भूयात्।
द्वेधा नारायणीयं श्रुतिषु च जनुषा स्तुत्यता वर्णनेन
स्फीतं लीलावतारैरिदमिह कुरुतामायुरारोग्यसौख्यम्॥ ११॥

विश्वनाथ! आपके महत्त्वको न जानकर इस स्तोत्रमें मैंने जो कुछ वर्णन किया है, उसे क्षमा करना। एक हजारसे भी अधिक श्लोकोंसे युक्त यह स्तोत्र आपको प्रसन्न करनेवाला हो। नारायणविषयक वर्णनसे युक्त एवं नारायण भट्टद्वारा विरचित यह द्व्यर्थक नारायणीय स्तोत्र, जो आपके श्रुतिप्रतिपादित जन्म एवं स्तुतियोंके वर्णन तथा लीलावतारोंसे व्याप्त है, इस जगत्‌में वक्ता-श्रोताको आयु तथा आरोग्य प्रदान करके अन्तमें मोक्षसुखका दाता हो॥ ११॥

॥ इति केशादिपादवर्णनं शततमदशकं समाप्तम्॥

॥ श्रीमन्नारायणीयस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥